
नुद्रकः—

शेठ देवचंद दामजी

आनंद प्रीन्टर्स प्रेस

मावळगढ.

आ ग्रंथनो अम्यास कर्या पछी वर्तमानमां
लोकोपयोगी अने उपकारक आना जेवो अन्य ग्रंथ
क्वचित ज हशे एवी सास मारी मान्यता थई. आ
मान्यताने में अमुक विद्वान् समक्ष रखु करी एटले
तेबोए अने अन्य बीजाओए मजदूत प्रेरणा करी के
आ ग्रंथनुं जो तमो विवेचन करशो तो वधु उपयोगी
अवस्थ थशे. मने पण आ बात रुची अने साथे साथे
आ ग्रंथनुं विवेचन करवाने मन ललचायुं. परिणामे
मारी अल्पमतिथी तेनुं विवेचन कर्यु. ग्रंथ एटलो
गहन छे के तेमां मारा जेवानी बुद्धिनो प्रवेश थदो
पण अशक्य हतो, छतां साधनोनी अनुकूलताए में
यथासाध्य प्रथल कर्या छे. आ ग्रंथनी प्रस्तावना, उपो-
द्घात विगेरे अमो ग्रंथना बीजा भागमां आपवा
धारेल छे, कारण के ग्रंथना मुद्रण आदिमां मदद
आपनार महाशयोने ग्रंथ प्रगट शह प्राप्त करवानी
लागेली तालावेलीने लीधे आ ग्रंथने तुरतमां ज
प्रथम माग रूपे प्रकाशित करवानी प्रकाशकने आव-

श्यकता उमी थह, तेम ज ग्रंथनुं प्रमाण अमारा धारवा
करता लगभग दोहुं थह गयुं. आयी पण वे भागमां
ग्रंथने वहेंची नांखवो वधु उचित जणायुं. अतएव आ
ग्रंथ परत्वे हमारे जे कांड निवेदन करवानुं छे ते असे
वीजा भागमां जाहेर करीशुं. प्रांते आ ग्रंथमां सलाह-
रुपे अने मुद्रित करवामां अमने जेओए कीमती मदद
करी छे तेओनो हुं खास ऋणी शुं. आशा छे के-
पाठको आ ग्रंथने अमारी स्वल्पना सुधारी वांचवा
ध्यान राखलो. सज्जनो हमेशां गुणग्राही ज होय छे.
अलं अधिकेन.

प्रार्थी-लेखक.

॥ नमः श्रीमहर्षिपूज्यगंभीरविजयेभ्यो ॥

षोडशकग्रन्थ-विवरण ।



अमृतामिवामृतमनधं,

जगाद् जगते हिताय यो वीरः ।

तस्मै मोहमहाविष-

विधातिने स्तान्नमः सततं ॥ १ ॥

यस्याः संस्मृतिमात्राद्

भवन्ति मतयः सुदृष्टपरमार्थाः ।

वाचश्च बोधविमलाः सा

जयतु सरस्वती देवी ॥ २ ॥

मंगल

जेम अमृत आत्माने अजरअमर बनावे छे, तेम जे प्रभुए
आ अमृत तुल्य एवं द्वादशांगीरूप बचनामृत जगतना कल्याण
माटे प्रकाशयुं, तथा मोहरूप महाकालकूटज्ञेरनो जेओए आमूलतः
नाश कयों छे, एवा वीरप्रभुने नित्य नमस्कार हो ।

जेना स्परणमात्रथी ज परमार्थभूत पदथोने जणावनार
बुद्धि उत्पन्न थाय अने ज्ञाननिर्मल-अर्थात् सुबुद्ध एवी वाचा
प्राप्त थाय छे, ते सरस्वती नामनी देवी विजयती हो ।

टीकाकार भगवान आ रीते शिष्टाचारानुं पालन करवा,
निर्विद्धे टीका समाप्त करवा स्वेष्टदेवने नमस्कार करी प्रकृत
ग्रंथनी टीकानी प्रस्तावना आ प्रपाणे कहे छे—

प्रस्तावना

एक सामान्य वस्तुनी परीक्षा कर्या पछी तेने स्त्रीकारवा-
यी ग्राहकने असंतोष के सेद थतो नयी. निदान के—कोइ
पण चीज परीक्षा कर्या पछी ज स्त्रीकारवी ए न्याय गणाय,
तो पछी संसारमां डुवता अने पोताना उद्धारनी अपेक्षा राख-
नारे, तेपज पोतानुं हित साधवापां निषुणे, दरेक कायोंमां
दोष तथा गुण संवंधी गुरु-लाघवतानो विचार करनारे,
परमार्थ के लाभालाभनो रूपाल करनारे एवं प्रश्नोत्तरो संवंधी
परमार्थ विचारनार विद्वाने तो अवश्यतया उत्तम धर्मनी
परीक्षा करवी जोइए. धर्मनी परीक्षा तो परीक्षक विना न ज

याय कारण के परीक्षा परीक्षक विना रही शकती नथी। न्यायनी भाषामां परीक्षा अने परीक्षकनो परस्पर व्याप्ति संबंध कहो छे, माटे ज उत्तम धर्मनी परीक्षा कोण करी शके विगेरे भावोने समजाववा चौदसो चुंपालीश ग्रंथकर्ता आचार्य हरिभद्रसूरिजी आ घोडशकनामा प्रकरणानुं कथन करे छे। आ प्रकरणामां आर्या छंदवडे निवद्ध सोल अधिकारो छे। प्रत्येक अधिकारने सोल-सोल श्लोकथी प्रतिपादन कर्या छे, माटे ज आ प्रस्तुत प्रकरणानुं सान्वय एवं घोडशक नाम ग्रंथकर्ताए राख्युँ छे।

आ तो उपर जणाव्या प्रमाणे प्रस्तुत ग्रंथकर्ताए प्रस्तुत ग्रंथनो संबंध दर्शावां एक सामान्य प्रस्तावना कही। हवे प्रस्तुत ग्रंथने शर कर्ता ग्रंथनी आदिमां मंगल, अभिधेय, संबंध अने प्रयोजनने दर्शावनार आदिनो आर्या स्लोक हरिभद्रसूरिजी कथन करे छे—

“ प्रणिपत्य जिनं वीरं,
सद्धर्मपरीक्षकादिभावानाम् ।

लिंगादिभेदतः खलु

वक्ष्ये किंचित्समासेन ” ॥ १ ॥

मूलार्थ—राग-द्वेषादि शत्रुवर्गने जीतनार एवा वीर परमात्माने नपीने उत्तम धर्मनी परीक्षा करनार वर्गो—लोको विगेरे पदार्थोनुं स्वरूप, तेना चिन्हो तथा भेदो प्रकाशवावडे करीने कांइक संक्षेपथी हुं (हरिभद्रसूरि) कथन करीश।

स्पष्टीकरण—“शिष्टाः शिष्टत्वमायान्ति शिष्टमार्गानुवर्त्तनात्” शिष्टो उत्तमपुरुषोना पंथनुँ अनुकरण करवाथी उत्तमजनो उत्तमताने मेलवे छे ” आ एक सर्व साधारण नियम छे. आचार्य हरिभद्रभूरिजी पण एक उत्तम शिष्ट कोटिना अग्रगण्य शिष्टपुरुष छे. शिष्टोनो एवो आचार छे के—
“शिष्ट-आचार”

ग्रंथना आरंभपां मंगल, अभिधेय, प्रयोजन अने संबंध चार पदार्थों कहा पछी ज अवशेष वक्तव्यनुँ कथन करे छे. अतएव ग्रंथकर्ता पण आ चारे पदार्थनुँ स्वरूप अने ग्रंथनो उद्देश एक ज आर्याद्वाराए देखाडे छे. शास्त्रनी आदिमां स्वेष्ट देवने नप्रस्काररूप मंगल करवुँ आवश्यक गणाय, तेथी अने शास्त्रनी निर्विक्ले समाप्ति थाय, श्रोता तथा पठन करनार सुखे शास्त्राभ्यास करी शके एवं आ ग्रंथ मंगलशून्य छे आ प्रकारनी शिष्योनी बुद्धिनो परिहार करवा माटे आचार्य—‘प्रणिपत्य जिनं वीरं’ ए पद्यां मंगलनुँ प्रतिपादन करे छे, तथा अन्यान्य पदोवडे अभिधेयादिकनुँ पण स्वरूप कहे छे.

“मंगलादि-कथन”

राग-द्वेषादि अनादिकालीन शत्रुवर्गो विजय करवाथी जेओ जिनभगवंत वन्या छे, एवं ग्रखर तपस्याथी जेओ ए निविडतम कर्मोनो नाश करवा अद्भुत वीरपणुँ दाखव्युँ हातुँ. एद्दले—“चिदारथति यत्कर्म तपसा च विराजते ।

तपोवीर्येण युक्तश्च तस्माद्वीर हति समृतः ॥ १ जेओ
 कर्मोने विदारे छे अने महान् तपस्याथी शोर्भे छे, अत एव
 तप अने वीर्यवडे युक्त होवाथी वीर ए नामथी जेमलुं स्मरण
 कराय छे, एवा अने अखंड वार्षिक दानद्वारा जगतना दारि-
 द्रश्यनो जेओए नाश कर्यो छे, सगम जेवा पिशाचाधम देवे
 छ मास पर्यंत भयंकर प्राणहर उपसर्गों करवा छतां जेओए
 अतुल ज्ञापा धारण करी हती, अने द्वादश वर्ष पर्यंत घोर
 तपस्या जेओए करी हती एवा दानवीर, शूरवीर अने तपवीर
 वीर भगवानने विकोणयोगनी शुद्धिपूर्वक नमस्कार हो. पर-
 वार्थ ए के उपरोक्त गुणोथी रंजित थड इंद्रादि देवोए जेओनुं
 महावीर ए संगुण नाम स्थापन कर्यु छे तेमने नमीने, आ रीते
 ग्रंथकर्ता श्लोकना प्रथम चरणवडे स्वेष्टदेवने नमनरूप मंगलनो
 वोध करी, वीजा चरणयी उत्तम धर्मनी परीक्षा करनारा
 विगेरे पदार्थोनुं स्वरूप कथन करवालुं जणावे छे. निदान के-
 प्रस्तुत ग्रंथमां धर्मना परीक्षको वाल, मध्यम, बुध पैकी ए त्रया
 वर्ग छे तेनुं स्वरूप एवं धर्मनुं स्वरूप, तेना लक्षणो, धर्मानुं स्व-
 रूप अने तेना लक्षणो विगेरे अनेक पदार्थनो परिस्फोट ग्रंथ-
 कार करशे ते पण विविध चिन्होवडे तेमन अनेक भेदोवडे
 संक्षेपथी ज किन्तु विस्तारयी नहीं, कारण के-अध्येतृ वर्ग
 अथवा श्रोतावर्गने अधिक क्लेश न थाय माटे, आ रीते ग्रंथकारे
 प्रस्तुत ग्रंथरचनानुं प्रयोजन जणाव्यु. अन्यान्य ग्रंथोमां पूर्व
 महर्षिओए जो के वाल, मध्यम आदि धर्मपरीक्षकोनुं स्वरूप

दर्शाव्युं छे, तथापि प्राचीन ग्रंथोक्त ते स्वरूप ढुङ्कमां अने अने सामान्य होवाथी प्राकृतलोकोने उपकारक न थाय तेम धारी प्रस्तुत ग्रंथकर्ता धर्मपरीक्षकोना भेदो, तेओना चिन्हो आदि अत्र विस्तृतपणे दर्शावशे, जेथी विशेषतया सर्वने उपकारी आ ग्रंथ थाय ए ज आ ग्रंथरचनानुं प्रयोजन छे. उपरोक्त प्रयोजन सिद्धि प्रकरण के ग्रंथस्थ वाक्योना बोधद्वाराए ज थाय, अन्यथा न ज थाय ए स्वाभाविक छे. अत एव अत्र वाल, मध्यम आदि धर्मपरीक्षक वर्गनुं ज्ञान प्राप्त थवुं ते उपेय-साध्य छे, अने तेबुं आ ग्रंथ उपाय-साधन होवाथी अहीं उपायोपेयसाध्यसाधनरूप संबंध जाण्वो. अहीं आटलुं विशेष जाण्वुं के जगतमां ज्ञानना अर्थीं लोको बे प्रकारना छे—एक तो शास्त्रकथित पदार्थोने युक्ति अने प्रमाणद्वाराए सिद्ध कर्या पछी जेओ अद्वा करे—अंगीकार करे ते, अने बीजा लोको शास्त्रोक्त पदार्थो सत्य ज छे, तेमां शंका करवी निरर्थक मानी अद्वा करवावाला होय छे. एटले पहेला वर्गना लोको माटे अहीं उपायोपेयसाध्यसाधनरूप संबंध जाण्वो अने बीजावर्ग माटे गुरुपूर्वक्रम नामनो संबंध जाण्वो.

“ शंका समाधान ”

यद्यपि ग्रंथकर्ताए प्रथम आर्यमां जेम मंगला अने प्रयोजन ए पदार्थनो स्पष्ट निर्देश कर्यो तेम संबंधने दर्शावामाटे स्पष्ट उल्लेख कर्यो नयी, तो पछी अहीं आटलुं वधुं नकामुं पेषण करवानुं शुं प्रयोजन छे ? ए शंकालुं समाधान अहीं आ प्रकारे जाण्वुं—

(७)

“ शास्त्रं प्रयोजनं चेति,
 संबंधस्याश्रयादुभौ ।
 तदुक्त्यांतर्गतस्तस्माद्,
 भिन्नो नोक्तः प्रयोजनात् ” ॥ १ ॥

“शास्त्र अने प्रयोजन ए वन्ने संबंधना आश्रयी होवायी
 ज्यां शास्त्र तथा प्रयोजननुं कथन थयुं त्यां संबंधनुं पण कथन
 थइ गयुं जाणवुं. एटले संबंध जणाववा माटे अलग निर्देश
 करवानी जसरं नयी.” ए रीते मंगल, प्रयोजन अने संबंध
 दर्शाव्या हवे रहुं केवल अभिधेय. यद्यपि ग्रंथरचनानुं प्रयोजन
 दर्शाव्युं एटले अभिधेयनुं कथन आवी गयुं छे, तो पण आ
 ग्रंथमां धर्मना परीक्षक एवा बाल, पध्यम आदि वर्गनुं चिह्नो
 तथा भेदादिवडे विस्तारयी स्वरूप आचार्यश्री दर्शावशे, एटले
 ए ज अहीं स्पष्ट अभिधेय जाणवुं.

आ रीते ए चारे पदार्थनो हुंकमां ग्रंथनी आदिमां कर्ताए
 विचार कयों. यदि ए चारे पदार्थनो विचार न जाणाव्यो होय
 तो प्रस्तुत ग्रंथनो अभ्यास अने थवण करवानो कोइ मनोरथ
 न करे, कारण—विद्वानो तेवा ग्रंथनो अनादर करे छे, अत एव
 अन्यत्र कहुं छे—

“ प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थं
 फलादित्रितयं स्फुटं ।

**मंगलं चैव शास्त्रादौ
वाच्यमिष्टार्थसिद्धये ॥ १ ॥**

“ पंडितोनी प्रवृत्ति माटे शास्त्रनी आदिमां ज प्रयोजन,
संबंध अने अभिधेयनुं कथन करतुं तथा इष्टार्थनो सिद्धि माटे
शास्त्रनी आदिमां मंगल पण जणावयुं ” आ हेतुथी ग्रंथनी आदिमां
चार पदार्थनो सयुक्तिक विचार विद्वानो माटे जणावयो, ए हवे
फरीने जणाववानी आवश्यक्ता नथी।

कर्त्ताए प्रथम जणावयुं हतुं के—“सत्य धर्मना परीक्षक
एवा बाल, मध्यम आदि वर्गनुं स्वरूप कहशुं।”
ए कथनानुसारे तेनुं स्वरूप ग्रंथकर्त्ता अर्हों बीजी आर्यायी
शरु करे ह्ये—

“ प्रकरणारंभ ”

**“ बालः पश्यति लिंगं
मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तम् ।**

**आगमतत्त्वं तु बुधः
परीक्षते सर्वयत्नेन ” ॥ २ ॥**

मूलार्थ—“ वातजनो-मंदबुद्धिवानो मात्र वात्प्रवैश
देखीने, मध्यमबुद्धिक केवल आचार-वर्तन देखीने, अने तत्त्वज्ञ-
जनो सर्वथा प्रकारे आगमतत्त्वनी ज परीक्षा करे ह्ये। ”

“ जनतानी प्रकृति ”

स्पष्टीकरण—वहोला जनसमूहमां अमुक ज लोको धर्मपति रचिवाला अनुभववापां आवे छे, कारण के जनतानो म्होटो भाग तो केवल एशियाराम अने पुढागलमुखविलासी ज देखाय छे. हवे जे लोको धर्मानुरागी जणाय छे तेपां पण केटलोक भाग तो वंशपरंपरागत कौदुंविक प्रेरणाथी अथवा तो व्यवहारमां पोतानी निंदा न थाय एटला माटे अगर वहुमानार्थे ज धर्म उपासना करे छे. जे लोको धर्म उपासक छे ते सर्वे कांइ सत्य धर्मनी परीक्षा कर्या पछी ज धर्म सेवे छे एवुं कांइ छे नर्ही. **कारण—**परंपरागत अथवा व्यवहार रचणार्थे के वहुमानार्थे कराता धर्मपां सत्यपणानी परीक्षा क्यांथी संभवे? न ज संभवे. निदान के—बाह्य परीक्षा कर्या पछी पण सत्य धर्मनी सेवा करनार वर्गना त्रण विभाग पाढी शकाय. जेओ केवल अबुद्ध होय अर्थात् उपरनो बाह्य आडंबर देखी प्रसन्न थाय ते १, जेओ मात्र क्रिया—आचार विगेरे जाणी खुशी थाय ते २, अने जेओ शास्त्र—आगम अनुसारे वर्तन चेष्टा जाणया पछी, तपास्या पछी प्रसन्न थाय ते ३, एटले जेओ सत्य धर्मनी परीक्षा करनार होय ते सर्वनो आ त्रण विभागपां ज समावेश यड जाय छे, आथी अतिरिक्त कोइ पण लोको नथी.

“ बालवर्ग ”

पर्मार्थ ए के—जेओ अबुद्ध होय छे, विशिष्ट प्रकारनी सारासार समजवानी अने वस्तुतच्च समजवानी जेओपां इुद्धिनी खामी होय छे, ते लोको केवल बाह्य वेश अथवा

वेश्वनो आँडंबर देर्खीने सुशी थाय द्वे ने तेपां ज आलोको धर्म माने छे. एट्ले ज्यां सामुपणानो बाय आँडंबर देखवामां आव्यां, अगर ज्यां धर्माँडंबर्ना बाय रचना नजरे पर्हा के ते लोको गांडावेला यह जाय छे, नाचवा—कूदवा माँडे छे, अहोभान्य मानी लांवा लांवा नमस्कारो करवा दोही जाय छे. आर्या आ लोकोने विद्वानो बालक कहे छे, कारण के—आ सर्व चेष्टा बालयोग्य—बालक जेर्हा देखाय छे. जेम कोइ छोकराने तेना मावापेक्तु के—जेत्रपूजानो वेश, सामायक—प्रति-क्रमणानो वेश जेणे पहेयो होय. एवं रजोहरण, मुहपर्चि, पीछा कपडां जेणे पहेयो होय ते धर्म ज्ञेवाय. ते सामु कहेवाय. वस आटली शिखामणाना अंते ज्यां उपरोक्त स्थिति वाढकना देखवामां आर्ही के मावापर्ना शिखा याइ करी ते प्रमाणे मानवा दोही जाय छे. आ ज स्थिति उपरोक्त वर्गना लोकोमां तदाकारपणे देखाय छे, माटे ज घंयकता एक ज पद्धर्या जणावे छे—“ बालः पश्यति लिंगं ”

“ मध्यम वर्ग ”

वीक्षा वर्ग मध्यमुद्दिनो जणाव्यो छे. आ लोको प्रयम वर्गनी अपेक्षाए अथिक चडता छे एट्ले बुद्धिमां आगल वयना होवार्या काङ्क्ष विचारशील होय छे. एट्ले तेऊं उपर्नी खास दायरीप, बाह्य वेश के आँडंबर देर्हा मुख नर्या बनवा, किन्तु विचार करे छे के—केवल वेश तो दांभिको पण ऐ भरवा स्वीकारे छे, माटे वेश साये आचार, नियम अने क्रिया पण

होय तो ज ते वंदनीय-नपस्करणीय कहेवाय. निदान के-वेश साथे आगल जणावाशे तेवा आचारो देखी-तपासी पछी ज आ लोको तेमां धर्म माने छे; माटे आ लोकोने वालकवर्गथी भिन्न मध्यम वर्ग नामे धीजी पंक्तिमां विद्वानो गणावे छे. आ वर्ग पैकीना लोकोमां एटली अवश्य विशिष्टता होय छे के-तेझो मुनिवेष के श्रावकनो धर्मीवेष देख्या पछी जो के नब्र, कोपलपरिणामी बने छे खरा तो पण साथे साथे पोतानी बुद्धिथी एटलुं तो जहर विचारे छे के-अहीं आचार-नियम विगेरे केवा छे ? ते जो होय तो नपस्कारादि करे अने न होय तो लोकरंजननो आडंबर छे एम माने छे. अत एव ग्रंथकारे कहुं के-“ मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तम् ” मध्यमबुद्धिजनो आचारनो विचार करे छे.

“ बुधवर्ग ”

ज्यारे तत्त्वज्ञनो उपरोक्त वज्जे वर्गथी भिन्न होय छे एटले आ लोको वेशमात्रथी राजी थता नथी तेमज उपरना आचारादि मात्र देखवाथी खुशी थता नथी, अर्थात् जेओमां विशिष्ट तत्त्वज्ञान होय, परमार्थ जेओ अच्छी रीते देखी शके छे, कार्यना परिणामदर्शी जेओ होय छे, जेओने आगपोक्त तत्त्वनो सुंदर बोध होय तेनुं नाम अहीं बुद्धवर्ग छे. एटले आ लोको पोतानी बुद्धि अनुसारे जेमां वेश तेमज आगमानुसारी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आश्री वर्तन, नियम, आचारादि होय तेमां ज धर्म माने छे, अने तेनो ज आदर करे छे. सिवाय खाली

वेश के बाह्य आचारादिमां धर्म मानता नथी, कारण के प्रवचनाङ्ग प्रधान जे वर्तन अने तेवा वर्तनथी अलंकृत मुनिवेश आदि मार्ग ज आत्मकल्पाण साधी शके छे. जेम प्रवचन-आङ्गानो लोप थतो होय, प्रवचनने धाधा उपजती होय तेबुं एकान्त सुंदर पण चारित्र गर्हणीय कबुं छे, निदानके-प्रवचन आङ्गालुं बरावर पालन थबुं जोहये—“ धर्मधर्म-व्यवस्थायाः शास्त्रमेव नियामकं । तदुक्तासेवनाद्वर्मस्त्वधर्मस्तद्विपर्ययात् ” ॥ १ ॥ “ धर्म, अधर्मनी व्यवस्था करवामां शास्त्र पोते ज नियामक छे, माटे शास्त्राङ्गाना पालनमां धर्म अने तेथी विपरित चालवाथी अधर्म छे.” निष्कर्ष ए के- बुधजनो तत्त्वदर्शी होवाथी आगमाङ्गालुसारी वर्तन देखे छे अने आगमतत्त्वनी ज परीक्षा करे छे; वेश आदिनी परीक्षा करता नथी, एज बात ग्रंथकर्ता जणावे छे—“ आगमतत्त्वं तु बुधः परीक्षते ” मूलमां “ सर्ववत्तेन ” ऐ पद ग्रंथकर्ताए एटला माटे आप्युं छे के-बालजीवो अने मध्यमजनो धर्मनी परीक्षा केवल सामान्यपणे ज करे छे परंतु खास इष्टाथी करता नथी, ज्यारे बुधजनो सर्व प्रकारे पोतानी चनती कोशीशे अने कसोटीपूर्वक आगमतत्त्वनी परीक्षा करे छे.

अथवा जेम बालजीवो केवल वेशमां अने मध्यमजनो केवल आचारमां धर्म माने छे तेम बुधजनो मानता नथी, किन्तु वेश अने आचार जणावनार शास्त्रमां तत्त्व परमार्थ शुं

छे ? तेमां अविसंवादिपणुं केबुं छे ? सर्वज्ञकथित छे के नहीं ? विगोरे तपासे छे अने त्यारपछी तथाप्रकारना वेश के आचारा-दिने धर्मतया-सत्यतया स्वीकारे छे. वस आ रीते मिज्ज भिज्ज बुद्धिना कारणाथी उपरोक्त त्रण मेदो धर्मपरीक्षकोना अर्ही ग्रंथकर्त्ताए जणाव्या.

आटलुं सामान्य कथन कर्या पछी इवे वाल, मध्यम आदिनी विशिष्ट ओळखाण करावबी आवश्यक गणाय माटे आचार्याश्री ते प्रत्येकना लक्षणो प्रथमथी दर्शावे छे—

बालो ह्यसदारंभो

मध्यमबुद्धिस्तु मध्यमाचारः ।

ज्ञेय इह तत्त्वमार्गे,

बुधस्तु मार्गानुसारी यः ॥ ३ ॥

मूलार्थः—असद् आरंभमां प्रवृत्ति करे ते वाल, मध्यम आचार सेवे ते मध्यम, अने तत्त्वमार्ग-परमार्थनी प्रवृत्ति करनार मार्गानुसारी जे होय ते बुधपुरुष जाणवो.

“ बाल-लक्षण ”

स्पष्टीकरण—अर्हीं ग्रंथकर्त्ता वाल, मध्यम अने “ बुधना लक्षणो दर्शावे छे. प्रत्येक पदार्थानुं ज्ञान तेना लक्षणनु भान थवाथी ज थाय छे. पहेला श्लोकमां धर्मपरीक्षक वर्गना त्रण मेदो दर्शाव्या एटले तेओनुं विशिष्टज्ञान करवा लक्षणो दर्शा-ववा ज जोइये. अतएव “ बालो ह्यसदारंभो ” असद्-

खोटा—दुष्ट एवा आरंभो—पापो जै करे—सेवे ते बाल जाणवो. एट्ले जे पापोनो शास्त्रमां अनेकधा निषेध कर्यो होय, जे पापो सेववाथी उभय लोकलुं अकलयाण थाय, जे कार्योमां शास्त्रे वहु पाप मान्युं होय, लोकोमां वारंवार निंदा थाय, जेवा के—चोरी, महाजूठ, व्यथिचार आदि, घर्मी अने महापुरुषोनी निंदा, ज्ञानी तथा धर्माचार्यनी गर्ही विगेरे विगेरे अनेक पापीय कार्योमां जेओलुं चित्त रम्या करे, नित्यशः तेवा कार्यो करता जेओ पोतानी स्थिति मर्यादा, लोकनिंदा, दुर्गतिनो डर अने प्रश्न आज्ञानो भय गणे नर्हीं ते सर्व अर्हीं वालवर्गमां जाणवा. प्रथम कहा प्रमाणे आ वर्गमां विशेष बुद्धि न होवाथी ते लोको आगल—पालल काँइ पण विचारता नथी, तेथी ज आ लोकोनी आवी कढंगी स्थिति होय छे.

“ मध्यम—लक्षण ”

“ **मध्यमबुद्धिस्तु मध्यमाचारः** ” मध्यम प्रकारना जे आचारों सेवे ते मध्यमबुद्धि. आ वर्गमां पहेला वर्गनी अपेक्षाए विशिष्ट मति होवाथी ते लोको विशेष विचार करे छे, जनापवाद अने आत्मनिंदानो भय राखे छे. एवं विशेष पापने समजता होवाथी अधिक पापमय कार्यो करता डरे छे. जे कार्योमां शास्त्रे विशेष पाप दर्शाव्युं होय अने जनतानो वहोलो भाग विशेष पाप मानतो होय तेवा पापाचारो जे न सेवे, जेवा के पूर्वे जे वालाजीवो पापो करे छे ते सर्व पापो आ लोको सेवता नथी, तो पण शास्त्रनो वोध न होवाथी

(१५)

जेमां विशेष आत्मकल्याण थाय तेवा कायों करवा चित्त करता नथी; माटे ज अत्रे मध्यम आचार सेवे तेने मध्यमबुद्धि जन देखाव्यो. निष्कर्ष ए ज के—श्रीजी कोटीमां जणावेल सर्व लक्षणो मध्यमबुद्धिना जाणवा.

“ बुद्ध-लक्षण ”

श्रीजो वर्ग ‘बुधजन’ नो जणाव्यो छे. आ वर्ग वचे वर्गीयी सर्वथा भिन्न छे. आ वर्गना समूहमां एवी तो कुशाय बुद्धि होय छे के जेथी आ लोको परापूर्वनो विचार कर्या पछी ज प्रत्येक कायों हाव घरे छे. अर्थात्-जेमां उभय-लोकानुं कल्याण सपावेलुं होय, बुद्धिमान् जनता विशेष प्रशंसा करे अने महात्माओ पण जेनापर पक्षपात घरावे, एवा जनप्रशंसनीय अने उभयलोकहितकारी आचारो जेओ सेवे. परमार्थ के—जे लोको उपरनी टापटीप अथवा वाहकियाना खोखोयी प्रसन्न थता नथी, किन्तु शास्त्रानुसारी तत्त्वमार्ग अर्ही केटलो छे अने ते सप्रमाण सयुक्तिक घरावर सत्य छे के नहीं, आटलुं तपास्था पछी ज दरेक कायों करे. एवं जे कायोंथी शासनशोभा वधे, धर्मबुद्धि याय अने अन्य आत्मा-ओ पण घर्मी बने तेवा ज कायों जेओ करे. निष्कर्ष एज के—वीतरागदर्शित मार्गानुं ज ने लोको घरावर आराधन करे, ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपी रत्नत्रयीनी सेवना करे, माटे ज अर्ही ग्रंथकर्त्ताए “बुधस्तु मार्गानुसारीयः” बुध तेज-जाणवो— के बेनी-मार्गानुसारी प्रवृत्ति होय.

उपर आपणे तपासी गया के—“ वालवर्ग ते ज जाणवो के जेओ वाहवेश मात्र देखी खुशी थाय, नमस्कार करे अने तेमां धर्म माने ” आथी ज बालवर्ग खरो धर्म पायी शकतो नथी, कारण के वाहवेश धर्मप्रति कांइ प्रधान. कारण नथी, किन्तु अप्रधान कारण मान्यो छे. आथी शुं वाहवेश ए त्याग नथी जेथी तेमां धर्मनो निषेध कर्यो ? आ शंका उपबो खरी. अतः आ शंकाना उद्धार अर्थे ग्रन्यकार हवे समाधान बतावे छे.

बाह्यं लिंगमसारं

**तत्प्रतिबद्धा न् धर्मनिष्पत्तिः।
धारयति कार्यवशतो**

यस्माच्च विडंबकोप्येतत् ॥ ४ ॥

मूलार्थ—वाहवेश—उपरनो आदंवर असार—तुच्छ छे. हेतु ए के—वाहवेशना साथे कांइ धर्मसिद्धि प्रतिबद्ध नथी, कारण के अमुक कार्य परत्वे—कांइक स्वार्थनी सिद्धि माटे विडंबक लोको अने नाटकियाओ पण आ वाहवेश धारण करे छे.

“ वाहवेशनी तुच्छताना कारणो ”

स्पष्टीकरण—वाहवेश ए शुं त्याग नथी ? वाहवेश धर्मपां अप्रधान कारण शा माटे ? आ शंकाओनो उद्धार आ ग्रामणे जाणवो—वाह एट्ले जेने जनता पोतानी दृष्टिये

देखी शके, तुरतज जाणी शके एवो जे वेश—कपडानो आँडवर-
घणनी टापटीप. जेमके जैन मुनियोनो पोतवस्त्र, रजोहरण,
मुहपचि आदि; यतियोनो खेतवस्त्र, रजोहरण आदि; संन्यासी-
ओनो गेरु कपडा, चाखडी, ढंड, कमंडल आदि; वावाड्योनो
भूत, लंगोट, ठिलाटपका, चिपियो आदि; फकीरनी कफनि,
माला आदि; आ सर्व ते ते लोकोनो वाहावेश जाणेवो कारण
के आथी सामान्य जनता पण विना पूछ्ये जाणी शके छे के—
आ कोइ साधु या फकिर छे. पण अर्ही तत्त्वदण्डिए तेमां खास
धर्म होय एवो नियम नयी, कारण के धर्म साथे वाहावेश
ऐकान्तिक संबंध घरावतो नयी. परमार्थ के—ज्यां वाहावेश होय
त्यां धर्म होय, अने वाहावेश न होय त्यां धर्म न होय, एवो
वाहावेश तथा धर्मनो एकान्तव्यासि संबंध नयी. निदान के—
भ्रष्टाचारियो, पासत्याओ, वेशविडंबको अने नाटकीयाओ तथा
यतियो पण आ वाहावेश धारण करे छे तदपि त्यां धर्म देखातो
नयी. फरी केटलाक महानुभावो उच्च आदर्शपुरुषो वाहावेश
विना पण धर्मिष्ट देखाय छे, अतएव अत्रे ग्रंथकर्ताए “वाहा—
लिंगमसारं” वाहालिंग—वेशने असार—तुच्छ कहो. परमार्थ
के—वाहावेश ए खास धर्मप्रासिमां हेतुभूत ज छे एवो अखंडच
नियम नयी, तेम वेषविडंबको पण तेनो दुरुपयोग करता नजरे
देखाय छे. आ वे कारणोथी अर्ही वेशने आचार्यश्रीये तुच्छ
गप्यो, परंतु ए तो निश्चित छे के—वाहावेश धर्मसंस्थापक, मर्या—
दावंधक, लज्जावर्धक तो अवश्य छे ज, एटले परंपराए वाहावेश

धर्मप्रापक जणाय हे खरो, छतां अर्ही जे निषेध जणाव्यो हे तेनो भावार्थ एटलो ज के धर्मप्रति खास एकान्त, अवाध्य, अनंतर कारण बाह्यवेश नथी, तेमज परंपराए पण कारणभूत शिथिल आत्माओने ज थाय हे; अन्यने नही ज. आ परथी बाह्यवेश उपेक्षणीय हे एवुं निश्चित समजबाबुं नथी, कारण के-शास्त्रमां मुख्यतः ते सिवाय मुक्तिनो पण निषेध कर्यो हे, तथा वेशरहित भावचारित्री पण अवंदनीय दर्शाव्यो हे. अतः व्यवहारथी ते सर्वथा स्वीकार्य हे, परंतु अत्रे तो तत्त्वदण्डिनो ज विचार कर्यो होवाथी दर्शाव्यो हे, अतः बाह्यवेशने असार-तुच्छ कहो, परमार्थमां तो एकान्त अखंडत्य सत्य होय तेनुं जे प्रतिपादन करवुं तेज न्याय गणाय. ॥

व्यवहारमां बाह्यवेश धर्मप्राप्ति प्रति प्रधान कारण मनाय हे, जे बाह्यवेश त्यागनुं भान करावे हे, जेथी आ कोई साधु-पुरुष हे, एवी लोकोने प्रतीति अने ते द्वारा धर्मप्राप्ति लोकोने थाय हे. आठलुं छतां अर्ही वेशने अप्रधान तुच्छ शा माटे आचार्यं कहो ? आ सचोट दलीलाबुं समाधान ग्रंथकार आ रीते करे हे.-

बाह्यग्रंथत्यागान्न चारु,
न त्वन्त तदितरस्यापि ॥
कंचुकमात्र त्यागान्न हि,
भुजगो निर्विषो भवति ॥ ५ ॥

मुलार्थ—बाह्य परिग्रहनो त्याग करवायी कांइ मनोहर त्याग कहेवाय नहीं, कारण के आवो त्याग तो जानवरोने अथवा वेश्यायारीओने पण होय छे, पण त्यां धर्म देखातो नथी, सांप कांचली मात्रने छोडी देवायी कांइ निर्विष बनतो नथी ॥
बाह्य त्याग ते अत्याग सांपन्नुं हष्टांत

स्पष्टीकरण—ग्रंथ एट्ले परिग्रह. आ परिग्रह बाह्य अने आभ्यंतर एम वे प्रकारनो कहेवाय छे घन, धान्य, कुदुंव, घर विगेरे बाह्य, तथा लोभ, मोह, प्रेम, आसक्ति, तृष्णा विगेरे आभ्यंतर परिग्रह जाणवो. आचार्यश्री कहे छे के—आ घन, कुदुंव, घर आदिनो बाह्य परिग्रह केवल छोडवायी—त्यागवायी कांइ धर्मपण्युं आत्माने प्राप्त यतुं नथी, कारण के आ रीते बाह्य त्याग करवा छतां आभ्यंतर त्याग तो न ज होय, किन्तु दुष्ट ब्रानेक वासनाओ, उद्दगलभावनो अदृश्यत मोह, पान, पूजा, अतिष्ठा अने कीर्तनो लोभ, अनिष्ट तथा अप्रीतिवर्द्धक पदार्थनो द्वेष, विषयोनी आसक्ति एवं तृष्णा यथावद् वनी रही होय तो ते त्याग ज न कहेवाय; परंतु ते मोह ज छे—उपरनो आडंवर ज कहेवाय—लोकरंजन बाहाचार ज कहेवाय. आयी ज अर्ही धर्मपणानी गंधमात्रा पण नथी होती, किन्तु आवो त्याग तो केवल पापकृतिना उदयन्तुं फल जाणावुं. जन्मांतरमां भ्रमण करावनार कर्मवंशक आ त्याग जाणवो, एवं आवा त्यागयी जो त्यागीपण्युं—सत्य साधुपण्युं मुलभ होय, धर्मपण्युं आत्माने पलतुं होय, तो धान आदि अने धूर्च मनुष्यो पण

आचो त्याग धारे अगर त्यागे छेः; छ्रतां तैमां धर्मनो गंध साक्षात्
देखातो नथी, एटले नितान्त वाहत्याग ए मनोहर त्याग न ज्ञ
कहेवाय. आचार्यश्री ए ज वातने उचराद्धर्थी सचोट हृष्टान्त आपी
सिद्ध करे छे. व्यवहारमां आ वात प्रसिद्ध छे के—सर्प पोताना
उपरनी कांचली उतारी नांखे छे, परंतु एतावन् मात्रथी साप
लेश पण विषरहित बनतो नथी किन्तु विषधारीज रहे छे.
एवं आभ्यंतर त्याग विना वाहत्यागी साचो त्यागी, सत्य साधु
कहेवाय नहीं—धर्मी कहेवाय नहीं. निदान ए के—लोकोने
जे न्यागतुं भान, आ त्यागी पुरुष छे एवी बुद्धि वाहवेशयी
उपजे छे, ते केवल लोकोनो त्याग प्रतिनो अदृशूत प्रेम,
साधुओ ग्रति पोतानो साचो पक्षपात, अने साधुओ त्यागी
छे एवी पोतानी हृष मान्यताने लीधे ज अथवा लोकोनी भद्र-
प्रकृति, कारण के—लोको धर्म पण तुरत न पागे छे, अने वाह-
त्यागीमा ज्यारे गोटालो देखे छे त्यारे अधर्म पण तैयी अधिक
पागे छे, आथी वालवर्गने जे वाहवेशयी धर्म प्राप्त याय एटला
मात्रथी ते धर्म्य छे, ग्रधान छे, एम न कही शकाय. निष्कर्ष
ए के—आभ्यंतर त्यागपूर्वक वाह वेश ज धर्मप्राप्तिमां मुख्य कारण
बने छे एम जाणवुं। केवल वाह वेश तो अग्रधान ज कहो छे.

फरी एन वातने आचार्यश्री अन्य मतना प्रभाणथी
पुष्ट करी अधिक सिद्ध करे छे—

मिथ्याचारफलामिदं

हृषपैरहपि गीतमशुभभावस्य ।

सूत्रेऽप्यविकलमेतत्प्रोक्त— ममेष्योत्करस्यापि ॥ ६ ॥

मूलार्थ—अपर—अन्यदर्शनीयोए पण निश्चयपूर्वक अशुभभाव विशिष्ट एवा वाहत्यागनुं फल मिथ्याचार—कपट—फल कहुँ छे, अने जैन सिद्धांतमां पण आवा त्यागने अविकलपणे विष्णाना उकरण जेवो कहो छे।

वाहत्यागनुं फल

स्पष्टीकरण—अपर—जैन सिवायना दर्शनबालाओ अर्थात् पांतजल विगेरे आभ्यंतरत्याग विनाना वाहत्यागने अशुभभाव कहे छे, अर्थात्—केवल वाहत्याग ते ज कहेवाय के जेना अंतरमां अनेक मलीन वासनाओ, दुष संकल्पो, विषयोनी तृष्णा आदि भर्या होय, अतएव आ त्यागने अशुभ, अपवित्र त्याग अहीं कहो, अने आवा त्यागनुं फल ते लोको स्पष्टतया—निश्चयेन मिथ्याचार—कपटीत्याग दांभिक फल दशावे छे, जेम कोइ नट लोकोने रंजन करवा, मोइ उत्पन्न करवा अल्पकाल माटे मुनिवेश धारण करे छे, पण नाटकना अंते ए वेश उतारी नाले छे; परंतु अंतरमां तत्संबंधी लेश पण भाव के त्याग होतो नथी, जेथी आ न्याग नाटकीयो—त्याग दांभिकत्याग कहेवाय छे. एवं अत्रे पण उपरोक्त त्यागने नाटकीयो त्याग कहो छे. आ त्यागनुं फल मिथ्याचाररूपी फल सिवाय अन्य फल मलतुं नथी वधुमां शास्त्रकर्ताओए आवा त्यागने तो केवल महापापना उदय तरिके जणाव्युँ छे.

“मिथ्याचार”

मिथ्याचारनुं स्वरूप आ प्रमाणे छे—“ बाह्योद्दियागि संयम्य, य आस्ते मनसा स्मरन् । इंद्रियार्थं विमूढात्मा, मिथ्याचार स उच्यते ” ॥१॥ “ बाह्य इंद्रियोनो संयम करी जे मूढात्मा इन्द्रियोना विषयोनुं मनथी ध्यान करतो संयममां—त्यागमां रहे ते मिथ्याचार कहेवाय 。” दुँकमां जेशो सावृपणुं बाह्यथी धारण करी भ्रष्टाचारो सेवे, लोकोने ठगे, लोक रंजनार्थे अनेक कष्टे वेठे, विषयवासनाओने पुष्ट करे, शरीरादिकनी पुष्टि माटे अनेक उपचारो करे, ए सर्वनो त्याग दांभिकत्याग, तिरस्करणीय घिक्कारवा योग्य त्याग जाणावो. आवा त्यागमां रहेवा करता ते त्याग छोडी उत्तम ग्रहस्थर्वं स्वीकारी व्यापारादि कर्मार्थी आजीविका करवी ते हितावह कहेवाय. अत्रे टीकाकार भार दइ आवा वेश माटे सखत फटको मारे छे. रोग तथा उपभोग रहित पुरुषे पंडितोमां निंदाकारी तथा क्लिष्ट एवी आजीविका केवल पेट भरवा खातर ज अथवा मानपूजाना लोलुपीफणार्थी आभ्यंतरत्याग विना खाली बाह्य-वेश धारण करवां ते पूर्व जन्मनां उपार्जित अशुभकर्मनुं विपाक फल—कटुकफल जाणावुं, निदान के—पूर्वना पापकर्मना उदयथी आवो त्याग उदयमां आवे, धारण कराय, वर्तमान समयमां आ वात वहु विचारवा जेवी छे. ग्रंथकर्ता आटलुं कही जणावे छे के अन्यदर्शनमां ज नहीं, किन्तु जैन सिद्धान्तमां पण आवा त्याग माटे वहु वहु कटक रीते कहुं छे. अणंतसो दृव्यालिंगाइं.

“ उकरडो अने त्याग ”

विग्रे गाथाओवडे गुणशून्य त्याग मलमूत्र नांवाना
 उकरडा जेवो जाणवो. जेम उकरडो मळमूत्रयी व्याप्त होवाथी
 लोको तेना प्रति तिरस्कारभावयी देखे छे, एवं उपरोक्त त्याग
 पण गुणशून्य नहीं, किन्तु अनेक मलिन वासना, विषयतृष्णा-
 मान, पूजा प्रतिष्ठा, लोभरूप, मळमूत्र भरेल्ह होवाथी उकरडो
 छे. उकरडामां दुर्गंध ज होय तेम अहीं पण दुर्गुणरूप दुर्गन्धनी
 मात्राओज देखाय छे. चधुमां सज्जनो उकरडा तरफ तिरस्कार
 भावयी नथी देखता पण तेने अमुक अंगो सादरभावयी पण
 देखे छे. ज्यारे आ त्यागरूप उकरडा तरफ तो सज्जनो शुं पण
 महात्माओ पण तिरस्कार्य नजरथी देखे छे तेनो छांया लेवानो
 पण निषेध करे छे, एटले विष्टाना उकरडा करतां आ त्याग
 तो सर्वोशे उपेक्षणीय छे, दूरथी सो सो गजना नमस्कार
 करवा योग्य छे. परमार्थ के—आवो त्याग देखी तेना
 पर पूज्यभाव धारण करवो ते पण महापापकारी समजबुँ.
 ज्यारे वालवर्ग आवा त्यागने पण धर्मबुद्धिए निहाले छे, वंदन,
 पूजन, नमस्कार करे छे; माटे ज अहीं आ वर्गने कनिष्ठकोटि-
 नो विद्वानो याने छे. ॥

प्रथम कहुँ हतुं के—“बालवर्ग” करता मध्यमबुद्धि
 वर्ग चढतो छे, कारण के आ लोको खाली वेशयी ज सुशी
 नथी थता किन्तु वर्तन आदि तपासे छे. एटले हवे अहीं
 मुनियोहुं वर्तन कोने कहेबुँ ? अने ते वर्तन केबुँ होय ? ए वात

जाणवानी रही माटे ग्रंथकर्ता ए वातनो स्पष्ट खुलासो
करे छे.—

वृत्तं चारित्रं खल्वसदारं—
भविनिवृत्तिमत्तच्च ॥
सदनुष्ठानं प्रोक्तं
कार्ये हेतुपचारेण ॥ ७ ॥

मूलार्थ—असद्—अशुभ पापकारी आरंभोना त्यागरूप-
अभावरूप जे किया ते चारित्र, आँखुं नाम ज सद्वर्तन जाण्युं.
आ वर्तनने कार्यमां कारणनो उपचार—आरोप करी शास्त्रमां
सदनुष्ठान कह्युं छे. ”

“सत्य चारित्र अने तेनी व्याख्या”

स्पष्टीकरण—वृत्तं-वर्तनं. वृत्त एटले वर्तन-वर्ताव, आ-
चार, आँखुं नाम चारित्र—सत्यत्याग. आ सर्व शब्दो एक ज
भावने ध्वनित करे छे एटले एकार्थ प्रतिषादक शब्दो जाणवा,
परमार्थ ए के—विधि अने प्रतिषेध बचे जेमां होय ते चारित्र.
जेमके टीकाकार कहे छे—हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन, मूल्यां ए
पांच कर्म आवाना द्वारो—आश्रवो छे. आ पांचेनो जेमां
सर्वांशे निषेध होय तथा अहिंसा, जूठनिवृत्ति, अदत्तत्याग
आदिलुं विधान जेमां एकान्ततः जणाव्युं होय, मूलमां ‘खल्ल’
ए वाक्य अवधारणार्थे—निश्चयार्थे आपेल होकाथी, आवा प्र-
कारना वर्तनने ज चारित्र दर्शाव्युं छे. निदान के—विधि तथा

प्रतिषेध विनाशुं अथवा उभयकोटी पैकी एक ज विधि या प्रतिषेधकोटीवालुं चारित्र न कहेवाय, कारण के—निगोदवर्ती बीबो हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन विगेरे काँइ करता नथी एव्वले तेओ शुं चारित्री कहेवाय खरा ? नहीं ज. एवं पाषाण आगर लाकडामां आहिसक, जूठरहित विगेरे भावो स्पष्टतया मालूम पडे छे, अथवा मूर्च्छित मनुष्यां आ चिन्हो मालूम पडे छे तो शुं ते पदार्थो चारित्री कहेवाय ? नहीं ज. आ हेतुयी विधि—प्रतिषेधरूप ज चारित्र अत्रे अपेक्षित छे एम ‘खलु’ ए वाक्यथी जणाव्युं. आनो मथितार्थ मूलकर्ता जणावे छे के—‘असदारंभविनिवृत्तिमत्तश्च’ असदू—खूरा—खोटा एवा जे आरंभो के जेनायी भवनो प्रपञ्च वधे, अनंतकर्मोनो वंच थाय, आत्मा जन्म—परणना फेरामां भटके, छक्कायनो वध स्तरे क्षणे जेपां होय, तेनो त्याग—निषेध जे वर्तनमां होय ते अर्ही चारित्र जाणाव्युं, आवा चारित्रने शास्त्रकर्त्ताओ सदनुष्ठान कहे छे.

“ सदनुष्ठानलुं जात्यण ”

शास्त्रमां आत्मीय विशिष्ट स्थागरूप परिणामलुं नाम चारित्र कहुं छे. ने वाहक्रियरूप सद्वर्तनलुं नाम सदनुष्ठान जणाव्युं छे. आ रीते चारित्र तथा सदनुष्ठाननो भेद सुझ्वो दर्शाव्यो छे, छतां अर्ही चारित्रने ज ग्रंथकर्ता सदनुष्ठान ज-णावे छे. तेनो सुलासो करवा श्रीमान् हरिभद्रसूरजी कहे छे के—“ कार्ये हेतूपचारेण ” प्रथम आत्मीय विशिष्ट परिणामरूप आभ्यंतर चारित्र—लोभ तृष्णा आदिनो त्याग करवारूप भाव

प्रकट याय अने त्यारपछी तेना फलस्थपे वाहकिया—सद्वर्तनं विशिष्ट आचारोनो जन्म याय छे. एट्ले चारित्र ते कारण अने सदनुष्ठान तेनुं फल कार्यस्थप छे, माटे अहीं कार्यमां कारणानो उपचार आरोप करी चारित्रने ज—आभ्यंतरत्यागने ज सदनुष्ठान कह्युं. निदान के—सुंदर सदनुष्ठान आभ्यंतरत्यागपरिणामि विना मली शके नहीं. आ रीते सुंदर सदनुष्ठान ते ज जाणबुं के—जे परमार्थ—चारित्र—सत्यचारित्र होय. अहीं वर्तन वाहकियाख्याती चारित्रनी परीक्षा करवा मध्यमबुद्धिजनो प्रवृत्ति करे छे; माटे तेओने वालवर्ग करता चढती कोटीना कहा आठलुं विशेष जाणबुं.

इवे उपरोक्त सदनुष्ठान तो शुद्ध तथा अशुद्ध एम वे प्रकारलुं छे. अतएव आ वजे प्रकारनुं सदनुष्ठान ग्रंथकर्ता जगावे छे.

परिशुद्धमिदं नियमादांत—
रपरिणामतः शुपरिशुद्धात् ॥
अन्यदतोऽन्यस्मादपि
बुधविज्ञेयं त्वचारुतया ॥ ८ ॥

मूलार्थ—सुविशुद्ध—अतिनिर्भल एवा आत्मीय परिणामपूर्वक जे सदनुष्ठान प्रगटे ते सर्वतो शुद्ध चारित्र जाणबुं, अने ए सिवाय अन्य कारणोथी जे वाह अनुष्ठान प्राप्त याय

(२७)

ते अशुद्धचारित्र. अहीं शुद्ध तथा अशुद्धपणानी परीक्षा
पंडितजनो ज करी शके. ॥

“सदनुष्ठानना भेदो”

स्पष्टीकरण—अनुष्ठान एटले वाहवर्तन, आ वात उपर
जग्यावी गया. आ अनुष्ठान वे प्रकारांनुं कर्तुं छे. चारित्रमोह-
नीयकर्मना क्षयथी अथवा उपशम यथाथी आत्मानी विशिष्ट
त्याग तरफ जे अभिरुचि प्रगटे, आत्मा पौदूगलिक भावो प्रति
वैषयिक सुखो तरफ अने संसारना मोहक पदार्थों प्रति,
उदासीन भावयी, कर्मवर्धकभावयी, हेयपणे समजी तेनी
लालसा रहित बने, एवं शास्त्रनिर्दिष्ट आळानुसार जे किया-
ओलुं सेवन, पालन करे, दुङ्गमां ज्ञानविशिष्ट वैराग्यवडे जे
चारित्र प्राप्त थाय आने ज शास्त्रकर्त्ताओ सदनुष्ठान कहे छे.
मूलमां ‘नियमात्’ ए पद छे, एटले नियमयी आ ज सदनु-
ष्ठान शुद्ध कहेवाय. निदान के-जे चारित्रमां ज्ञानविशिष्ट वैरा-
ग्य होय ते चारित्र शुद्ध अने वंदनीय जाणवूं, सिवाय पूजावा
मनावा खातर अथवा स्वर्गसुख, राज्यलोभ, धनलोभ, यशस्कीर्ति
माटे जे त्याग स्तीकाराय ते अशुद्ध अनुष्ठान कर्तुं छे. यद्यपि
वज्रे अनुष्ठानो वाहादृष्टिए तुल्य मालुम पडे छे तदपि एक त्याग
शुद्ध आत्माभिष्मूल-पोक्ताभिष्मूल होवायी अंतरंग पवित्र विचा-
रोयी नितान्त वाहाभ्यंतर वज्रे रीते शुद्ध छे अने वीजो त्याग
मलीन वासनाओयी वासित होइ सर्वथा अशुद्ध छे. एटले
पहलो त्याग ज्ञानविशिष्ट वैराग्यनुं फलरूप छे; ज्यारे वीजो

त्याग दुःख या पोहगर्भित वैराग्यं फलरूप क्षे. एवं व्यवहार-
मां आ वन्ने त्याग सरिखा देखाय क्षे.

“ बुधज्ञेयता. ”

सामान्य मनुष्य आमां काँइ पण भेद देखतो नथी तो
पण वनावटी अने कुदरती हीरानी परीक्षा झवेरी तुरतज
करी ले क्षे, तेप बुधजनो आ वन्ने त्यागमांथी शुद्ध
त्याग तथा अशुद्ध त्यागनी परीक्षा त्यागीमां रहेला केटलाक
क्रियाखचि, क्रियाकूशलता, पापपरिहार, यतनाप्राधान्यता,
सत्यपरूपणता, प्रशान्तभाव, अल्पमोह आदि विशिष्ट चिन्हो
द्वाराए शीघ्र करी शके क्षे; मांटे ज अर्हां मूलमां कहुं के-
‘ बुधविज्ञेयं ’ अर्थात् बुध सिवाय आ परीक्षा मध्यमर्ग के
बालर्ग न करी शके. कारण के ते लोकोमां एटली विवेचक
शक्तिनो अभाव होय क्षे, ए वात पहेला ज ग्रंथकर्ताए
स्पष्ट करी क्षे. ॥ ”

बुधजनो शुद्ध अशुद्ध त्यागनी परीक्षा कया लक्षणोयी
करे क्षे ए जाणावुं जोइये. आनो खुलासो भगवान् हरिमद्र-
सूरिजी अर्हां आ रीते दशाविं क्षे-

युरुदोषारंभितया तेष्वकरण-

यत्नतो निपुणधीभिः ॥

सञ्चिदादेश तथा

ज्ञायते यत्प्रियोगेन

॥१॥

मूलार्थ—चारित्रिनो नाश थाय तेवा गुरुदोषो—म्होटा पापोनुं सेवन करे, आरंभ करे, अने न्हाना पापोनो बचाव करे तेनी यतना पाले, तथा उत्तम पुरुषो, सज्जनोनी निंदा करे विगेरे लक्षणोथी निपुणबुद्धि—बुधजनो शुद्ध अने अशुद्ध त्यागनी परिक्षा करी जाए छे ॥

“ दांभिक त्यागनी परीक्षाना साधनो ”

स्पष्टीकरण—शुद्ध अशुद्ध त्यागनी परीक्षा त्यागीओना विशिष्ट वर्त्तनयी ज यह शके ए बात उपर जणावी गया छे. फरी आ बातने ज हरिभद्रशरिजी अर्ही स्पष्ट करे छे. जेओ त्यागीपणानुं अभिपान अने तेनो वेशवारण करी त्यागी-पणानो म्होटो ढोळ धाली लांबी लांबी वैराग्यनी बातो करी, हजारोने आत्मकन्याणनो उपदेश आणी, संसार-नी असारता, लक्ष्मीनी चपलता, विषयोनी दुरंतता विगेरे जणावी, पोते ज शासनना उडाह थाय, अधर्मनी दृद्धि थाय एवा प्रकारना अने चारित्रिनो जडमूलमांथी ज नाश थाय, चरणसित्तरि अने करणसित्तरिनो सर्वथा लोय थाय, महाब्रत-तनो गंध पण न रहे तेवा गुरुदोषो—म्होटा दोषोनुं सेवन करे जेवा के—स्त्रीसंग, छोकराओ आदि साथे दुनिया विस्तृद-र्कर्म, इस्तकर्म विगेरे पापकर्म, शिव्यादि वधारवा अनेकथा मायावादो, छळ, प्रपञ्चो खेलवा, पुस्तकादिना निमित्तथी गुप्त-रीते हजारो रुपीयानो संग्रह अने वीजा हाथे व्याज विगेरे. उपजावस्तु, शरीरनी पुष्टि भाटे रोगादिकलुं निमित्त निकाली

अनेक पौष्टिक दवाओं, पाको तथा रसवतीयो तैयार करावी, यदि आ सर्व दोषो प्रगट थवानो समय आवे तो नितान्त जूठ अने बीजानी जींदगी माटी भेगी करवा दुनियाथी उतारी पाडवा अनेक खोटा प्रपञ्चो करवा चूके नहीं. भंडारोमांथी वांच-वाना शोधवा लिष्ट करवाना व्हाने पुस्तकोनी चोरी करवी विगेरे अनेक झोटा पापो सेवन करे, रात्रिविहार, वाहन आदि साथे राखी विहार करवो, स्वार्थनो उपदेश आपवो, विश्व उपदेश आपवो, स्वाग्रहने पुष्ट करवानो प्रयत्न करवो, तथा लोक समूहमां प्रशंसा कराववा न्हाना न्हाना दोषोनो वचाव करे, तेनुं प्रायश्चित्त ले, लोको समक्ष पश्चात्ताप, गहा, निंदा करे. जेवा के—रजोहरणनी आड, मुहपचिनी आड, खीसंघटो विगेरे एटले खाळे डुचा पारे अने दरवाजा खुल्ला राखे तेना जेबुं करे, ढुङ्कमां लोकोमां महात्मापणुं केम जणावाय तेवो प्रयत्न करे.

एवं पोतानामां तेवा विशेष गुणोनो अभाव छतां गुण-चान् त्यागी पहात्माओ तपस्वीयो, उच्चमगुणी आवको अने सज्जनोनी वारंवार अन्य न जाणे तेम वाक्पाठवताथी निंदा करे, तेओने उतारी पाडवा तेओना एक सामान्य सरसव जेटला दोषने मेरु जेटलो वनावी लोको समक्ष अनेकवा दीकाओ करे, वारंवार तिरस्कार करे, पोताना दोष सामे तो देखे ज नहीं, ढुङ्कमां आ लक्षणो गुप रीते जेमां होय के जे लक्षणो उपलक दृष्टिये अन्यने न देखाय

(३१)

माटे ब अहीं ग्रंथकर्ता जणावे हे के—अत्रे शुद्ध अशुद्ध त्यागनी परीक्षा “ निषुणधिभिः ” कुशाग्रबुद्धिवानो सत्यतच्चना परीक्षको ज करी शके. निदान के—त्यागनी परीक्षा करवा इच्छके उपर कथित सर्व वात ध्यानमां राखवी, अने तदनुसार परीक्षा करी उच्च त्याग प्रति पूज्यभाव धारण करवो, केवल विद्वा, व्याख्यानकौशलता के ग्रसिद्धनामांकितता देखी अंगलाक्ष्मुं ते भविष्यमां नितान्त स्वात्पाने धर्मभ्रष्ट करवानो ज उपाय हे.

बस ए रीते यालवर्ग तथा मध्यमबुद्धि जनो शेमां धर्म पाने क्षे ? अने ते केटला अंशे अनुचित क्षे ? ए विषय पर विस्तार्यी शंका अने प्रत्युचर करी विचार कर्यो. हवे युध-जनो आगमतच्चनी परीक्षा करी धर्म प्राप्त करे क्षे ए वात आचार्य श्री प्रथम कही गया हता, तो आगमतच्च क्युं ? अने तेनी परीक्षा शी रीते करवी ? तेनो विचार ग्रंथकर्ता जणावे क्षे, सर्वमां आ विषय सूक्ष्म होवार्थी अनेते ज परिणामे स्वीकार्य तथा हितावह होवार्थी, तेनो विचार ग्रंथकर्ता वहु ढंडा उत्तरा जणावे हे.

आगमतच्चं ज्ञेयं,
तद्वृष्टेष्टाविरुद्धवाक्यतया ।

उत्सर्गादिसमान्वित-

मलमैदंपर्यशुद्धं च || १० ||

मूलार्थ—जे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंथी अने इष्ट एट्ले आगमना पोताना ज वचनोवडे अविरुद्ध होय, एवं उत्सर्ग तथा अपवाद युक्त होय, तथा ऐदंपर्यं-परमार्थवडे शुद्ध होय ते ज खंडं आगमतत्त्व बाणधुं.

स्पष्टीकरण—आगमतत्त्वनी कसोटी करवा अर्हीं हरिभद्र-सूरिजी खरो मार्ग दर्शवि छे. अत्रस्थ श्लोकमां हरिभद्रसूरिजी आगमतत्त्वनी परीक्षा माटे त्रण प्रकारो जणावी उत्तरना वे श्लोकयी तेनुं विवेचन करे छे. अर्हीं आगमतत्त्वनी परीक्षाना मुख्य त्रण विभागो कहे छे. आ त्रण विभागो आ रीते जाणवा—जे आगमतत्त्व दृष्ट अने इष्ट वज्रे रीते अविरुद्ध वाक्य होय १, उत्सर्ग अने अपवादयुक्त होय २, तथा ऐदंपर्यवडे परिशुद्ध होय ३.

दृष्ट, एट्ले प्रत्यक्ष, अनुयान आदि प्रमाणो, अने इष्ट एट्ले आगम आ वज्रेनी कसोटीमां जे आगमोक्त तत्त्व अविरुद्ध होय, एकवाक्य होय. परमार्थ ए कै—आगममां आत्मा, कर्म, वंघ, मोक्ष विगेरे पदार्थों कहा छे. आ पदार्थोंनी प्रथम प्रत्यक्षादि प्रमाणाद्वारा परीक्षा करवी, यदि ते परीक्षामां जो ते ते पदार्थों बराबर सिद्ध याय, अविरुद्ध मालुम पडे तो ज ते तत्त्व सञ्चुक्तिक कहेवाय. आ वात समजवाने आपणे दाखला तरीके आत्मानो ज सामान्य विचार करीये. शास्त्रमां “अतिथि मे आया उच्चाङ्गे” “एने आया” मारो आत्मा उत्पत्ति धर्मवान् छे. ” इत्यादि कहुं छे. आत्मा—एट्ले चैतन्य

जीवनामक पदार्थ अने ते शरीरथी भिन्न तथा उत्पत्ति-विनाश-रूप पर्याय-धर्मवान् छे. स्वाणमां रहेल माटी हँमेशा कायम ज छे, परंतु जेम कुंभार आदिना हाथमां आव्या पक्षी तेना विविध घट आदि आकारो-पर्यायो बने छे, अने जूना जूना पर्यायो-धर्मनो नाश थतो प्रत्यक्ष देखाय छे. परमार्थ के-माटी ज्यारे घटपणे परिणामे त्यारे घटाकाररूप पर्याय उत्पन्न थयो अने माटीरूप पर्याय ते समये न ओळखावायी तेनो नाश थयो. एवं माटीरूप द्रव्य घटमां कायम ज छे. तथाप्रकारे आत्मा पण जानवर, मनुष्य, देवता, नारकीरूप गतियोमां प्रत्यक्ष देखाय छे, कारण के-आत्मा सिवाय जगतनो सर्वव्यवहार लुप्तप्रायः यह जाय, धर्म या पापकर्म पण निष्फल मानवा पडे, अत एव ज्ञानादि गुणवान् विलक्षण शक्तिवालो कोइ आत्मा नामक पदार्थ छे एम मानवुं जोइये. आ आत्मा यद्यपि अछेद्य, अमेद्य, अदाह्य, अजर, अभर, अविनाशी, धर्मवान् छे, तो पण माटीनी माफक नवा नवा रूपपणे परिणामे अने पूरातनरूपपणे तेनो अभाव थतो अनुभवाय छे. जानवरपणुं छोटी मनुष्यपणुं, मनुष्यपणुं छोटी देवपणुं, देवपणुं छोटी जानवरपणुं एवं नारकी-पणुं आ रीते आत्मा नवा नवा पर्यायो-धर्मो अनुभवतो तथा जूना जूना धर्मोनो त्याग करतो प्रत्यक्ष अनुभवपथमां आवे छे, अने प्रत्येक अवस्थामां आत्मा पोते शाभ्वत ज देखाय छे; कारण के पूर्वावस्थामां अनुभवेल, सेवेल, करेल, दरेक कायों उच्चर अवस्थामां स्मृतिपथमां आवता तथा भोगवाता मालूम पडे छे.

अन्यथा जेम देवदत्ते करेल कायों अने कर्मों यज्ञदत्तने स्मरण-
मां तथा भोगमां आवता नथी, तेम पूर्वावस्थामां करेल कायों-
तुं स्मरण तथा कर्मोंनो भोग उत्तरावस्थामां आत्माने वात
अवस्थामां करेल कायोंना स्मरणनी माफक संभवे ज नहीं,
अतएव आत्मा उत्तिति आदि विशिष्ट धर्मवान् छे ए शास्त्रोक्त
तत्त्व प्रमाणथी अविरुद्ध सिद्ध थाय छे. एवं आत्मा प्रत्येक
वारीरभेदे भिन्न भिन्न छे तो पण आत्मरूप स्वरूपनी अपेक्षाए
सर्व आत्माओ तुल्यरूप छे अर्थात् मनुष्य, देव आदिमां जेबुं
आत्मतत्त्व छे तेबुं ज आत्मतत्त्व एक कीडामां अने हाथीना
शरीरमां पण छे. हा मात्र मनुष्यमां केटलीक विशेष आत्म-
शक्तियो आविर्भूत छे, उत्तरोत्तर विकास यतो देखाय छे,
ज्यारे देवोमां एयी पण अधिक आत्मशक्तियो विकसित होय
छे अने कीडाओमां ए सर्व शक्तियो कर्मोंना जोरे तिरोभावपणे
रहेल होय छे, निदान के-आगाध बुद्धिमान् सर्व विद्यासंपन्न
कोई मनुष्य बेदना या मादिरायी मूर्च्छित यथा पङ्की तेनी सर्व
शक्तिओ विद्यमान छतां तिरोभावरूपे यइ गयेल आपणे अनु-
भवीये छीओ, एवं कीडा जेवी अवय योनि प्रविष्ट आत्मानी
सर्व शक्तियो अधमयोनि तथा अपारकर्मोंना कारणे दवायेल
ज छे एम मानबुं जोहये, नहीं के तेओमां आत्मा नथी अथवा
शक्तियोनो अभाव छे. निष्कर्ष ए के-आत्मत्वरूपेण सर्वात्मा-
ओ तुल्य स्वरूपवान् होत्रायी सामान्यरूपे एक ज छे, ने विशेष
रूपेण अनंत आत्माओ छे, निदान के-ए रीते आत्मा प्रत्यक्ष

आदि प्रमाणाथी जेम अविलम्ब स्वरूपवान् अनुभवाय छे, तेम इष्ट एट्ले आगमना पूर्वापरना वाक्योथी पण अविलम्ब स्वरूप-वान् ज सिद्ध करेल छे, परंतु आगमना एक देशमां आत्मा माटे अन्यथा प्रस्तुं होय, अने अन्य स्थलमां तेथी विलम्ब कहुं होय तेम न होय. हा जैनदर्शनमां निश्चय अने व्यवहार, वाद अने आभ्यंतर, द्रव्य अने भाव, पर्याय अने गुण विग्रेरे स्वरूप प्रस्तपण करती वाखते भिन्न भिन्न स्वरूप दर्शाव्युं छे खरुं, परंतु ए सर्व स्वरूप कथनमूल आत्मस्वरूपनो वाधकत्ता न होवाथी किन्तु पुष्टिकारक ज होवाथी तेनुं नाम विलम्बकथन न कहेवाय, उलाढुं ए तो सत्य तत्त्वकथन, सर्वज्ञकथित तत्त्व-पणानी ज सिद्धि करे छे. अहीं आगम-परीक्षामां विद्वानोए एटलुं ज तपासवाणुं छे के-एक ज वस्तुतत्त्वनुं कथन एक स्थलमां भिन्न होय. अने अन्यत्र ते ज वस्तु भिन्नरूपे कही होय आणुं नाम विद्वानो विलम्ब वाक्यता कहे छे. इष्टां१ तरीके एक स्थानमां “ अस्ति आत्मा ” एवुं कहुं, अने फरी अन्यत्र “ नास्ति आत्मा ” एम कहुं होय आमां सत्य शुं समजवुं? अथवा जेम वेदमां कहुं छे के-“ मा हिंस्यात् सर्व-भूतानि ” “ सर्व जीवोनी हिंसा न करवी ” आम कक्षा पछी फरी ते लोको कहे छे के-“ घट शतानि नियुंजेत, पशुनां मध्यमेहनि ” मध्यमेह नामना यज्ञमां छ सो पशु-ओनो होम करवो ” जे हिंसा पापकारी-वंधकारी मानी तेनो सर्वांगी निषेध कर्यो, ते ज हिंसाने पुनः धर्म्य मानी, स्वर्गदात्री मानी विधेय मानवी ए शुं विलम्ब न कहेवाय ?

फरी जे आगमतच्च उत्सर्ग तथा अपवाद युक्त होय एटले
 दरेक वस्तुतच्च प्राधान्य पणे विधेय अने परिहार्य दर्शावी पुनः
 विशिष्ट कार्यनी अपेक्षाए विधेयतया दर्शावी होय, निदान के—
 विशेषवादना स्थल पर विशेषवादनी अने सामान्यवाद स्थल-
 मां सामान्य कथन वरावर कहुं होय, किन्तु विशेष स्थानमाँ
 सामान्य कथन अने सामान्य स्थलमाँ विशेष कथन कहुं न
 होय। परमार्थ के—आने जैन शास्त्रो उत्सर्ग तथा अपवादवाद
 कहे छे। ए रीते जे आगमोक्त तच्च कथन कर्यु होय ते ज आग-
 मतच्च नितान्त ग्राह जाणावुं। जेम के—जैनशास्त्रो हिंसामाँ पाप
 कहे छे, जलना जीवोनो आरंभ करवाथी विनाश थाय अने
 तेथी पापवंध थाय एवुं कहे छे; छतां मुनियो एक स्थलयी
 अन्यत्र गमन करता होय अने मार्गमां नदी आवे तो यतना-
 पूर्वक उतरी सामे कठि जाय एवी जिनाज्ञा छे। आ स्थलमाँ
 जलना जीवोनो वध थाय छे तो पण तेओने पापवंध तुच्छ
 कश्तो छे, कारण के—वध करता आरंभमय ग्रहन्ति करे अने
 जीवोनो वचाव करवानी अपेक्षा राखे नहीं तेपज कल्याणनी
 इच्छा विनानो होय, हुंकमाँ सोपयोग वर्तन न राखतो होय
 एवो ज वधक अवश्य पुष्ट पापवंध करे एवुं शास्त्रो कहे छे।
 अर्थात् उत्सर्गथी जीववधनो निषेध करी, तेमाँ पाप प्रतिपादन
 करी फरी अपवादथी नदी उतरवानी आज्ञा आपी तेमाँ थेल
 जीववधथी अल्पवंध जणाव्यो, कारण के मुनि नदी उतर्या
 सिवाय सामे काठे जइ शके नहीं अने जलना जीवोनो तेमाँ

उत्तरवाधी अवश्य वध थाय ज एट्ले ए वध अपरिहार्यरूप होवाथी आसोए नदी उत्तरवानी मुनियोने अपवादथी आज्ञा आपेल छे. कोइ साधी नदीमां छवती होय, अन्य कोइ उतार न होय अने मुनि त्यां हाजर होय तो मुनि पण तेमां पडी साधीनो वचाव करी ले. कार्य पडे ग्रहस्थ मुनिने दोषयुक्त आहार आपे-आ सर्व आज्ञाओ प्रभुप अपवादथी आपी छे ने तेमां दोषना बदले लाभ ज दर्शाव्यो छे. परमार्थ ए के-ज्यां उत्सर्ग, सायान्य आज्ञाथी वर्तन करवा जता विशेष आत्महानि, अकल्याण थंतुं होय त्यां विशिष्ट आत्मलाभ, कल्याण माटे विशेष कथन करी अन्यथा प्रवृत्ति करवानी छुट आपी होय ते ज आज्ञाओ निर्दोष सयुक्त अने सर्वज्ञवाक्यरूप कहेवाय, मरितार्थ एट्लो ज के उत्सर्ग वाक्य कल्याणने माटे होय अने अपवाद वाक्यो पण नितान्त उत्सर्गनी पुष्टि करता होय परंतु उत्सर्ग वाक्यना विघ्नसकरूप अपवाद वाक्यो न वने आ प्रमाणे विवेक जे आगमतत्त्वमां वरावर सचवायो होय, ते ज सत्य आगमतत्त्व जाणवुं. अर्ही जेओ यज्ञमां यती हिंसाने धर्म्य तथा विधेय माने छे तेओ पण आ हिंसा सापवाद छे एम कहे छे; कारण के स्वर्गार्थी यज्ञक्रिया अवश्य करे अने यज्ञमां जे पशु-ओ वल्लरूप वने तेओ पण यज्ञ तथा वेदमंत्रना प्रभावथी स्वर्ग प्राप्त करे छे, एट्ले आ हिंसा पण अहिंसा ज जाणवी. आना दुङ्क उत्तरमां कहेवुं जोइए के-याज्ञिकोनी आ दलील अनुभव, युक्तियो अने प्रमाणोना प्राहारोने लेश पण सहन करवाने अ-

शक्त क्षे. प्रथम तो यज्ञ धर्म्य क्षे के नहीं ए मुख्य विषय विचादग्रस्त क्षे, तथा यज्ञ सिवाय दानादि क्रियाथी स्वर्ग न मलतुं होय अने यज्ञथी ज स्वर्ग मलतुं होय तो स्वर्गार्थी माटे, अशक्यतया यज्ञ विधेय मनाय खरूं. आम छतां आठलुं तो चोक्स जाणवुं के यज्ञ ए आरंभक्रिया होवाथी स्वर्ग तो दूर रहुं, किन्तु मनु-प्यपणुं पण तेनाथी प्राप्त थवुं असंभवनीय क्षे. एवं तेमां जे हिंसा थाय ते पण क्लिष्ट परिणामशून्य तो नथी ज. याज्ञिको तेमां जे पशुओनो होम करवा वेसे छे ते काँइ तेओनो कोइ पण प्रकारे वचाव ज करवो, तेओने दुःख न थाय तेम वर्तवुं, दयाबुद्धि राखी यज्ञ करवो विगेरे काँइ विचार राखता होय ए संबंधमां अनुभव अने शुक्तियो सर्वथा ना कहे छे. अरे ! जे पशुओ लांवा वराडा पाढ़ता होय, अग्निथी त्रास पामी मृत्युना भयथी दूर भागता होय तेने वांधी, जघरजस्तिथी जकडी, निर्दयतापूर्वक चांडालनी माफक ढुकडा करी तेनो होम थाय, तेनी शेषाओ सानंदपणे खवाय ते हिंसामां यदि पुण्य होय, अनुकर्पा-भाव होय अने तेथी स्वर्ग प्राप्त थाय तो माता-पितानो यज्ञ शा-माटे न करवो १ परमार्थ के—ए हिंसा क्लिष्ट परिणामय अने दयाबुद्धि रहित होवाथी अधर्म्य अने एकान्त त्याज्य ज क्षे,— एटले ते सापवाद कैम कहेवाय ? सापवाद प्रवृत्ति तो ते ज कहे-वाय के जेनाथी आत्मकल्याणना मार्गमां स्वलना न थाय अने उत्सर्गमार्गनी एकान्ततः पुष्टि ज करे, अतएव याज्ञिक हिंसा तो उत्सर्गपथनो ध्वंस करी आत्माने दुर्गतिमां घसडी जाय क्षे,

निदौष जाणुं. अतः अर्हीं प्रथकार “हषेष्टाविरुद्धवाक्य-
तथा ” प्रथम कथीत श्लोकना आ पदनी विस्तृत समीक्षा
करवानो प्रकार दर्शावे हे—

आत्मास्ति स परिणामी,
बद्धः सत्कर्मणा विचित्रेण ॥
मुक्तश्च तद्वियोगाद्भिं—
साहिंसादि तच्छेतुः ॥ ११ ॥

मूलार्थ—आत्मा जीव हे, ते परिणमन स्वभावयुक्त
तथा विचित्र एवा सद्गूत कर्मोथी बद्ध हे ने कर्मोथी मुक्त
हे. अर्हीं हिंसा विगेरे आत्माने कर्मबंधमां अने अर्हिंसा विगेरे
कर्मोथी छूटवापाँ कारणो जाणवा ॥

स्पष्टीकरण—अर्हीं आगमोक्त तत्त्वनी परीक्षा करवा
अर्थे आचार्याश्री उपायो दर्शाविता वदे हे के—ज्यां आत्मा-
जीवनी सत्ता प्रतिपादन करी होय, निदान के—पुण्य, पाप,
मोक्ष, परलोक, दानादि सत्कर्मों विगेरे तत्त्वोनो मूलस्थंभ
आत्मा ज हे. यदि आत्मा ज न होय तो उपदेष्टा, श्रोता
अने उपदेश विगेरे कोना माटे ? तपश्चर्या तथा इंद्रियादि
दमनलुं फल शुं ? त्याग अने दान विगेरे शाना माटे ? अत-
श्व ए सर्वनो मूल आधारभूत आत्मा हे ने ते आत्मालुं कथन
उयां कर्युं होय ते ज सत्य आगम.

टीकाकार महाराज कहे छे के—नास्तिको आत्मसत्ता
मानता नयी. तेग्रो कहे छे के—प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोद्भारा
आत्मा घटी शकतो नयी, जे वस्तु होय ते चक्षु आदि इन्द्रियो-
वडे जरूर देखाय, आत्मा चक्षु इंद्रियथी देखातो नयी, पर-
माणुओ जो के साक्षात् देखाता नयी तो पण तेनुं कार्य घट
पट विग्रेरे देखाय हें माटे ते छे एम मानवा जोइये; ज्यारे
आत्मानुं बनावेल कोइ पण कार्य देखातुं नयी माटे आत्मा
नयी. अनुमानयी पण आत्मा घटतो नयी. अनुमान प्रमाणमां
लिंगज्ञान मुख्य साधनभूत हें. एटले जेम अमुक स्थानमां धूम
दर्शन थतां त्यां अभिनुं ज्ञान थयुं अने त्यारपछी कोइ स्थले
दूर्धा धूमदर्शन थवायी अहीं अभि अवश्य होवो जोइये;
कारण के ज्यां ज्यां धूम होय त्यां त्यां अग्नि निश्चयतया
होय. रसोदामां तथाप्रकारना अनुमध प्रत्यक्ष देखाय हें.
एटले अहीं पण अभि छे एवो निश्चय अनुमानयी थाय हें.
एवं आत्माने अथवा तेना लिंगने कोइ स्थले प्रत्यक्ष जोयेल
नयी के जे परयी आत्मा हें एवं अनुमान करी शकाय, ज्यां
सुधी आत्माना कोइपण लिंगनुं प्रत्यक्ष दर्शन न थाय त्यां
सुधी आत्माने सिद्ध करवा अनुमान प्रमाणनी गति थइ शके
नहीं. एवं आत्मा जेवो अन्य पदार्थ अन्यत्र स्थानमां देखातो
पण नयो, जेथी आ आत्मा छे तेना सरिखो आ पण पदार्थ
छे माटे ते आत्मा कहेवाय, ए रीते उपमानप्रमाणयी पण
आत्मानी प्रतिष्ठा यह शकती नयी, फरी आगमवचनो अन्या-

न्य पुरुषो ग्रतिपादित दोवाथी अनेक स्थलमां परस्पर विरोधी-
पणे भिन्न भिन्न रीते पदार्थनुं प्रतिपादन करे छे. एटले आ-
गमो ज अविश्वसनीय होइ तेनाथी आत्मा छे ए मान्यता संभवे ज.
क्यांथी ? अतएव आत्मा नथी ए सत्य छे. तथा जेम मदिरा
मादक पदार्थना संयोगथी पेदा थाय छे तेम पांचभूतना संयो-
गथी आत्मा पण आविर्भूत यह जलना बुद्धुदो जेम जलथी
प्रगटी तेमां तेनो विलय थाय छे एवं आत्मानो पण पांच-
भूतोमां ज विलय-नाश थाय छे. अतएव परिणामे आत्मा
चैतन्य नामक कोइ पदार्थ स्वतंत्र नथी ज.

आ वादने निर्षूल करवा हरिभद्रसूरिजी उपरोक्त श्लोकना
ग्रथम चरणथी प्रतिपादक शैलीए वदे छे. “ आत्मास्ति ”
आत्मा-चैतन्य एक स्वतंत्र पदार्थ छे, नहीं के अमुक पदार्थना
संयोगजन्य आ आत्मानीः अस्तिता केवल शास्त्रो ज कथन
नथी करता, किन्तु प्रत्यक्ष आदि प्रमाणो पण तेनी अस्तिता
सिद्ध करे छे ते आ प्रमाणो—

आत्मा शरीरथी एक भिन्न पदार्थ रूपे छे ज, ते न होय
तो ‘ आत्मा छे के नहीं ? ’ एवो संशय थाय नहीं. संशय ए
ज्ञानरूप छे, अने ज्ञान आत्मानो गुण छे, केवल शरीरमां
अथवा खाली इन्द्रियोमां ते गुण देखातो नथी. निदान के-
शरीरजन्य जो गुण होय तो मृतकलेवरमां ते गुणनुं दर्शन यहुं
जोइये अने इन्द्रियोनो ती गुण होय तो अमुक इन्द्रियना विवरण

पह्ली ते गुण न देखावो जोइये. दाखला तरीके अमुक माणसे नेव्रद्वाराए अमुक अमुक चीजोनुं यथावत् भान कर्यु अनेत्यारवाद ते अंध थयो छतां चक्कुना नाशथी तेने थयेल ज्ञाननो कांइ नाश थतो नथी; किन्तु ज्यारे ज्यारे पूछवामां आवे त्यारे त्यारे ते चीजोनी ओळखाण बरावर करावी आपे हें एट्ले ए गुण चक्कुनो तो नज कहेवाय, कारण के-चक्कुनो तो पहेला ज नाश थयो हे आथी ज अज्ञानगुणने भिज मानवो जोइए. आ रीते आ ज्ञानगुण प्रत्यक्ष भिजरूपे अनुभवमां आववाथी गुणी आत्मा प्रत्यक्ष हे एम मानवुं ज जोइये. निदान के-आत्मा शिवाय आ गुण अन्यत्र अनुभवातो नथी. “ अस्त्येव आत्मा प्रत्यक्षो, जीवो ह्यात्मानमात्मना । अहम्-स्मीति संवेत्ति, रूपादीनि यथेन्द्रियैः ॥ १ ॥ ” फरी छणस्थने इंद्रिय प्रत्यक्ष होवाथी सूक्ष्म पदार्थनुं प्रत्यक्ष ज्ञान अमुक अंशे ज थाय हे, ज्यारे पूर्ण आत्म प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञोने ज होय हे. एट्ले जे आत्मा पूर्णरीत्या सर्वज्ञोने प्रत्यक्ष हे, ते आत्माने आपणे ज्ञानना अभावथी पूर्णतया प्रत्यक्ष न करी शकीये एतावन मात्रथी आत्मा नथी कहेवानुं साहस करवुं ते भूढाज गणाय.

एवं अर्ही “ आत्मा हे के नहीं ” ए संशय उद्भववाथी आत्मा पदार्थ जल्ल कोइ पण जग्याए होवो जोइये, कारण के कोइ पण वस्तु संवंधी ज्यारे ज्यारे संशय थाय हे त्यारे त्यारे ते वस्तु कोइ पण स्थानपां होय हे ज. अन्यथा ते

वस्तु संबंधी संशय उद्भवतो नथी, “ नास्त्यात्मा ” ए
चाक्षय पण आत्मानो एकान्त निषेध करतुं नथी, किन्तु
“ नास्ति अन्न घटः ” “ आ स्थानमां घट नथी ” ए
चाक्षय जेम-एतत् भूमि विशिष्ट घटनो अभाव दर्शावे ह्ये परंतु
सर्वत्र घटनो अभाव दर्शावतुं नथी. अर्थात् ए चाक्षयथी अन्यत्र
घटनी सत्ता सिद्ध थाय ह्ये. एवं उपरोक्त चाक्षय पण अमुक
शरीर अथवा इंद्रियोमां आत्मा नथी ए ज भाव दर्शावे ह्ये, परंतु
सर्वत्र आत्माभाव दर्शावतुं नथी. निदान के-एक स्थानमां
संशय थवाथी त्यां संशयी आत्मा जेम सिद्ध थाय ह्ये तदूक्त
अन्यत्र पण ज्यां ज्यां तदाकार संशय उद्भवे त्यां त्यां
आत्मा ह्ये एवं अनुमान चोकसपणे प्रवर्तें ह्ये.

ग्रत्यक्ष अने अनुमान प्रमाणथी आत्मानी सिद्धि थवाथी
उपमान अने आगम प्रमाणथी आत्मा सिद्ध ज ह्ये एटले तेने
समजावधानी कांइ विशेष जखर रहेती नथी; कारण के-
उपमान प्रमाण तेना पाल्खल ज गमन करे ह्ये अने आगम प्रमाण
तो ‘ अतिथि मे आया उच्चाहये ’ इत्यादि वचनोथी
आत्मसत्ता पोकारी पोकारी वारंवार कहे ह्ये. आ रीते युक्ति
तथा प्रमाणोद्धारा आत्मा वरावर सिद्ध होवाथी जे शास्त्रो
नास्तिक पतनी भावना दूर करी आ आत्मतत्त्वतुं कथन करता
होय ते ज आगमचाक्षय ग्राह थाय. अतएव अहीं पण भगवान्
हरिभद्रसुरिजी आगमतत्त्वनी परीक्षानो नियम दर्शावता बदे ह्ये
के—“ आत्मास्ति ” ‘ आत्मा ह्ये ’ अर्थात् जैनदर्शनमां

आत्मा चोक्स मान्य छे. आ आत्माने केटलाको नित्य कहे छे अने कोइ अनित्य पण कहे छे. नित्यपक्षमां “ अप्रच्यु-
तानुत्पन्नस्थिरैक स्वभावो हि नित्यं ” ‘ जैनो नाश न
याय, उत्पन्न न थाय अने सर्वदा स्थिर एक स्वभावमां रहे ते
नित्य’ आ लक्षण होवाथी आत्मा जो उत्पन्न न थाय, नाश न
पाये अने स्थिर एक ज स्वभाववान् होय तो जन्म तथा मरण
कोने ? क्षणमां सुखी, क्षणमां दुःखी, क्षणमां, रोगी क्षणमां
निरोगी आ अवस्थाओ कोनी ? बाल, युवान अने वृद्ध अव-
स्था अनुभवनार कोण ? मनुष्य, नारकी, तिर्यच, देवता आदि
भावोमां रमनार कोण ? निदान के—उपरोक्त नियम प्रमा-
णे तो सर्वदा आत्मा एक ज रूपमां वर्तनशील मालूम पड्वो
बोइए, जे मनुष्य होय ते मनुष्य ज, जे देव होय ते देव ज, जे
नारकी होय ते नारकी, जे बाल होय ते बाल ज, रोगी होय ते
रोगी, दरिद्र होय ते दरिद्री ज, धनी होय ते धनवान् ज, मृद
होय ते मृद ज, ए रीते एक ज अवस्था प्रत्येक आत्माए अनुभ-
वी घटे, किन्तु अवस्थाओनुं परावर्तन यस्तु न घटे.

अनित्यपक्षमां—आत्मा क्षणस्थायी होवाथी प्रथम क्षणो-
त्पन्न आत्मा द्वितीय क्षणमां नयी रहेतो अने द्वितीय क्षणोत्पन्न
आत्मा ए रीते भिन्न क्षणमां नयी रहेतो. ए रीते प्रत्येक क्षणमां
आत्मा उत्पन्न थाय अने विनाश पाये अर्थात्—अनित्यवादपक्ष-
मां क्षणोनी केवल परंपरा ज मान्य छे. आ रीते कुल कर-
वाथी प्रथम क्षणमां उत्पन्न आत्माए जे काँइ पुण्य या पापकर्म

कर्यु अने ते आत्मा मरी गयो. हवे वीजी क्षणामां उत्पन्न आ-
स्माए—पूर्वात्माए कृतपुण्य—पापनुं फल अनुभव्युं. आथी जेणे
पापकर्म कर्यु तेणे भोगव्युं नहीं अने जेणे ते कर्म उपार्ज्यु नयी
तेणे अनुभव्युं. एट्ले करे कोइ अने अनुभवे कोइ. चोरी या
चद्रमासी कोइ करे अने तेनी शिक्षा अन्य भोगवे ए शुं न्याय
गणाय खरां ?

आ रीते उभयपक्षमां अनेक दोषो उद्भववाथी ग्रंथकर्ता कहे
छे के—आ आत्मा “परिणामी” भावार्थ के—आत्मा भिन्न भिन्न
अवस्थामां, भिन्न भिन्न भावोमां परिमनभाववालो छे. पांचे गति-
योमां गमन स्वभाववान्, अलग अलग भवोमां पर्यटन करनार,
वाल, युवा अने बृद्ध आदि अवस्था अनुभवनार, दारिद्र्य, रोग,
सुख, दुःख पर्यायोनो भोक्ता, चैतन्य स्वरूपी आत्मा छे. निदान
के—द्रव्यनी अपेक्षाए आत्मा नित्य चैतन्य स्वरूपी छे, ने पर्याप्तनी
अपेक्षाए अनित्य जन्म, मृत्यु, दारिद्र्य, रोग, शोक, देव, मरु-
प्यादि विविध भावोनो अनुभविता कहो छे. परिणामनुं लक्षण
टीकाकार उपर कथित भावने अनुकूल जणावे छे. “परिणामो
स्थार्थातरगमनं न सर्वथा व्यवस्थानं । न च सर्वथा
विनाशः परिणामस्तद्विदामिष्टः ” ॥ १ ॥ “ एक
भाव—अवस्था मूकीने अन्य अवस्थामां गमन करवुं, सर्वथा
एक ज भावमां स्थित न रहेवुं, सर्वथा विनाश पण जेनो न थाय
तेनुं नाम परिणामस्वरूपवेत्ताओ परिणाम माने छे ” निष्कर्ष—
आत्मानी जेम अस्तिता सिद्ध छे तेम ते परिणामी पण सिद्धज

हे, आ प्रमाणे भिन्न भिन्न अवस्थाओंमां अनुगामी धर्मचान् आत्मा प्रमाण अने युक्तिग्रीथी वरावर सुधारित हे, एम विना शंकाये कबूल करवूँ जोइये.

परिणयनभावो-भिन्न भिन्न पर्यायोनो अनुभव पण आत्माने हेतु विना तो न ज संभवे, केमके अन्यथा सिद्धात्माने पण ते ते भावोनो अनुभव मानवो पडे. आ हेतुओ कर्मों सिवाय अन्य तो नहीं ज. कर्मोंना संबंधथी ज आत्मा अनेक पर्यायोने अनुभवे छे अने सिद्धात्माने ते कर्मों न होवाथी ते ते भावोमां पर्यटन करवानी जरर रहेती नथी. निदान के-संसारस्थ आत्मा “ वद्धः सत्कर्मणा ” मोहनीय आदि आठ कर्मोंथी आवृत हे, वद्ध हे. आ कर्मों पण सदूरूप-विद्यमान हे, परंतु असदूरूप कल्पनामात्र नथी. असदूरूप पदार्थ आत्माने सुखदुःख आदि पर्यायोंमां हेतुभूत कदापि न वने. जे पदार्थ वंध्यापुत्रनी याफक असत्-अविद्यमान हे, कल्पनामात्र हे, ते पदार्थ यदि निपित वनतो होय, फल आपवा समर्थ थतो होय तो वंध्यापुत्र पण जरर वंध्याने फल अर्पण करे; परंतु वंध्याने ते मलतुं नथी. आत्माने उत्पन्न थता सुख-दुःख विगेरे भावो सामान्य ज्ञन पण अनुभवे हे. एटले जगत्‌मां सदूरूप कर्मों हे अने आत्मा तेना संबंधथी संसारपर्यटन आदि भावो पामे हे, ए सिद्ध थयुं.

आ कर्मों अनेक प्रकारना हे. कर्मोंना मुख्य आठ भेदो—
ज्ञानावेरणीय, दैर्घ्यनावरणीय, मोहनीय, अंतराय, वेदेनीय,

आयुष्य, नाम, गोर्ते-ए रीते शास्त्रोमां कहा छे. तेना उत्तरभेदो १२० कहा छे. तेमज आ कर्मोने शुभफल शर्पक अने अशुभ-फलार्पक पुण्य तथा पापरूप वे प्रकारे जणावेल छे, माटे ग्रंथकर्ता कहे छे के—“ विचित्रेण ” विविध प्रकारना कर्मोंथी आत्मा बद्ध छे, अतएव विविध फलोनो अनुभव पण आत्मा करे छे. एवं “ सुक्तश्च तद्वियोगात् ” दर्शित आठे कर्मों-नो सर्वथा वियोग, विलय थवाथी आत्मा अने कर्मों सर्वथा मिळ भिन्न थवाथी आत्मा शुद्ध, निर्दोष स्फाटिकरूप चैतन्य स्वरूप पामी मुक्त-सिद्ध थाय छे एटले आत्मा केवल सद्भ-चित् आत्मरूपने ज अनुभवे छे. निदान के—पछी सुख-दुःख, जन्म-मरण, रोग-शोक, मनुष्यादि भावोनुं पर्यटन छूटी जाय छे. हुंकमां ए रीते परिणमनमाववाळो विचित्र कर्मोंथी बद्ध अने कर्मोंथी छूटो थनार एवो आत्मा छे एम सिद्ध कर्यु.

अर्हा प्रसंगवशात् जणावदुं जोइये के—कर्मों जड पुद्द-गलस्वरूपी अतीन्द्रिय वस्तु छे, अने आत्मा चैतन्य ज्ञानादि स्वरूपवान् छे. निदान के—वस्तुतः आत्मा ज्ञानादि धर्मोने मूकी अन्य क्षणिक सुख-दुःख, रोग-शोक, जन्म-मरण, मनुष्यादि पर्यायरूप धर्मवान नथी किन्तु कुहाडो के तरवार जड छतां मनुष्यना हाथमां आव्या पछी मनुष्यना प्रयत्नथी काष्ठ आदिने कापी नांखे छे, पत्थर पण जड छतां ग्राहकना हाथमां आव्या पछी अन्यने मारवा समर्थ वने छे, एवं कर्मों पण आत्माना संयोगने पामी आत्मस्थ वनी आत्माने तत्त्वकारना भावोमय.

वनावे छे. एट्से तरवार पकडनार निर्वल छतां तरवारनी स-हायता पामी स्वात्माने समर्थ माने छे, मारामां अन्यने मारवानी शक्ति छे. हुं बलवान् हुं एम मिथ्या अनुभव करे छे एक प्रकारनो विचित्र जुस्सो अनुभवे छे, एवं आत्मा पण ले जे भावो पोताना स्थायी नथी ते ते कर्मकृत भावोने कर्मना संबंधयी पोताना माने छे स्वपणे अनुभवे छे. तत्त्वावनो अभिमानी वनी कमोई मिश्च पोतानुं रूप विसरी जह कर्में वनावेल रूप ते ज पोतानुं स्वरूप छे एम समजे छे, श्रद्धे छे, आयीज अनेकथा आत्मा विविध भवोमां पर्यटन करे छे, अभिमानिक मान्यता आत्मा पोतामां रहेल अनादि रागद्वेषादि दोषोना कारणायी ज अनुभवे छे ने कर्मोनै बांधे छे. तथा संसारपर्यटन करे छे, एवं कर्मो रागद्वेषादिमय आत्माने वनावे छे तथा रात्रद्वेषादिको कर्मरूप आत्माने वनावे छे. ए रीते अन्योन्याश्रयी अनादि संबंध आत्मा तथा कर्मोनो प्रवर्त्ते छे. फरी ए अभिमानिक मान्यताने खोटा रूपमां ज्यारे आत्मा देखे छे वरावर श्रद्धे छे. कर्म अने पोतानुं रूप भिजपणे माने छे त्यारे ते कर्मोनै खसेड्वा अने पोतानुं परमार्थ रूप पापत्रा प्रयत्न करे छे, परिणामे सर्व कर्मने अलग करी स्वस्वरूपी मुक्त-सिद्ध थाय छे.

अतएव अर्हा उपरोक्त कर्म आवश्यानुं तथा छूटवानुं कारण अंशकार महर्षि एक ज वाक्यमां वहु सुंदर रीते दर्शवि छे—
 “ हिंसाहिंसादि तद्देतुः ” हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन,

परिग्रह ए पांच मुख्यतया कर्मवंधना कारणो कहा छे तथा अहिंसा, जूटनिष्टुति, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग ए पांच मुख्यतः कर्मनाशना कारणो कहा छे.

मूलमां जे आदि शब्द आप्यो छे ते प्रत्येकनी साथे जोड़-
वानो होवायी “हिंसादि-अहिंसादि” ए रीते वाक्यप्रयोग
कर्वो एटले-मिथ्यात्व, अविरेति, प्रमाद, कर्पाय, योगे आदि
शब्दप्राप्त ए पांच कारणो कर्मवंधना जाणवा. तत्त्वार्थमां
उपास्त्रातिवाचक पण एज जणावे छे—मिथ्यात्वाविरति-
प्रमादकषाययोगा वंघहेतवः ” (त० अ० ८-स० १)
‘अहिंसादि’ अत्रस्थ आदि शब्दयी उपर कहेल हिंसादि-
यी विपरीत एवा अहिंसा विगेरे पांच साधनो कर्मवियोगना
कारणो जाणवा. मथितार्थ एटलो ज के मिथ्यात्वादि कारणोयी
आत्मा कर्मवंध करे छे, अने तेना त्यागयी अर्थात् सम्भूत्यत्व
आदि कारणयी आत्मा कर्मविमुक्त वने छे, कारण के-मिथ्या-
त्व विगेरे भावो आत्माने असन् मति पेदा करी, दुष्ट मार्गमाँ
दोरी जइ कर्मवंध करावे छे, ने सम्भूत्व आदि भावो आत्माने
सन्पति-सत् शद्धा उपजावी मोक्षपंथमां मेरी कर्मविमुक्त करे
छे, ए भाव ग्रंथकारना वाक्यमां रखो छे. एवं प्रकारे आत्मा
आदि पदार्थनुं स्वरूपदर्शन जे शास्त्रमां कहुँ होय, पछ्हो ते शास्त्र
गमे ते पुरुषकथित होय, तत्शास्त्रोक्त वाक्यो जहर ग्रहण योग्य
जाणवा. आवुं प्रवचन प्रथम प्रकारनी कसोटीयी शुद्ध जाणवुं-
निदान के-ए रीते प्रमाण अने युक्तियी अखंड्य जाणवुं.

अन्तमां आटलुं जाणावुं जखरी छे के—‘आगमतत्त्व’ नी परीक्षानो प्रकार ग्रंथकर्ता दर्शवी रहा छे, तेमां जे आगम-वाक्य प्रमाण तोंथा शास्त्रीय वचनथी असंबंध होय, १ उत्सर्ग अने अपवादना विषयवालुं होय. २ औदंपर्य-परमार्थवडे संशुद्ध होय ३, ते ज वचन हितार्थ ने स्वात्महित अर्थे उपादेय गणाय. आ वात आपणे उपर जोइ गया, तेमां प्रमाण तथा शास्त्रीय वचनथी जे आगमवाक्य असंबंध होय, ए रीतनो आगमतत्त्वनी परीक्षानो प्रथम प्रकार ग्रंथकारे दर्शव्यो. निदान के—उपर कहा प्रमाणे आत्मा आदि पदार्थनी अस्तिता जे शास्त्रमां कथन करी होय ते शास्त्रोक्त वाक्यो आदेय जाणावा. हवे रहो उत्सर्ग तथा अपवादे करी संशुद्ध ए वीजो प्रकार, एट्ले जे शास्त्रना वचनो उत्सर्ग वाक्यरूप तथा अपवादवाक्यरूप उभयथा शुद्ध होय, अहीं उत्सर्ग तथा अपवादनुं स्वरूप दशमां श्लोकना विवरणां यत्किंचित् देखाउयुं छे, एट्ले अहीं तत्-संबंधमां विशेष जणावावानी जहर रहेती नथी, तेमन प्रथम प्रकारनी ‘परीक्षामां ते विषय आवी जतो होवायी ग्रंथकारे भिन्नपणे जणाव्यो पण नथी. अतएव वीजा विषयने मूकी औदंपर्य परमार्थवडे संशुद्ध ए त्रीजो प्रकार समजावदा ग्रंथकार एक श्लोकयी कथन करे छे—

परलोकविधौ मानं वचनं तदर्तींद्रियार्थहृग्व्यक्तं ॥
सर्वमिदमनादि स्वादैदंपर्यस्य शुद्धिरिते ॥१२॥

मूलार्थ—अर्ताद्वय अर्थ हृषा एवा सर्वज्ञ भगवंतोए स्पष्ट-परो कहेल वचन ज परलोक संबंधी विधेय कायोंमां मान्य-प्रतिष्ठित गण्युँ छे. फरी आ वचन सर्व ज्ञेत्रनी अपेक्षाए अनादिकालीन छे, ए प्रकारे ज्ञैदंपर्यं परमार्थनी शुद्धि जागावी ॥

स्पष्टीकरण—“ अर्ताद्वयार्थदग्ध्यत्तं ” जगतमां पदार्थों वे प्रकारना छे. एक तो इंद्रियहृश्य एट्ले आपणे सौ जेने देखी शकीये, अनुभवीये छीये ते अने वीजा जे इंद्रियहृश्य न होय किन्तु ज्ञानग्राह होय जेवा के—आत्मा, कर्म, परमाणु, धर्म, अधर्मास्तिकाय आदि जेने आपणे देखी शकता नथी पण तेवा अनंतज्ञानी देखे छे ते, अर्थात् वीजा नंबरना पदार्थों तेओज देखी शके के जेओने कैवल्यज्ञान—अनंतज्ञान प्राप्त थयुँ होय. शिवाय अन्यने ते पदार्थ देखवानी शक्ति न होय. निदान के—वीतराग भगवंतो ज सर्वज्ञ होय अने तेओज आ वीजा नंबरना सर्व पदार्थने वरावर जोइ शके छे. आ परथी जेने जे पदार्थनुं यथास्थित ज्ञान नथी तेओज ते पदार्थनुं यथास्थित स्वरूप क्यांथी कही शके ? ए वातवरावर समजाय तेवी छे. एट्ले कोइ अज्ञेय पदार्थनुं स्वरूप कथन करवानुं साहस करे तो ते पण अनवस्थित अने वाधित ज कथन करे, एम समजबुं जोइए. आथी तेना पर विश्वास स्थापन करवो ते आत्माने ठगावानुं कारण केम न थाय ? माटे अर्ही इरिभद्रसूरिजी आगमवाक्यनी परीक्षामां त्रीजो प्रकार दर्शाविता कहे छे के—“ परलोकविधौ मानं वचनं ” परलोक संबंधी विधेय

कार्योंमां—स्वर्ग तथा मोक्ष आदि विधेयकार्योंमां, आत्मिक शुभ विधानोपां अर्तीद्रियार्थदर्शी एवा सर्वज्ञ भगवंतोनुज वचन मान्य, प्रतिष्ठित, विश्वसनीय होय. हेतु एज के तेऽनेज तत् पदार्थ संवंधी यथास्थित अवाक्य ज्ञान होय छे, एटले तेऽनोना कथनमां लेश पण विरोध अथवा विसंवादिपण्णु होतुं नयी. विरोध के विसंवादिपण्णु तेऽनोना ज कथनमां होय के जेऽनोमां राग या द्वेष उद्गुभूत अनुद्गुभूतरूपे विद्यमान होय, अने तेथी ज तेऽनो स्वार्थना मोहमां खेचाई अगर मानादिमां आवी जइ इच्छाथी, अनिच्छाथी असत्य सत्यासत्यपण्णे भरडी मारे. ज्यां असत्य के सत्यासत्य उत्पादक राग या द्वेषतुं मूलज नयी— सर्वथा अभावन थइ गयो छे, तेऽनोना कथनमां असत्य सत्य-सत्यनो अंश क्यांथी संभवे ? न ज संभवे ए वात सामान्य बुद्धिपण स्वीकारी शकाय एवी छे. कहुं पण छे—

रागाद्वा द्वेषाद्वा मोहाद्वा
वाक्यमुच्यते शनृतस् ।
यस्य तु नैते दोषा
तस्यानृतकारणं किं स्यात् ? ॥ १ ॥

अतएव अर्ही ग्रंथकर्ता परलोक संवंधी विधेय वावतोमां. सर्वज्ञवचन ज प्रमाणिक होय एतुं जणावी प्रतिपादन करे छे के—जे शास्त्रो खास सर्वज्ञना कथन करेल होय एम प्रमाण अने अनुभव पण मान्य करे ते ज ज्ञानवचन शुद्ध जागावुं—ग्राह जागावुं. निदान के—सर्वज्ञवाक्य ते ज त्रैदंपर्य—परमार्थ शुद्ध जागावुं. ग्रंथकार आ वचननी विशेष परीक्षा माटे कहे छे के—

“ सर्वमिदमनादि स्यात् ” सर्वज्ञवचन आदि अनेऽनादि वे प्रकारे जाण्युं, अमुक अमुक सर्वज्ञनी अपेक्षाए आदि वचन, अनेऽमहाविदेह आदि द्वेत्रोनी अपेक्षाए अनादि वचन अथवा प्रवाहनी अपेक्षाए अनादि वचन जाण्युं. एटले भूतकाळमां आ सर्वज्ञवचन हतुं, वर्तमानमां छे अने भविष्यमां रहेवानुं. एवो कोइ काल नथी के जे काले आ सर्वज्ञप्रवचन न होय.

अहीं एक बात बराबर ध्यानमां राखवानी छे, अने ते ए के—सर्वज्ञपणुं कोइ पण व्यक्तिने अनादिनुं घटे नहीं किन्तु अल्पज्ञ ज कालक्रमे कर्मो नाश करी सर्वज्ञपणुं प्राप्त करे एम युक्ति अने प्रमाणाथी सिद्ध थाय छे; अन्यथा अमुक व्यक्तिने सर्वज्ञपणुं अनादिनुं ज मान्य होय तो आपणे जीवोना जीवात्मा अने सर्वज्ञात्मा एम वे भेदो अनादिना नज मानवा जोइये.

आ परथी जेम सर्वज्ञात्मा ते सर्वज्ञ होवाथी कदापि जीवात्मपणामां आवता नथी, अगर आवे तो तेथोने पण एक प्रकारनुं अरघट्टीयत्रनी माफक पर्यटन ज रहुं कहेवाय; अने तेम थवाथी सर्वज्ञ छतां तेथो असर्वज्ञनी बराबर ज कहेवाय, एवं जीवात्माए पण जीवात्मरूप स्वस्वभावनो त्याग करी सर्वज्ञपणुं कदापि प्राप्त न करबुं जोइये. करे तो अनादिनुं जीवात्मपणुं क्यांथी रहे ? नज रहे, किंतु जीवात्मा जीवस्वरूप छोडी सर्वज्ञपणुं तो अवश्य प्राप्त करे छेज. वधुमां उपरोक्त अनादिना वे भेदो पण कन्तितज मानवा जोइये. दुंकमां वस्तुगत्या स्थित अनादि भेदोनुं परिवर्तन कदापि संभवे ज नहीं, जेम अनादिथी

जह ते जह अने चैतन्य ते चैतन्य ए भेदभुं परिवर्तन थहुं नथी
तेप आनादि उपरोक्त भेदोनुं पण परिवर्तन न ज संभवे. तथा
जीवात्मा सर्वज्ञपणुं प्राप्त करवाने जे त्याग, तप, दान आदि करे
ते अने तेप करवानो उपदेश अर्पनार शास्त्रो विफल ज मानवा
जोइये. जे वस्तु मलवानी नथी तेना माटे जे परिश्रम करवो के
उपदेश आएवो ते निष्फल ज गणाय-बंध्या जेवो जाणवो.
आज्ञानावस्थामांथी अल्पज्ञपणुं अने तेनी उक्तान्ति यतां प्रखर-
ज्ञानीपणुं आपणे अनुभवीये छीये, तो तेना क्रमिक उक्तान्ति-
वादमां सर्वज्ञपणुं आत्मा प्राप्त करे ए यानसिक गृह अनुभवने
पण आपणे केम मिथ्या मानवो घटे ? निदान के-अंधकार
पछी कंइक प्रकाश अने उषा त्यारवाद क्रमशः प्रकाश वथता
धीरे धीरे अंधकार जगत्पांथी दूर थाय छे ने पश्चात् सर्वथा
सूर्यनो प्रकाश ज देखाय छे. एवं आत्मा पण अंतरना अंध-
कारने दूर करी सर्वथा ज्ञानरूप प्रकाशने प्राप्त करे ए वात अनु-
भवमां आवे तेवी छे. सर्व आत्माओने सर्वज्ञपणुं अनादिनुं आवि-
र्भूत होय ए यान्यता संबंध बगरनी मालुंम पहे छे.

तथा पृथ्वीनो जे भाग व्यवहारमां जगाय छे तेटली ज
पृथ्वी नथी किन्तु पढदा पाछल आ सिवायनी वहोकी
पृथ्वी अवश्य हो ए वात तो आजे जडवादीयो पण कबूल
करे छे. जे देशो पहेलां व्यवहारमां न्होता जगाता ते देशो
व्यवहारमां आवते साथ ज शीवायना देशोनी शोध करवानी
पाश्चात्योने लालसा वधी. क्रमे क्रमे ज्यां ज्यां ते ल्होको पहोंची

शक्या तेथी तेओनो उत्साह अधिक उद्दीप्त थयो अने हजी पण अन्य विभाग माटे तलपापड थाय छे. एट्ले वर्तमानमां आपणी ढाईये जे विभागो न जणाय ते विभागो नथी एवुं कथन करलुं ते नितान्त आग्रहज गणाय. आथी सर्वज्ञ-प्रस्तुपित जैन शास्त्रो पहेलांधी ज पृथ्वीना अनेक विभागांनु वर्णन करे छे ने ते विभागो एवा छे के ज्यां विशिष्ट वल शिवाय सामान्य जनता जइ शके नहीं. आ विभागोमां केटलाक विभागो अर्हांनी वरावर स्थितिवाला छे अने केटलाक विभागो अर्हां करतां पण अति उच्च स्थितिवाला छे, के ज्यां सर्वदा नितान्त सुख, वैभव, म्होटा वलवान् शरीरो अने अनंतज्ञानीओ वर्ती रहा छे.

अतएव सर्वज्ञवचन आ सर्व क्षेत्रनी अपेक्षाए विचार करता सर्वदा विद्यमान होवाथी एट्ले महाविदेहादि द्वेत्रोमां सर्वज्ञो हम्मेशा विहरमान रहेवाथी तदपेक्षया अनादि शाश्वत वचन अर्हां शास्त्रकर्त्ताए जणाव्युं. निदान के-उत्तम शास्त्रवाक्यनी परीक्षा करता शास्त्रवाक्यो उपर कहा प्रमाणे सर्वज्ञकथित अने आदिअनादिभाव अलंकृत छे के नहीं ? ए वात नखर तपासवी. आ परीक्षाने महर्षिओ औदंपर्य-परमार्थ शुद्ध परीक्षा निर्देशे छे. निर्झर्ष-आवुं वचन ज परलोक माटे आत्माने उपकारी थाय, शिवाय तो अन्यना वचनना आलंबनयी आत्मा संसारगतपांच गोथा खाय ॥

(५७)

बस अहीं सुधी ग्रंथकर्ता॑ए सत् धर्मना परीक्षक एवा वाल,
मध्यम, बुधवर्गनुं स्वरूप तथा परीक्षा अने परीक्षाना प्रकारो
दर्शाव्या। हवे आ लोकोने धर्मोपदेश आचार्ये केवो आपवो
जोइये जेथी आ लोकोने पण यथास्थित धर्मनो ख्याल आवे,
आ हेतुथी ग्रंथकर्ता॑ हवे उपदेश आपवानी रीति दर्शावे छे—

बालादि॒भावमेवं सम्यग्विज्ञाय

देहिनां गुरुणा ॥

सद्गर्मदेशनापि हि

कर्त्तव्या तदनुसारेण ॥ १३ ॥

मूलार्थ—ए रीते धर्मगुरुण मङ्गुष्ठोना वाल, मध्यम, बुध
विगेरे भावोनुं यथास्थित स्वरूप जाणी उत्तमधर्मनी देशना-
उपदेश तेऽगोने जेम सुहृढ रीते उपकारी थाय ते प्रमाणे ज
आपवो ॥

स्पष्टीकरण—‘एवं’ आचार्य इरिभद्रसूरि कहे छे के—ग्रथम
कहा प्रमाणे वाल, मध्यम आदि वर्गोनुं स्वरूप ध्यानमां राखी
तेऽगोने हितकारी जउपदेश धर्मोपदेशके करवो। निदान के—ओ-
तानुं दिल सप्तज्या वगर उपदेशनो प्रवाह छोडवाथी ओताने
तैनाथी छाम थाय नहीं अने वक्ताने उलटो क्लेश पेदा थाय
छे, वल्के घणीवार ओता विपरित परीणामी वनी सदाने पाटे
धर्मश्रवण करवानुं छोडी दे ह्ये। एव्वले यतर्किञ्चित् पहेलानो
भाव होय तेमां पण इनि पहाँचे छे, एवं उपदेशकने तेट्टो

समय व्यर्थ जवाथी पठन—पाठनादिमां पण व्याघात पहोंचे छे. अतएव आचारांगमां पर्षदू जनस्वभाव अने धर्मसूचि विग्रेरे श्रोता संबंधी भावो जाण्या शिवाय उपदेश करवानी खुल्ली मनाइ करी छे. निष्कर्ष—आचार्य—देश, काल, जनस्वभाव, लोकोनी अभिसूचि विग्रेरे वातो जाण्या वगर जे धर्मोपदेश करे ते शून्यरूप ज परिणामे—वधुमां अनर्थ करे; माटे अहीं ग्रंथकर्ता भार दइने जणावे छे के—“ बालादिभावमेवं सम्यग्विज्ञाय ” वरावर वाल विग्रेरेनुं प्रथम धर्मोपदेशके स्वरूप जाणावुं. ते जाण्या पछी ज धर्मोपदेश करवो. शिवायने शास्त्रोमां उंटचैद जेवा गण्या छे. आ उपदेशको पण हलदर-नो ढुकडो मलवाथी गांधी यइ बेसे तेवा तो न ज होवा जोइये. एट्ले एकाद ग्रंथ के चरित्र, अमुक लेख के भाषण, छुटक थोडाएक श्लोको मुख्ये याद करी लीघा अने पछी उपदेशकनो शङ्डो लइ लोकोने उपदेश आपवा दोडी जाय तेवा न जोइये; किन्तु आचार्य कहे छे के—“ गुरुणा ” गुरुपणाना यथास्थित गुण जेमां होय, जेमके—धर्मज्ञो धर्मकर्ता च, सदा धर्मपरायणः । सत्त्वेभ्यो धर्मशास्त्रार्थदेशको शुद्धच्यते ॥१॥ “ धर्म जाणकार, धर्मकर्ता, नित्य धर्ममां ज तत्पर, तथा भव्यात्माओने धर्मशास्त्रनो उपदेश अर्पनार गुरु कहीये. ” परमार्थ के—स्वशास्त्र अने परशास्त्रना ज्ञाता तथा नित्य धर्ममां ज दत्तचित्त एवा गीतार्थ महापुरुषो शिवाय अन्ये धर्मोपदेश आपवा बेसबुं ए केवल धर्म अने श्रोताने

उत्पयमां दोरी बवानुं ज कारण बने हे. निदान के—आजे आवा वक्ताओं शासनमां केवो गोटाळो पेदा करा रहा हे ते नजरे ज बर्ही बस्त आपरे अनुभवीये छीये. व्यसन, अमद्य अने पौद्गतिक मोहमां राचीमार्ची रहेला उपदेशकोए काँइ शासननी ओर्ड्रा स्वगर्वा नयी करी. अतप्रव—हितार्थीए आचार्यना उपरोक्त गर्मार कथन पर सास ध्यान आपवानी जल्द हुँ बबुनां ग्रंयकर्ता बणावे हे के—वालादिभाव जाण्या पर्द्धा उपदेश करवो ते पण एवा रीते के—“तदनुसारेण” ऐसे वालादिकोने हितकारी थाय. परमार्थ—चाल विनोरे घर्मो-पद्म थ्रवगा कर्ना पोतानो वालभाव समझी तेनो त्याग करी बुवभणुं ग्रात करे. टीकाकार कहे हुँ के—“ चस्य चथोपकरण संपद्यते देवाना तस्य तथा विषेया ” “ जेने दे मकारे वर्मदेवना कन्वाशी उपकार थाय तेने ते प्रकारे वर्मदेवना कर्वा ” अर्थात् जीव आदि एक पण तत्त्वने जे सम्बद्धा नर्था तेवाओं सामे सूत्रोना गहन भावो कथन करवा वैस्तु अने गहन तत्त्वोना शोखीनो पासे राजा राखीनी कवाओ करवा देसबुँ, वर्मना खरा मर्मने नहीं जाणनार पासे लांवा लांवा तत्त्वोना व्यास्यानो करवा ए सर्व अनुचितपराणुं फेदा करे छे: मादे, अने मूलमां ‘हि’ ए शब्द द्वेवाशी हितकारी थाय तेवो ज उपदेश आपवो पण अन्यथा प्रकारनो उपदेश न आपवो ए सास उपदेशके ध्यान रास्तबुँ जोइए. स्तु अन्दोमां कहीये तो अहितकर उपदेश आपवा करता-

उपदेशके मौन धारवुं, उपदेशकपणानो मोह छोडी देवो ए
चधारे उचित गणाय, बल्के लाभकारी ज थाय; अने तेम कर-
वामां पोताने हानि थती होय तो अवश्य ग्रंथकारना कथन
प्रमाणे प्रथम तेवुं उच्च ज्ञान प्राप्त करवा कम्मर कसवी अने
पछी उपदेश करवो जेथी उपदेशकनो मनोरथ सफल गणाय.

उपर दर्शित विषयनी ज वधु पुष्टि माटे ग्रंथकर्ता आगळ
चधीने अधिक खुलासो करे छे—

यद् भाषितं सुनीद्रैः पापं
खलु देशना परस्थाने ।
उन्मार्गनयनमेतद्
भवगहने दारुणविपाकं ॥ १४ ॥

मूलार्थ—परमज्ञानीयोए—अन्यने उपकारी धर्मदेशना
अन्यने आपवामां निश्चययी पापकारी कही छे, कारण के—
अन्य योग्य देशना अन्यने आपवायी उन्मार्गमां लइ जइ भव-
समुद्रमां झूबावी भयंकर कटुकफल आपनारी बने छे.

स्पष्टीकरण—१३ मा अल्लोकमां जे वात कही छे
तेनुंज अर्हीं ग्रंथकार स्पष्टीकरण करे छे. अन्य योग्य देशना
अन्यने आपवामां सर्वज्ञो पाप कहे छे, अर्थात्-वाल योग्य
देशना मध्यमने, मध्यम योग्य बुधने, बुध योग्य वाल अथवा
मध्यमने अने मध्यम योग्य बालने ए रीते धर्मदेशना करवामां

महापाप कहुं छे. व्यवहारमां पण जेटली अने जेवी लायकातः होय ते प्रमाणे ज अधिकारो अपाय छे, अन्यथा आपवामां देनारने नीचुं देखबुं पडे अने लेनार तेनो ढायरशाही उपयोग करे ए वात काँइ छानी नथी. तद्वत् अहीं पण बुध विगेरे योग्य देशना-धर्मस्वरूप वाल आदिने आपवाथी तथा वाल आदि योग्य धर्मस्वरूप बुध विगेरेनी पासे कथन करवाथी जे लाभ कल्याणना पंथे पहोंचवानो थवो जोइये ते न थता उलटो धर्मश्रद्धा खसेद्वानुं बने छे. एट्ले नितान्त ते लोको पतित-परिणामी यह धर्म पर अने उपदेशक आचार्यैना प्रति अबहु-मानी थइ बोलवा मांडे छे—“ शुं व्याख्यानमां जह्ने करीये ? त्यां तो झीणुं झीणुं कंताय छे, काँइ समजातुं नथी, समय नकामो जाय छे, केवल राजा राणीनी वातो वंचाय छे.” विगेरे विगेरे. अतएव मूलकत्ता कहे छे के—आवी धर्मदेशना महापापकारी थाय. “ खलु ” निश्चयथी पाप पेदा करे छे, एट्लुं ज नहीं, किन्तु “ उन्मार्गनयनं ” आवी धर्मदेशना ओताने उन्मार्ग तरफ खोची जाय छे. दाखला तरीके जेम बुधजनो वेशने अप्रधान माने छे तेमां मुख्यतया धर्म मानता नथी, ज्यारे वालजीवो तेमां धर्म माने छे. प्रधानतया ते धर्म छे एम समझी वेशने नमस्कार करे छे, पूजे छे, बहुमानथी माने छे, हवे वालजीवो साथे वेशमां धर्म नथी, ते तो अप्रधान छे, कारण के पासत्याओ अने भांडो पण पोताना स्वार्थ माटे साधुवेश धारण करे छे; पण एतावन्मात्रथी

तेओ कांइ धर्मी कहेवाय नहीं किन्तु अधर्मने ज वधरे सेवे छे. आ रीते कथन करवाथी बालजीवो जे वेशना अनुरागथी यत्रकिंचित् धर्म साधता होय, क्रमशः अधिक धर्म पापता होय तेनो त्याग करी तेओ पण वेशने अबहुमानथी जोवा शीखे, निंदता शीखे छे, अने तेम थवाथी विचारा बालजीवो धर्मभ्रष्ट बनी अपरिणामी अथवा विपरिणामी बने ए स्वाभाविक छे. आ पाप केवल योग्यने योग्य धर्मदेशना न देवाथी थाय छे, यावत् ग्रंथकार कहे छे के-छेवटे “भवगहने दारण-विपाकं” उपरोक्त प्रतिकूल धर्मदेशना ते ते लोकोने संसार-समुद्रमां झुवाडी भयंकर कहुक फल अर्पनार बने छे. परमार्थ के-ओता अने वक्ता बबो आ रीतनी धर्मदेशनाथी भवसमुद्रमां अथवाय छे. अरे ! वक्ता तो अधिकतया कहुक फल पण उपार्जन करे छे, कारण के-खरो विचार तो प्रथम वक्ता-नेज करवो जोइये. ज्ञान विना धर्मदेशना आपवानो साहस करवो तथा प्रशुज्ञाननो अनादर करवो ए वक्ता माटे महापाप-कारी केम न कहेवाय ? खरेखर व्यवहारमां पण कायदानो जाणकार यइ कायदानो अनादर करी गुन्हो करनार चक्रील वेरिष्टरने ओछी सजा भोगववी नयी पढती ॥

उपरना कथनथी अहीं आश्र्य साथे वधु शंका पेदा थाय छे के-आचार्यों जे धर्मोपदेश आये छे ते यदि सर्वज्ञकथितज होय तो ते गमे तेना सामे कथन करवामां आवे एथी ते अनर्थ उत्तम केम करी शके ? कारण उपदेश सर्वज्ञदर्शीत

(६३)

आपाथी अमृततुल्यज गणाय छे, अर्थात्-अमृत गमे ते
पुरुष आरोगे पट्टे आरोगनारने तो अंते लाभज थाय छे.
हा, जो उपदेश सर्वज्ञकथित न होय अने ते उपदेश आचार्यों
आपे तो उपर कहेल सर्व वातो वंशवेसती थाय खरी० अतः
आ शंकाने निर्मूल करवा माटे हवे आचार्याशी अहीं स्पष्ट
खुलासो करे छे—

हितमपि वायोरौषधमहितं
तत् श्लेष्मणो यथात्यंतं ॥
सद्बुर्मदेशनौषधमेवं ।
बालाच्यपेक्षामिति ॥ १५ ॥

मूलार्थ—वातरोगीने जे औषध हितकारी-उपकारी
याय-होय तो पण तेज औषध कफरोगीने आपाथी अत्यंत
अहितकारी-तुकशान करनार थाय छे. एवं उत्तम घर्मदेशना-
स्य औषध हितकर छतां अनधिकारी बाल आदि वर्गने
आपाथी अहितकर ज थाय छे.

स्पष्टीकरण—ओषध मात्र उपकारी ज होय छे, छतां
अधिकारि प्रभाणे पट्टे रोगनुं निदान कर्या पछी रोगीने
ओषध आपत्तामां आवे तोज ते ओषध रोगीने उपकारी थाय
छे. अन्यथा हितकर पण ओषध अहितकारी थाय, ए आपणे
सारी रीते जाणीये छीये. दालता तरीके-जे ओषध वात-

रोगीने हितकर होय तेज औषध काँइ कफरोगीने हितकर होय एम नहीं, अने कफरोगीने जे हितकर होय ते पीत्तरोगीने हितकर नज होय, धी तथा दुध पुष्टिकारक छतां कफरोगीने ते आपवामां आवे तो तुरतज तेने अत्यंत अहित पेदा करनार थाय छे, ने साफर पित्तरोगीने हानि करनार बने छे. अहीं आ औषध खोडुँ छे अथवा वैद्यञ्चथो खोटा छे एम तो नज कहेवाय, किन्तु वैद्य रोगानुं निदान कर्या विना अनधिकारिने आप्युं एटले वैद्य अने रोगी बचेने ते औषध तुकशान करे छे, एज वात आपणे सामान्य अनुभवयी स्वीकारी शकीये. एवं सर्वज्ञकथित शास्त्रो अने तदुक्त उपदेश बचे सत्य अविसंवादी महदुपकारि. छतां बाल आदि जीवोनी योग्यतानुं निदान कर्या विना तेजोने आपवानुं साहस उपदेशक आचार्य करे तो तेमां शास्त्र अने उपदेशनो दोष छे, एवुं बुद्धिमानो तो न ज कही शके. परमार्थ के—एवुं कथन नितान्त असत्य ज गणाय. खरी वात तो ए छे के—उपदेशकनी गफलती या अज्ञानता ज कहेवी जोइये तेमज सर्वज्ञशास्त्रमां ए तो अवश्य प्रतिपादिन कर्युँ छे के—“आ सर्व उपदेश अधिकारीनी योग्यता प्रमाणे आपवो” आम छतां तेनी वेदरकार करी अनधिकारीने तत् तत् प्रकारनो उपदेश आपवा साहस करवो ए शुं उचित गणाय खरो ? आवा उपदेशने आ सर्वज्ञनो उपदेश छे एवुं कयो बुद्धिमान् कही शके ? अर्थात् ए तो उपदेशकना मस्तकनो फांटोज कहेवाय, एटले

(६५)

सर्वज्ञना उपदेश साथे उपदेशके पोतानुं विष मेळव्युं अने तेणे
अनर्थ कर्यो ए ज परमार्थ तत्त्व गणी शकाय. निष्कर्ष के—आ
परयी सर्वज्ञनो उपदेश अनर्थ केम पेदा करे ? आ शंकानुं
बहु सुंदर रीते निर्मूलन थइ जाय छे. अमृत पण अमृतरूपे
होय तो ज अधिकारीने उपकारी थाय छे, ए वात वरावर
समजाय तेबी छे.

ए रीते अहीं सुधी आ प्रस्तुत प्रकरणमां वाल, मध्यम,
उच्चना प्रकारो, तेना लक्षणो, तथा तेओनुं स्वरूप, सर्वमनी
परीक्षाना प्रकारो, सर्वमनी परीक्षा केम करवी, तेओने उपदेश
आणवानो विधि, तेना पर रोगी तथा औषधनुं दृष्टांत विग्रेरे
वातो जणावी, इवे ग्रंथकार प्रस्तुत अधिकारनो उपसंहार करी
षोडशक नामक ग्रंथना प्रथम प्रकरणानी समाप्ति सूचवे छे.

एतद्विज्ञायैवं यथाहं (थोचितं)।

शुद्धभावसंपन्नः ॥
विधिवदिह यः प्रयुक्ते ।

करोत्यसौ नियमतो बोधिं ॥ १६ ॥

मूलार्थ—ए रीते वक्ता वाल आदिनुं यथास्थित स्वरूप
जाणी जो शुद्धभावपूर्वक अने योग्यतानी परीक्षारूप विधि
साथे श्रोताने 'उपदेश आपे तो ते वक्ता नितान्तेन सम्यक्त्व भाव
पेदा करे छे.

स्पष्टीकरण—अत्र आचार्यश्री योग्यने योग्य उपदेश
 आपवायी वक्ता—श्रोता उभयने शुं छाम थाय ए वातनो खुलासो
 करे छे, जेम समय अने प्रकृतिज्ञ उत्तम वैद्य रोगीना रोगनुं
 वरावर निदान करी औषध आपी उभयने महान् छाम करे
 छे, एवं अहीं पण उपदेशक धर्मगुरु आगल कहा प्रमाणे वाल
 आदि वर्गनुं यथास्थित स्वरूप ध्यानमां राखी तेओनी प्रकृति
 अनुकूल अने ते पण केवल परोपकार बुद्धिए, के जेमां स्वार्थ-
 भावनो अंश न होय ते रीते यदि धर्मोपदेश करे तो अत्र
 ग्रंथकार कहे छे के “विधिवदिह” एटले विधिपूर्वक वाल-
 योग्य वालने, मध्यम योग्य पध्यमने अने बुध योग्य बुधने ए
 रीते उपदेश आये तो वक्ता नितान्तेन श्रोताने धर्मपर
 श्रद्धा उपजावे छे, परमार्थ के—वाल विग्रेरे जीवो तथापकार-
 नो योग्य उपदेश अवण करी स्वनिष्ठ वालपणुं छोडी मध्यम
 तथा बुधपणुं प्राप्त करे छे, जेथी तेओ पोतानुं कल्याण सारी
 हीते साधी शके छे, आथी आ जीवो आवा प्रकारना उपदेशना
 वल्थी सन्मार्गगामी उत्तमधर्मी बनी परिणामे सम्यक्त्व पावे
 छे, अर्थात् शुक्लपात्रिकपणानी दुर्लभ स्थिति प्राप्त करे छे.
 एवं वक्ता पण अनेक जीवोने धर्म प्रमाणी पोतानुं अशूत्यर्व
 कल्याण करे छे, आचार्यश्री कहे छे के—‘नियमतो’
 आवा उपदेशयी निश्चयेन वक्ताओ श्रोताने वोधिलाभ पमादे
 छे, दुङ्कपां आथी श्रोताओ उत्तरोत्तर पोतानुं कल्याण साधता
 शीखे छे. ॥

“ उद्देश ”

गत अधिकारना अंतभागमां आचार्यश्रीए जणाव्युं के—
वाल आदि योग्य कर्ने तेओनी योग्यता अनुरूप उपदेशक उप-
देश आपेतो ज नियमेन वोधि पयाडे ह्ये. आ परथी क्या श्रोताने
क्या प्रकारनो उपदेश आपवाथी लाभ थाय ? ए वात हवे समज-
वानी नितान्त आवश्यकता कही. अतएव ग्रंथकर्ता आ वीजा
प्रकरणमां क्या क्या जीवोने क्या क्या प्रकारनो उपदेश
आपबो तेनुं स्वरूप दर्शावावा प्रयत्न करे ह्ये, अर्थात् वीजा
अधिकारनो प्रारंभ अने तेनो संबंध आदिमां आ रीते
ग्रंथकारे दर्शाव्यो ह्ये.—

वालादिनामेषां यथोचितं,
तद्विदो विधिर्गीतः ।
सद्गर्भदेशनायामयमिह,
सिद्धान्ततत्त्वज्ञैः ॥ २-१ ॥

मूलार्थ—वाल, मध्यम आदिनुं स्वरूप जाणनार उप-
देशक आचार्योए पूर्वे जणावेल वाल आदिने यथोचित रीते
उपदेश केवो आपबो ते संबंधमां सद्गर्भनी देशनाविधिनुं स्वरूप
आ प्रस्तुत प्रकरणमां कहेवाजो अर्थात् जे रीते सिद्धान्ततत्त्वज्ञ
.पुरुषोए विधि जणाव्यो ह्ये, ते प्रमाणे आचार्यश्री कहेशे.

(६८)

“ प्रस्ताव अने निर्देश ”

स्पष्टीकरण—आ कारिकानो भावार्थ जो के स्पष्ट न होतो पण कांइक विशिष्ट खुलासो करवानी आवश्यकता हो खरी. प्रकरणनो प्रारंभ करवा पूर्वे अन्यकर्ता आचायश्री निर्देश करे हो के—आ प्रकरणमां सिद्धान्ततत्त्ववेत्र महापुरुषोए जे प्रमाणे उत्तम धर्मनी देशना आपवानो विधि अने तेना प्रकारो वाल आदि जीवो माटे कहां हो के तदनुसार अमे पण कथन करीशुं; कारण के पूर्व प्रकरणमां कही गया हता के “ वाल आदिने योग्य हितोपदेश आपवाथी आचार्य तेओने घोषि पमाडे हो. ” एटले वाल आदि वर्गनुं स्वरूप जाणकार पण उपदेशविधि जो न जाणे तो ते तथाप्रकारनो विधि क्यांथी दशावी शके ?

“ संबंध ”

निदान के—उपदेशके आ विधि अवश्य समजबो जोहए. अतएव पहेलुं प्रकरण वाल आदि वर्गनुं स्वरूप दशाविनारुं जणाव्युं एटले आ वीजुं प्रकरण देशनाविधि स्वरूप दशाविनारुं जणावीशुं. आ रीते वीजा प्रकरणनो संवंध पहेला प्रकरण साथे वरावर घटावी लेवो, कारण के—अंथनो विषय योग्य रीते उत्तरोत्तर सुसंबद्ध होवाथी ज समृच्चित आह अने पाठ्य थाय, जेथी पाठको पण उपदेशविधि समजी यथोचित रीते उपदेश करवा साथे घोषि पमाडी शके. अहीं आव्लं

विशेष जाणवुं के अर्हीं जे विधि कहेवामां आवशे ते 'तद्विदो' बाल आदि वर्गनुं स्वरूप जाणकार पवा उपदेशक पुरुषोने ज स्वास करीने उपकारी थशे. शिवाय अन्य लोकोए तो आ विषय समझी ध्यानमां राखवानो छे. आटलो खुलासो करी हवे आचार्यश्री जाणावे छे के—

“ पराधीनता अने तेना हेतुओ.”

आ विधि हुं स्वतंत्र कल्पनाथी नथी कहेवानो, किन्तु “सिद्धान्ततत्त्वज्ञः” सिद्धान्त-आगमवास्त्रोना जाणकार, पारंगत एवा श्रुतकेवली भद्रवाहुस्वामी जेवा महापुरुषोए जे रीते पूर्व शास्त्रोमां ज्ञानाव्यो छे, ते ज विधि “यथोचितं” वरावर बाल आदि वर्गने उपकारी थाय तथाप्रकारे अर्हीं हुं कथन करीथ. मतलब के—आ विषयमां ग्रंथकर्त्ता पोतानी पराधीनता तथा शिष्टाङ्गा परिपालनता दर्शावे छे. शिष्टल्व प्राप्त्यर्थे अने ग्रंथने आदेय बनाववा माटे आ एक उत्तमोचम मार्ग छे के जे आ-चायों पूर्वपुरुषना पंथे चाली वस्तु कथन करी पोतानी परा-धीनता दर्शावे छे. तथा जे लोको उपदेश अने वस्तुनो निर्देश शास्त्रोमां पोतानी स्वतंत्र मतिकल्पनाओ मुख्य करी कथन करे तो ग्रंथकर्त्ता छब्बस्य होवार्थी अवश्यमेव सखलित थाय अने दोषपिण्डीत ज व्याख्याओ करे, कारण के ज्यां छब्बस्यो अस्त्र होइ मर्यादित ज्ञान धरावे छे त्यां तेओ निर्दोष अने अविरोधी कथन क्यांशी करी शके ? परमार्थ के—सदोच तथा विसंवादी ज वस्तुनुं प्रख्यात करे छे. आ वाजु प्राकृत लोको

तो श्रद्धालु, विश्वासु अने अतिअल्पज्ञ होवाथी ग्रंथकर्त्ताना वाक्योपर ज निर्भर रहे छे. निदान के—एकान्त आदेयरूपे माने छे. आथी ग्रंथाङ्गा प्रमाणे वर्तन करी परिणामे ते लोको कल्याणना बदले विश्वासथी स्वात्माङ्गुं अकल्याण ज करे. एटले आबुं महत् पाप ते स्वतंत्र आचार्यनी बुद्धिथी ज पेदा थयुं, एम विनासंकोचे मानबुं जोइए. अतएव सज्जन अने शिष्टनो ए वास्तविक धर्म छे के पूर्वपुरुषना पंथे चाली तेवी वस्तु-तत्त्वनी प्रख्यपणा करवायां पराधीनता ज दर्शाववी—राखवी. निष्कर्ष के—अल्पज्ञ सर्वज्ञोना अने महद् ज्ञानीओना वचनाधारे पदार्थनी व्याख्याओ करवी ए न्याय्य गणाय.

अर्ही मूलपां “अथं” शब्द एटला माटे ज ग्रंथकर्त्ताए धर्मो छे के—आ आगलनी आर्याओथी साक्षात् दृश्यमान एवी सद्-धर्मनो देशनाविधि हुं जणावीश. जे विषय अनंतरपणे सभी-पमां ज—साक्षात् देखाउवानो होथ छे त्यां ज अयं शब्दनो प्रयोग थाय छे. हवे उपर देखाउला संबंधना अनुसारे बाल, मध्यम अने बुध पैकी धर्मदेशनामां प्रथम बाल योग्य धर्मदेश-नानो प्रकार अने उपदेशके पण तथाप्रकारे ज वर्तबुं जोइये, ए वात आचार्यथी जणावे छे—

बाह्यचरणप्रधाना,
कर्त्तव्या देशनेह बालस्य ॥
स्वयमपि च तदाचार-
स्तदग्रतो नियमतः सेव्यः ॥ २-२ ॥

मूलार्थ—उपदेशके अहीं उपदेशविधिमां ग्रथम तो बालवर्ग पासे वाह चारित्रनी प्राधान्यता एट्ले मुनिवेशनी मुख्य प्रशंसा जेमां होय एवी देशना आपवी, तथा उपदेशके पण नियमेन तेझोनी सामे तेवो ज्ञ आचार पालवो जोइये.

“अयोग्य उपदेशालुं परिणाम.”

**स्पष्टीकरण—“ वाह्य एवो मुनि आदिनो वेश,
वाह्य एवी अन्य क्रियाओ तेमज वाह्य आचार-व-
र्तन देखीने जेझो खुशी थाय, धर्म पामे ते बालवर्ग”**
आ वात गत प्रकरणमां आचार्यश्री कही गया छे. परमार्थ के—
बालजीवो वाहाढंबरमां वधारे श्रद्धालु होय छे, कारण के—
तेझोने विशिष्ट विवेक तथा दीर्घ विचार न होवाथी तेम वनबुं
उचित छे. निदान के—बालवर्गनी आवी स्थिति होवायी यदि
उपदेशक धर्मोपदेश आपता आ लोको सामे “ वाह्य वेशनी
असारता, अन्य वाह्य क्रियाओनी गौणता, एवं वाह्य वर्तननी
आढंबरता, तेमां धर्म नथी, पासत्याओ, वेशविडंबको अने
भाँडो पण आजीविका माटे, अन्य स्वार्थ माटे तेवो वेश,
तेवी क्रियाओ तथा तेबुं आवेहुब वर्तन करे छे छातां
आ लोकोमां धर्मनो लबलेश देखातो नथी; माटे धर्म तो
तत्त्वपार्गमां अने आत्मानी शुद्ध परिणामिमां ज्ञ होय छे, शिवाय
वेश के क्रियाओ तो एकडा बुगरना शून्य जेवी ज-समझवी...”
आ रीतनो उपदेश अपाय तो नितान्तेन तेबुं ज एकान्त पोषण

(७२)

थाय तो ते बाललोको तुरतज धर्म प्रति मंद आदरवाला थह
धर्मशून्य—अश्रद्धालु बनी जाय छे. अरे ! विमुख परिणामवाला
थाय तो पण आर्थ्य नहीं.

“ उपदेश प्रकार ”

अतएव ग्रंथकर्ता स्पष्ट कहे छे के—“ इह ” उपदेश
विषयमां उपदेशके ते बालजीबो विपरिणामी न बने, अश्रद्धालु
न थाय माटे तेओनी प्रकृति अनुकूल क्रमशः गुणवृद्धि थाय,
तेओ सन्यार्गारूढ बने, तेओनी धर्मप्रीति वधे तेम बाह्यवेद,
वाह्यकिया अने बाह्यवर्तननी प्राधान्यता जेमां होय तेबो धर्मोप-
देश उपदेशके आपबो; तथा वक्ताए पण वर्तन अने क्रियाओ
तथाप्रकारे ज ते लोको सामे प्रेमपूर्वक आचरवी, जेथी ते
लोको आधिक्येन धर्मश्रद्धालु बनी उपदेशक पर अनुरागी
पण थाय. अन्यथा आ लोको उपदेश अन्यथा प्रकारनो तथा
आचरण भिन्न प्रकारमुँ निहाली शीघ्र ही शंकाशील बनी
अविश्वासु थाय छे. ते ज उपदेश अने उपदेशक प्रति मंद
आदर के अनादरवाला बनी परिणामे धर्ममां पण किचित्
अदृढ परिणामी थह जाय. निदान के—‘परोपदेशो पांडित्यं’
ए वाक्यनो लोको तुरतज उच्चार करे,—‘ पोथीना रिंगणा ’
जेबुँ कहे. अतएव अर्ही ग्रंथकर्ता भार मूकीने कहे छे के—
“ नियमतः सेच्यः ” नियमेन वक्ताए पण जेबो उपदेश
आपबो तथाप्रकारे ज वर्तन सेवबुँ. एटले उपदेश अने वर्तनमां
द्विषाभाव न करवो जोइए, अर्थात् उपदेशके “ चित्ते वाचि

क्रियायां च, साधुनामेकरूपता ” ए ज नियमजुं समृ-
चित रीते पालन करवुं न्याय गणाय.

“ अंथकर्त्तानो आशय ”

अत्र ‘ उपदेशके वालजीवोने वाहवेश तथा वाहा-
चारनी प्राधान्यतावाली धर्मदेशना आपवी ’ आवुं जे आचार्य-
श्रीए जणाव्युं तेजुं कारण आ वाललोको आवा उपदेशथी
अनुक्रमे धर्म पाये ए ज समजबुं, परंतु आवा उपदेशथी
ते लोकोने अंधारामां अथवा वालस्थितिमां राखवा एवो आशय
आचार्यश्रीनो छे एम न समजबुं. किन्तु वालकने मिठाइनी
लालच आपी जेम कडवा औषधजुं पान करावाय छे, ए न्याये
अहीं पण आ लोकोने जे वस्तुमां अधिक प्रेम तथा अद्वा छे
ते वस्तुना शुणो दर्शावी तेमां तेओने बरावर सुहृद करी,
तेओनी विचारशक्ति अने विवेकशक्तिने खिलववी तेमज
अनुक्रमे द्रव्यक्रिया अने भावक्रियानुं स्वरूप, आत्मानी विचित्र
परिणामीयो, अध्यात्मतत्त्वजुं दिग्दर्शन, आगमतत्त्व, व्यवहार
अने निश्चयनयनी मान्यता विगेरे जगावी वाहवेश, वाह-
क्रियाओनी मुख्य गौणता, क्रियानो खाली पण वाह आड-
वर क्यां अने केवा केवा प्रकारनो होय छे ? पासत्याओ पण
केवुं वर्तन तथा क्रियानुं परिणीलन करे छे ? विगेरे दर्शावी,
केवल वाहवेश आदिमां वालजीवोनो स्थापित एकान्त अनु-
राग चठावी तत्त्वमार्गमां भावप्राधान्य द्रव्यक्रियाओमां स्थापन

(७४)

कराववो. बालजीवो पध्यमपर्णुं पामी अतुक्रमे बुधपर्णुं प्राप्त करे,
आत्मानी परमविशुद्धि करता शीखे तथामकारे उपदेशके
प्रयत्न करवो जोइए. तो ज उपदेशकनो उपदेश प्रभुआज्ञाकारी
बनी स्वपरने यथारूपे उपकारी थाय, ए ज आचार्यश्रीनो अहीं
गर्भित परमार्थ छे. अतएव अहीं उपदेशानुकूल वर्तन राखवालुं
पश उपदेशक माटे आचार्यश्रीए भारपूर्वक जणाव्युं छे.

आ प्रकारे उपदेशकने भलामण करी हवे बालवर्ग
लायक देशनानुं स्वरूप ग्रंथकर्ता पांच आर्या श्लोकथी विस्तृत-
पणे अहीं दर्शावे छे—

सम्यग्लोचविधानं
द्यनुपानत्कत्वमथ धरा शृण्या ।
प्रहरद्वयं रजन्याः,
स्वापः शीतोष्णसहनं च ॥ २-३ ॥

मूलार्थ—सम्यक्-सर्वज्ञ आज्ञानुसारे छ छ मासे मुनि-
योए लोच करवो, उपानह (जोडा) पहेरवा नहीं अने पृथ्वी
पर शयन-संथारो करवो, तथा रात्रिना वे प्रहर सुधी एट्ले
बीजा अने त्रीजा प्रहोरमां निद्रा लेवी एवं शीयाळे, उन्हाळे
शीत तथा उष्ण आदि परीषहो सहन करवा जोइए.

“ धर्मप्राप्तिनुं कारण ”

स्पष्टीकरण—बालजीवो सुंदर एवो मुनियोनो बाह्यवेश

तथा बाहा कठिन आचारो निहाली खुशी थवा साथे धर्म पाने हें, तेनुं मुख्य कारण आ हें। प्रथम तो आ लोको खानपान, गाडी, वाडी अने लाडीनी मोजमजाहमां, कपडा अलंकारोमां, शरीरनी शुश्रूषामां ज आनंद माने हें, जेमां अतिकष्ट के अन्य कष्ट होय तेवी क्रियाथी, आचारोथी धुजी उठे हें, पोताना आत्माने लेश पण कष्ट थाय तेनाथी आस पाने हें, अशक्य अनुष्ठानो माने हें, आर्थी जे लोको कष्टसाध्य दुर्वह क्रिया के आचारो पालता होय तेना दर्शनमात्रथी आ लोको 'अहो ! महान् भयंकर अशक्य दुर्वाश आ लोको धर्मसेवन करी रहा हें।' एम उच्चारी नभी पढे हें, गळगळा यइ जाय हें, वहु वहु प्रशंसा करे हें, मुनियोना बाहाचारो ग्रति आ लोको मान-बुद्धि धारे हें। अतएव उपदेशके पण आ लोकोने धर्म पमादवा आ लोकोनी बुद्धि अनुकूल उपदेश आपवो छाभकारी गणाय। ते उपदेश आ रीते आपवो।

“ बाल उपदेश ”

जैन मुनियोनो एवो आचार हें के—शिरमां कोइ विशेष दर्द-पीडा न होय तो छ छ मासे अवश्य साधुए हाथवडे पोताना केश उखेडी नांखवा-लोच करवो, यदि विशिष्ट पीडा यती होय तो एक एक महिने अस्त्राथी मुंदन करावूँ अने अधिक दर्द थतुं होय तो उपरजपरथी पञ्चर पञ्चर दिवसे कैशो कतराववा। गमे तेवी कठण शीत या गरमी पडती होय, पत्थर, कांकरा के कंटकवाली जमीन होय, लांबी

अथवा दीर्घ मुसाफरी करवानुं होय तो पण साधुए पगमां चामडाना अथवा तेवा अन्य प्रकारना जोडा पहेरवा नहीं। उच्ची के नीची, सम के विषम, कांकरावाली के साफ गमे तेवी जमीनमां पलंग, खाटलो के गाढ़ी—तकिया विना साधुए शयन करखुं, मात्र पोतानो उननो के तेवो एकाद वे कपडानो संथारो करी तेना पर शयन करखुं जोइए। साधुए रात्रिना चार प्रहर पैकी पहेला अने छेल्ला प्रहरमां स्वाध्याय, ध्यान अने ईश्वरभक्ति करवी तथा बीजा अने त्रीजा प्रहरमां एट्ले वधारेमां वधारे छ घटानी निद्रा लेवी उचित छे, जो के साधुए प्रमाद करवो न जोइए तथापि शिथील एबुं जरीर विना निद्राए अवश्य अस्वस्थ यइ जाय, अधिक आलस आवे ने अनुक्रमे धर्मसाधन छुटी जाय छे, एवं दर्शनावरणीयकर्मना उद्यथी निद्रा पण जरुर आवे छे, माटे अहीं वे प्रहरनी निद्रा जाणवी; परंतु रात्रिना आठ अने दश घटानी निद्रा, दिवसना वे वे कलाकोनी निद्रानो प्रमाद सेववो ए तो कदापि उचित न गणाय। फरी साधुए शीत, उषण अने वर्षा ए त्रणे क़तुमां पोतानी शक्ति माफक सम्यग् रीते अनुकूल-प्रतिकूल शीत तथा उषण आदि परीषहो सहन करवा जोइये, मस्तक पर छत्र धारखुं न जोइए, कोइ पण बाह्न आदिमां बेसबुं न घटे, अत्र जे परीषहो सहन कर-वानुं मुनियो माटे कहुं छे ते त्यां सुधी ज के पोतानी शुभ परिणतीओ चढ़ती रहे, शरीरनी शक्तिओ बनी रहे, आर्तिध्यान संबंधी बिलष परिणामो उपजे नहीं, वधुमां कोइ पण रीते

प्रथम जे चारित्र परिणामो हता तेमां क्षति न पहाँचे किन्तु बृद्धि ज याय तथाप्रकारे सहन करवुं, आचरण सेववुं. जे आचारोनुं सेवन करवा छतां आत्मा क्षणे क्षणे अधिक मलीन यतो होय, किलष्ट परिणतीयो पामतो होय, वधु कर्मवंध करतो होय तो ते कठीण आचारोनुं पालनपणुं निष्फल ज समजवुं. अरे! एक प्रकारे कर्मवंधमां हेतुभूत समजवुं, माटे ज अर्ही मूलमां ग्रंथकर्त्ताए ‘सम्यक्’ ए पद आप्युं छे अर्थात् शुभ भावोयी आचारोनुं पालन करवुं.

फरी ए ज विषयने ग्रंथकार वधु स्पष्ट करे छे—

षष्ठाष्टमादिरूपं चित्रं,
बाह्यं तपो महाकष्टं ।
अल्पोकरणसंधारणं च,
तत् शुद्धता चैव ॥ २-४ ॥

मूलार्थ—सामान्य जनो जेने दुःखथी करी शके तेवा नाना प्रकारे छटु अटुम आदि बाह्यतपनुं आचरण करवुं, एवं पोतानो निर्वाह यह जाय एटला ज अल्प वस्त्रपात्र आदि आधारकर्मी विगेरे दोषो रहित चारित्रना उपकरणो धारण करवा.

“ तपस्वरूप ”

स्पष्टीकरण—जेनाथी आत्मा जात्वल्यमान यह पोतानी

(७८)

साथे लागेला अनादिना निकाचित-अनिकाचित वज्रे प्रकारना विविध कर्मों प्रजाली प्रजाली भस्मीभूत करे अथवा जे कर्मोंने तपावी तपावी आत्मा आत्मायी अलग करे तेने शास्त्रमां तप कहुँ छे. परमार्थ के-आत्मा शुभ एवा परमविशुद्ध परिणामोपूर्वक अनेक विचित्र खानपान अने तृष्णानी काँइ पण वांछा चिना केवल कर्मशयनी इच्छायी ज पोतानी शक्ति अनुसारे निरोध करे. एवं इन्द्रियों तथा मन, वचन, कायाना पवित्र योगोने वाधा न पहोँचे, खंडित न थाय एवी परम विशुद्ध क्रियाने सुविशुद्ध तप कहो छे. आ प्रकारनो ज तप कर्मनो क्षय करी आत्माने ब्रह्मस्थानमां स्थापन करे छे; ज्यारे आ शिवायनो अमुक प्रकारनी लालसाओयी बनेलो तप मात्र आ जन्म के पर जन्ममां ते ते लालसाओहुँ ज पोपण करी कृतकृत्य थाय छे. आयी ज महर्षिओए आ वज्रे तपो कष्ट अतिकष्टकारी होवायी सामान्य जनता करी शक्ती नथी, एट्ले जे कोइ करे छे तेमां तेओ मुग्ध ज थाय छे; तथापि सकाम तप तो घण्टा लोको स्वार्थ-लोभयी करे छे ने तेमां पोते द्वेषने पण गणता नथी. जेमके-पैसा माटे, विषयों पाटे लोको खानपान छोडी दे छे, अति गरमी के शीत विगरे सहन करे छे, चार-पांच कलाको सुधी एकी पगे खडा रहे छे, रोगादि कारणे आठ, दश, पन्नर दिवसना उपवासो करे छे, एवा ज रीते आ अने जे लोको परलोकमां राज्य आदिना लोभयी विविध कष्टो सहन करे छे ते सर्वने सकाम तप कहो छे. आवो तप तो घण्टाये

(७९)

करे क्षे एट्ले ते कांड दुर्लभ नयी, परंतु निष्काम एवा तपनी अ
मासि दुर्लभ अने आश्र्यकारी शास्त्रोमां जणावी क्षे.

“ तपना भेदो ”

अत्र निष्काम एवा तपना वाह तथा आभ्यंतर ए वे भेदो
तथा उभयना क्षे वाह अने क्षे आभ्यंतर मली द्वादश (बार)
भेदो कशा क्षे. जे तप बाहेरथी शरीर आदिने सुकावी सुकावी
क्षीण करे, लोको जेने सारी रीते देखी शके ने आश्र्य पामे ते
वाह; अने जे अंदरना कषाय. तथा रागादिकले वीण करी
विषयादि वासनानो प्रलय करे तथा बहुधा सामान्य जनता
जे तपने देखी न शके ते तपने आभ्यंतर तप कशो क्षे. आ
उभय तप पैकी आभ्यंतर तप एकान्ततः कर्मक्षयकारी
होवाथी तेने प्रधान गण्यो क्षे, व्यारे वाह तपथी तो सुनि-
शुद्ध परिणामो वर्तता होय तो कर्मक्षय थाय अने न वर्तता
होय तो न थाय भाटे आ तपने तेटला अंशे गौण कशो क्षे.
तथापि एट्लुं तो चोकस जाणावुं के—वाहतप जनताने आश-
र्यमां नांखी वालजीवोने मुग्ध जरुर बनावी शके क्षे, निदानके-
चम्भे तप कल्याणकारी होवाथी सर्वांशे आदरणीय जाणवा.
कर्मक्षयना अर्थीए तो आ तपो अवश्य आचरवा नोइये.

“ चिन्चित्र दलीलो ”

अहीं आ तप विषयमां घणाओनी एवी हृद यान्यता क्षे
के—आवो तप करवाथी आत्मा जरुर दुःखी थाय, अंदरना

(८०)

जंतुओ खोराक न मळवायी मरी जाय अने भूखे मरखुं एवा
तपमां धर्म केम संभवे ?

“ समाधान ”

निदान के—आवा तपमां धर्म न ज घटे. जरूर,—यदि
अनिच्छायी तप कर्यो होय, हुं भूखे मरुं लुं एवा विकल्पो
उद्भवता होय तो तो ते तपमां धर्म न संभवे ए न्याय्य छेः;
परंतु जे तप खास जीगरना प्रेमथी कर्यो होय, कर्मक्षय अने
तेम करखुं ते मारो एकान्त सुविशुद्ध धर्म छे, देहनो ममत्व अल्प
करवानो आ मुख्य मार्ग छे आवा विचारोथी यदि ते तप
करीए तो आत्मा दुःखी क्यांथी थाय ? एमां तो आत्मा
एकान्त खुशी ज मनावे छे अने सर्वज्ञ भगवंतोनी आवा अहि-
तीय तप माटे ज आज्ञा छे. अंदरना जंतुओना बचाव माटे ज
मनुष्यो खोराक स्वीकारे छे, आ दलील तो हास्यास्पद जेवी
छे; कारण जो एमज होय तो शरीरने निरोगी बनाववा लोको
दवाओ, विरेचनादि स्वीकारी शामाटे अंदरना जंतुओनो
नाश करता हशे ? केवल शरीरमां अने वाहिर जीवडाओने
केम धधवा देता नथी ? तथा शुं क्षोको जंतुओने आराम
पहोंचाडवा ज आहार ले छे के पोताना शरीरनी पुष्टि माटे ?
यदि जो आहारथी पोतानी पुष्टिना वदले एकान्त जंतुओनी
बृद्धि यइ शरीरने हानि पहोंचती होय तो ग्रत्येक मनुष्यो शुं
आहार लेवालुं पसंद करे खरा ? विगेरे विगेरे विरोधी दलीलो
उपर वहु विचार करवो घटे छे. फरी शरीरमां जंतुओनी उत्पत्ति

आहारना अपचारी ज याप छे, एट्ले शरीरमां कांइ बंतुओए पहेलाथी घर कर्हुं नथी होतुं. इवे रही भूते मरवानी दलील. आंतु समाधान उपर करी गया छीए. ज्यां भावथी तप करवानो होय त्यां भूते मरवाणुं कोण कही शके ? ए तो जबर-जस्तीथी अगर कांइ लालसाथी आहार छोडवानो होय त्यां ज आ दलील टकी शके.

“ उपवास ”

आधी सिद्ध थयुं के—आत्मार्थीए तप अवश्य करवो जोइए. अतएव साधुए क्रमे क्रमे देहनो मोह अल्प करवा महाकष्टकारी एवा छट्ठ (वे उपवासो), अद्वम (त्रय उपवासो) आदि विविध वाङ्मय तप करवा घटे. अर्ही जैन शास्त्रनी मर्यादा प्रमाणे ग्रथम् एक वस्तुत भोजन करी वीजा दिवसे अङ्ग, जळ, स्वादिष्ट वस्तुनो अने मिठाइ आदिनो अथवा जळ सिवाय सर्वनो सर्वथा त्याग करवो अने वीजा दिवसे एक वस्तुत मात्र भोजन करर्हुं. आवा त्यागने चतुर्थभक्त उपवास एवी संज्ञा शास्त्रोपां कही छे, तो पण सूर्योदयथी वीजा सूर्योदय पर्यंत उपरोक्त भोजनादि वस्तुनो त्याग करवो तेने उपवास कहो छे. अत्र आट्लुं तो उपवास करनारे ध्यान राखवुं के पहेला दिवसे संध्या समये जल विगेरे छोडी देवा, एवं त्रीजा दिवसे सूर्योदय वाद ओछामां ओछी ४८ मीनीट पर्यंत कांइ पण मुखपां न नांखवुं अर्थात् नवकारसी करवी एट्ले आ उपवास उचित गणाय. साधुए

आवा विचित्र तपो अवश्य करवा जोइए, जेथी देहनो मोह
अल्प थवा साथे नितान्त कर्मक्षय थाय।

“ उपकरण ”

तथा साधुए पोताना निर्वाह अर्थे वस्त्र, पात्र, कांवली,
रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि उपकरणो एटला ज राखवा के
जेनाथी निर्वाह थवा साथे भारभूत यह मूल्द्धाकारी न बनाय。
ते पण अल्प कीमतना ज राखवा जेथी कोइने उठाववानी इच्छा
न थाय अने पोताने मोह न उपजे. आ उपकरणो पण निर्दोष,
न्यायथी आवेल अने साधु पाटे बनाव्या न होय, पैसाथी खरीद्या
न होय तेवा राखवा, यावत् जेमां साधुपणानी शोभा वधे तेवा
उपकरणो साधुओए राखवा उचित छे; कारण के ग्रंथकर्ताए
अर्हीं ‘ उपकरण ’ शब्द मूक्यो छे तेनोः अर्थ ‘ उपक्रि-
यते इति उपकरणं ’ जे उपकार करे ते उपकरण. परमार्थ
के-जेने धारणा करवायी आत्माने उपकार थाय, आत्मा
लघुकर्मी थाय ते ज उपकरणो; सिवाय उपधिना बदले
उपाधिभूत समजवा.

पुनः उपदेशनो विषय ग्रंथकार दर्शवि छे—

गुड्वीं पिंडविशुद्धिश्चित्रा,

द्रव्याद्यभिग्रहाश्वैव ।

विकृतीनां संत्यागस्तथैक-

सिवथादिपारणकं ॥ २-५ ॥

मूल्यार्थ— साधुए आहारादिनी विस्तारथी शुद्धि करवी ने द्रव्य, ज्वेत्र, काल, भाव आश्रित त्रिविध अभिग्रहो धारण करवा, तथा नित्य छ, विगयोमांथी अपुक विगयनो त्याग करवो. एवं तपना पारणे एक सिक्षण, वे सिक्षयथी पारणुं करवुं.

स्पष्टीकरण— जैन साधुओ हनन, पचन, क्रयण ए व्रण कोटीना त्यागी होय क्षे, अर्थात् साधुओ कोइ जीवने मारे, मरवे अने मारताने सारो समजे-नहीं, अग्नि आदिनो आहारादि माटे आरंभ करे, करावे तथा करताने सुंदर समजे नहीं एवं विक्षयथी कोइ वस्तु ले, लेवरावे नहीं-आवो कडोर आचार साधुओनो होवाथी साधुओए शरीरना निर्वाह तथा धर्मसाधनार्थे यहस्ये स्वकुदुंब अर्थे तैयार करेत भोजन अने पाणी आदिमांथी माधुकरी वृत्तिये उचित समये अख्य अख्य आहार यहण करवो. एटले जे आहारमां शात्रकथित आहार संवंधी ४२ दोषो न लागे एवो ज आहार मुनियो माटे लेवा योग्य कशो क्षे; अने ते सिवायनो आहार अकल्प कशो क्षे, अहीं आहारना १६ उद्यागम दोषो, १६ उत्यादना दोषो, १० एसणा अने ग्रासेसणा दोषो मली ४२ दोषो पिंडनिर्युक्तिमां कशा क्षे. आलुं विस्तारथी स्वरूप वालश्रोता सामे उपदेशके करवुं, तथा द्रव्याच्यमिग्रहाश्वैव द्रव्य, ज्वेत्र, काल, भाव आश्रयी ४ प्रकारना अभिग्रहातुं स्वरूप कथन करवुं. अर्थात् उत्तम मुनियो रोज नाना प्रकारना अभिग्रहो धारण करे

जैमके—द्रव्यथी अमुक ज आहार, देत्रथी अमुक घरनो अगर अमुक जम्हाए, कालथी अमुक समये अने भावथी स्त्री अथवा पुरुष के बाल्क अमुक धयना, अमुक रंगना कपडा पहरेला होय—आ रीते अभिग्रहो धारण करी अगलानभावे, अप्रमादपणे तेनो निर्वाह करे. वली नित्य दुध १, दही २, धी ३, गुड ४, तेल ५, तलेल चीजो ६—आ ६ विग्रहमांथी अमुक विग्रहनो त्याग करे, अने उपवास, छड्ड, अठप आदि तपस्याने पारणे एक सिक्ष, वे सिक्ष आदि आहार अंगीकार करे. आ रीते मुनि—आचारनुं सुंदर स्वरूप प्रतिपादन करुं, जेथी बालश्रोता सारी रीते धर्ममार्गमां आवी शके.

पुनः आचार्यश्री जणावे छे—

अनियतविहारकल्पः

कायोत्सर्गादिकरणमनिशं च ॥

इत्यादि बाह्यमुच्चैः

कथनीयं भवति बालस्य ॥ ५—६ ॥

मूलार्थ—साधुए अनियमित रीते विहार करवो तथा हम्मेशा कायोत्सर्ग विगेरे उचित क्रियाओ जखर करवी. आ विगेरे सर्व धावाचार संवंधी उपदेश बालजीवो पासे कर्यन करवो.

“ अनियतविहार ”

स्थृतीकरण—मुख्यतया साधुए एक जग्याए अधिक काल रहेवुं न जोइए. संसारत्याग कर्या पछी, मोहना बंधनो छोड्या पछी फरी एक ज स्थानपां रहेवाथी साधुओने अनेक प्रकारना दोषो लागु थाय छे. प्रथम तो एक स्थानमां लांवा काल पर्यंत रहेवाथी लोको साथे, पदार्थों साथे अने स्थान साथे जहर मोह बंधाइ जाय छे यावत् आ मोह पाछल अनेक खटपटो अने प्रयंचो पण उभा थाय छे. एट्ले साधुपाणु स्वीकार्या छतां एक संसारी करतां पण अधिक विट्वणाथी आ महात्मा (!) ने सहबी पडे छे, एवं लोको अति संबंधमां आववाथी धर्मगुरुणानी भावनानो त्याग करी एक सामान्य संवंध धराववा लागी जाय छे. परिणामे निंदापात्र वनी लोकोने धर्मश्रद्धा प्रति स्वलित आशयवान् करे छे. अतएव साधुए एक स्थानमां अधिक समय न रहेतां भिन्न भिन्न क्षेत्रमां विचरणु जोइये. परमार्थ के—“ गामे एग राईयं णगरे पंच राईयं ” ए शास्त्राङ्ग प्रमाणे ग्राममां एक रात्रि अने शहरमां पांच रात्रि जघन्यथी रहेवुं. विशेषमां चाहुर्मास सिवाय एक महिनाथी अधिक रहेवुं न कर्ये. यदि शरीर अशक्त होय, रोगादि कारणो होय अथवा तेवा प्रतिकूल संयोगो उभा यथा होय तो पण एक महोद्धो छोडी वीजा महोद्धामां, एक उपाश्रयथी वीजा उपाश्रयमां अने छेवटे एक खूणाथी अन्य सूखामां ए प्रमाणे स्थान बदली मासकल्प कर-

वानो विधि अवश्य साच्चवदो जोड़ए, निदान के-त्यागीने एक स्थानमां रहेहुं सर्वथा हानिकर छे माटे अर्ही “अनियत-विहारकरपः” ए पद् ग्रंथकर्त्ताए साधुओ माटे उचित ज्ञ.कहुं छे..

“ काडस्सगग ”

फरी शुनिप हम्मेशा कायोत्सर्ग करवो जोड़ए, अवलम्बन दो साधुए नित्य पोतानी समयोचित उचित क्रियाकांदीयी निवृत्त थइ सूचाभ्यास करवो, कराववो, अर्थ आदिने विचारवा, विचरववा, एवं लोकस्वरूप, अनित्यादि संसारनी वार भावनाओ, मैत्री आदि समक्षितनी भावनाओ, पंचमहाव्रतनी पञ्चीस भावनाओ, देह अने आयुष्यादिनी स्थितिओ, कर्मनुं स्वरूप, आत्मा तथा कर्मनो संबंध ने प्रत्येकलुं स्वरूप विगेरे पदार्थ पर वहु वहु विचारो करवा, धर्मध्यान अने शुक्लध्यानना पायाओ ध्याववा, वाद शरीरनी मृच्छा अल्प करवा, आत्मा-जुं अडग वल प्राप्त करवा, कपायोने निर्वक करवा, एकान्त स्थानमां, शून्य खंडियेर मुकामां, शमशान अने अरण्यादिकर्मां दिवसे अने निशाये कायोत्सर्ग जल्ल करवो, एटले जे कियामां पोताना आत्माने स्थिर वथता परिणामवालो बनावी देहना संस्कारो, शुश्रूषाओ त्याग कराय, गमे तेवा उपद्रवो अर्थात् गजसुकुमाल मुनि पाफक प्राणांतकष्टो पण आधी पडे, ढांस, पत्सरादि पीडा उपजावता होय तथापि आत्मा पोतानुं शुभम्भ्यान त्यागे नही; किन्तु परमात्मानुं अथवा आत्मस्वरूपनुं ज

ध्यान घरे. पन, वचन अने कायानी एकाग्रता—अविचलता राखी, नासिकाना अग्रभाग पर हड्डिने स्थिर करी, उर्वर्देहपणे शरीरतुं एक पण रुवाहुं फफडाब्या विना अप्रमत्तमावे आत्मा स्थिर रहे तेलुं ज नाम अर्हीं कायोत्सर्ग कळो छे. ‘आवश्यक’ सूत्रमां काउस्सगलुं मुख्य फल ‘वर्णतिगिच्छा’ कहुं छे. जेम देह पर गुमडा विगेरे थया होय तो तेनी मलमपट्टी विगेरेथी शान्ति कराय छे एवं आत्मा पर दोषोरूपी जे गुमडा थया होय के जेनी शान्ति प्रतिक्रमवाथी एट्ट्ले वारंवार निंदवाथी, पश्चात्ताप करवाथी न थाय तेवा प्रबळ दोषो—पापोनो नाश आ काउस्सग ध्यान करवाथी निश्चयेन थाय छे. अतएव ह्य आवश्यकमां प्रतिक्रमण नापक चतुर्थ आवश्यक पछी आ काउस्सग नापक पांचमुं आवश्यक ब्रतघारी माटे करवालुं सर्वज्ञ भगवंते निर्देश्युं छे. निदान के—उपरना पापोने आ कायोत्सर्गरूप क्रिया जरुर शान्त-निर्मूल करे छे. अतः साधुए हम्मेशा काउस्सग करवो जोइए.

“आसन”

मूलमां ‘कायोत्सर्गादि’ ए पद आयुं छे. अत्रस्य आदि शब्दथी ‘निष्ठाकरणमासेवनम्’ टीकाकार ज-णावे छे. न्यायविशारद उपाध्यायजी महाराज ‘आदिना-तापनादिग्रहः’ कहे छे. अर्थात्—जेम साधुए कायोत्सर्ग हम्मेशा करवो जोइए, तेम एक ज स्थानमां कायाने स्थिर करी

जीवोनो बचाव थाय तेम एक आसने बेसी ध्यानादि पण करवा जोइए. एटले वारंवार इधरउधर फरखुं न जोइये जेथी जीवोनी विराधनानो प्रसंग प्राप्त थाय, अथवा ढंडासण, उत्क-हुकादि आसन वाळी कायालुं दमन करखुं-कायानो निग्रह थाय ते रीते स्थिर थखुं. उपाध्यायजीना वचनमां स्थाध्यायादि-मांथी निष्टृत थइ खुल्ला स्थानमां नम देहे उभा रही चैत्र-वैशाख महीनानी गरमीमां आतापना लेवी, कडकडती ठँडीमां कपडा अलग करी खुल्ला स्थानमां ठंडी लेवी एटले शीतसहन विग्रे क्रियाओ करवी जोइये; परंतु आत्मा आर्तध्यानी न थाय ए वात नितान्त ध्यानमां राखवी.

‘ उपसंहार ’

आटलुं कथन करी हवे श्लोकना उत्तरार्द्धी ग्रंथकर्ता वाल योग्य धर्मोपदेशनो उपसंहार करता जणावेहे के-आ सर्व वाल योग्य धर्मोपदेश वाहा आचार संबंधी जाणवो. वस्तुतः अहीं जे विस्तृतरूपे वाहा आचार संबंधी उपदेश जणाव्यो ते अने तेने लगतो ज उपदेश उपदेशके वालवर्गने आपवो. आ उपदेश वाहा आचार संबंधी ज आपवो जोइये आटलुं तो वरावर उपदेशके ध्यान राखखुं. सिवाय आचार्यश्रीए ‘इत्यादि’ अहीं आदि शब्द आप्यो हे एटले आदि शब्दथी साधुए जे स्थानमां रहेखुं तेनी अने वस्त्रपात्रनी उभय काल वरावर ध्यान राखी पहिलेहणा करवी, उभय काले लागेला दोषनी शुद्धि भाटे प्रतिक्रमण करखुं, एवं सूत्रादिना अभ्यास भाटे

रात्रिना पाष्ठला पठोरमां साखोक्त विधिपूर्वक प्राभातिक-
काल ग्रहण कर्त्तार्नी विधि विगेरे क्रिया अवश्य करवी
जोड़ये। पुनः पठाग्रतोनुं पालन, गरम जलनुं पान, रात्रिमोजन
आदिनो त्याग ए अनुशासनो माधुए अवश्यमेव करवा जोड़ये।
अहीं दग्धपिला आ सर्व साधुओंना चाह आचारो जाणवा,
निनान्तेन धालवर्ग चाह आचारने निहाळवा लेटली ज बुद्धि
घरानार तथा नन्यरत्ने अनुरागी होवार्था आ सर्व उपरोक्त
उपदेश तेऽर्थानी अद्वापा वधारो करी धर्मपति प्रवल अनुराग
उपजाये ए यंभवित ज छे, बन्के वधुमां आवा उपदेशर्थी उप-
देशक नेशोना हृदयमां यंयकर्त्ताना बचन प्रसारो वौषिद्वीज
पकटार्था पद्यप अने बुधपणार्ना अवस्था पर लइ जाय ए काँड
अधिकांक्ति न गग्नाय।

आ रीने दुँकमां यंयकर्त्ताए याल योग्य हिरोपदेश करो।
आवा उपदेशर्थी शालजीवो धर्ममां दृढ आश्रयवाला यह अनश्य
प्रमदः मध्यमयर्गदां आवी जाय है। अनण्ड आ लोकोने
हये पर्यपर्गे योग्य उपदेश प्राप्तो जोहए। पाटे आ उपदेशनुं
ग्रन्थ आगार्थी अहीं दृश्यां दृश्यां है।—

मध्यमबुद्धेस्त्वीर्यासमिति-

प्रभृति विकोटिपरिशुद्धं ॥

आद्यंतमध्ययोगैर्हितदः ॥

सलु साधुसद्यवृत्तम् ॥ ५-७ ॥

मूलार्थ—उपदेशके मध्यमबुद्धिवर्गने ईर्यासमिति आदि पांच समितिनुं स्वरूप तथा त्रिकोटिये शुद्ध आदि, मध्य अने अंतमां कल्याणकारी एवं साधु संवंधी सुंदर वर्तनलुं निश्चयेन कथन करबुं.

“मध्यमवर्गनी योग्यता”

स्पष्टीकरण—पहेला प्रकरणना वीजा अने त्रीजा अल्लो-कना विवरणमां आपणे तपासी गया के—मध्यमबुद्धिवर्ग वाल-वर्ग करतां बुद्धिमां तथा आचारमां चढतो होय छै, अर्थात् तेओ विचारशील होवाही वाहा आदंवरना खाली भभका-मात्रथी खुशी थता नथी किन्तु अंदरना शुद्ध आचारोनी परीक्षा करवा माटे पोतानी बुद्धिने दोडावे छै. अतएव आ लोकोनी पासे आधिक्येन धर्ममां ढढ करवा माटे उपदेशके प्रधान एवा साधु आचारनुं स्वरूप जखर ग्रतिपादन करबुं. निदान के—आगळ जणावी गयेल आचारनुं ग्रतिपादन आ लोको पासे करबुं ते निरर्थक समजबुं. पांचमी या छड्डी चोपडीना अ-भ्यासकने पहेली चोपडीनो पाठ शीखवाहवा जेबुं हास्यकारी ज गणाय, कारण के उपर दर्शित साधुओना वाहा आचारो दुष्कर अने दुर्वाहा छतां अषुक पकारना लोभ या मोहना का-रणयी विनयरत्न आदिनी माफक घणा लोको सेवन करे छै. एवं खाली आत्मशुद्धि विना आचा प्रत्यर वाहा आचारो आत्माए—“अणंताइं दव्वंवलिंगाइं” ए वचनथी अनंती

वार सेव्या छे, परंतु तेथी आत्मकल्याण जराये थयुं नहीं.
आवा आवा अनेक विचारो 'आ मध्यमधुदिवर्ग विचारे छे.

“ उपदेश ”

अतः जे आचारोनी सरी दुष्करता अने उत्तमता होय तेवा
अभ्यंतर शुद्ध आचारोनुं स्वरूपदर्शन उपदेशके आ लोकोने
करावयुं उचित गणाय. ग्रंथकर्ताना वचनमां ‘ईर्यासामिति-
प्रभृति’ ईर्यासामिति विगेरे साधुओनुं सत्य स्वरूप कहेवुं.
ते आ प्रभागे-प्रथम तो साधुए स्वात्मशुद्धि माटे अने वाह
आचारोनी सार्थकता घदल आठ प्रवचनमातानुं पालन करवुं
जोइए, १-ईर्यासामिति, २-भाषासमिति, ३-एषणा-
समिति, ४-आदानभंडमत्तनिक्षेपणासमिति, ५-
पारिष्ठापनिकासमिति, ६-मनोगुप्ति, ७-वचनगुप्ति,
८-कायगुप्ति. आमां पांच समिति अने त्रण गुप्ति छे,
उभय पली आठ प्रवचनमाता कही छे.

“ प्रवचनमाता ”

प्रवचन एट्ले नैनसिद्धान्त तेमां जे माता तुल्य माता ते
प्रवचनमाता, अर्थात् जेम माता पुत्रनुं सर्वावस्थामां हित ज चाहे
अने करे छे तेम आ माता पण तेनी सेवा करनार अने
तेनी आशामां वर्तनार साधुरूप पोताना पुत्रनुं पकान्त कल्याण
ज करे छे. वर्ले लौकिक माता कदापि विरोधी पण थइ जाय
के अथवा जां लोकमां पूरतुं हित पण नयी करती त्यां पर-
लोकना हितनी चात ज क्यां रही? ज्यारे आ लोकोचरमाता

त्तो स्वमर्मां पण पोताना पुत्रनुं अहित नथी करती—विरोधी नथी बनती, आ लोकमां पूर्ण कल्याण करवा साथे परलोकमां नितान्त कल्याण ज करे छे एटले आ माताने सर्वतोशेषु केम न कहेवी ? अबश्य उत्तमोत्तम माता ज कहेवाय.

“ समितियो ”

अहीं समितिनुं स्वरूप शास्त्रमां आ प्रमाणे दर्शाव्युं हो—
 “ प्रविचाराप्रविचारात्मिका समितिः ” “ जे क्रियामां कर्मबंधक खोटी प्रवृत्तिनो आत्मा रोध करे अने कर्मस्थयकारक प्रवृत्ति करे ते समिति ” हिसा, झूठ आदि चेष्टाओथी नितान्त कर्मबंध ज थाय हो, माटे तेपांथी देह आदिने रोकी कर्मनिर्जरानी हेतुभूत समितिरूप क्रियामां आत्माने स्थापवो. एटले मार्गमां गमन करवा पूर्वे बीजी तरफना ध्यान, विचारो अने चार्तालाप आदिने रोकी केवल साडात्रणा हाथ जमीनमां दृष्टि राखी जीवोनो बचाव करी गमन करवुं ते ईर्यासमिति १, अन्यनी निंदा के दुःख न उपजे, पदार्थनुं यथार्थ स्वरूप कथन कराय, नितान्त अन्यनुं हित याय अने परिमित शब्दो जेमां होय जेथी खुड्डी रीते अर्थबोध याय ए रीते भाषानो उच्चार करवो ते भाषासमिति २, आधाकर्मी आदि ४२ दोषो न लाग्या होय एवा आहारादि ग्रहण करवा ते एषणासमिति ३, वस्त्र-पात्र आदि कांइ पण चीज प्रथम दृष्टिथी वरावर निहाळी, रजोहरणथी प्रमार्जी बाद लेवी अथवा भूमि पर मूकवी ते आदानभंडमत्तनिक्षेपणसमिति ४, मळ, मूत्र, स्लेष्म

के अन्य पदार्थों निर्देश, निर्जीव स्थानमां परठवदा-छोड़ी देवा
एतुं नाम पारिस्थापनिकासामिति ५—आ पांच क्रियाओ
आत्माने अशुद्ध व्यवहारमांथी निकाली (वहार लाली) शुद्ध
व्यवहारमां प्रवर्तीते हे. अतएव अशुद्धमांथी उद्गृह यह शुद्धमां
प्रवर्तयुं तद्रूप आ पांच समितियो कही.

“ गुप्ति ”

गुप्तिलुं स्वरूप “ अप्रविचारात्मिका गुप्तिः ”
अप्रविचार एटले निरोध तत्स्वरूप गुप्ति जाणवी. परमार्थ ए
के—जेमां आत्मानी शुद्ध अथवा अशुद्ध उभय पैकी एकमां पण
प्रवृत्ति न होय ते गुप्ति जाणवी. ज्यारे मन, वचन तथा काया
आ त्रणे योगने दृष्ट कायोंमांथी संहरी उच्चम कायोंमां—आत्म-
हितना कायोंमां—स्थापन कराय त्यारे ते समिति जाणवी, अने
ज्यारे ए त्रणे योगनो दृष्ट के हितकारी कोइ पण व्यापार न
होय किन्तु शान्तं मौन होय त्यारे ते मनोगुप्ति १, वचन-
गुप्ति २, कायगुप्ति ३ जाणवी. एवं आ त्रणेनो वाच्यार्थ
पण मनलुं गोपन, वचनलुं गोपन अने कायादुं गोपन ए ज
अर्थबोध करे हे. हुंकमां मध्यमबुद्धिकर्ग पासे उपदेशके आ
समिति—गुप्तिलुं स्वरूप वरावर दर्शावयुं, अने कृथन करवुं के
साधुओनो आ मुख्य आचार हे.

‘ इननादि त्रिकोटि ’

फरी साधुओलुं चारित्र “ त्रिकोटिपरिशुद्धं ” राग,

द्वेष अने मोहे करीने शुद्ध होय, अर्थात् मुनिग्रोने संसा-
रना विविध सुंदर पदार्थोंनो मोह न होय, स्वजन-परजनमां
मोह के रागवंध न होय, निंदक के पूजकमां ग्रेम या द्वेषभाव
न होय, अरे ! साधुओने स्वशरीर पर पण मोह नथी होतो
तो अन्य पदार्थनो मोह क्यांथी होय ? निदान के—साधुओ एवं
चारित्र—सुंदर वर्तन आचरे के जेमां आ राग, द्वेष व मोहने अव-
काश न मले अथवा अनुक्रमे निर्मूल यहने चालया जाय, टीका-
कार आ पद्नो वीजो अर्थ दर्शावे छे—“ तिक्षः कोट्यः
हननपचनक्रयणरूपाः कृतकारितानुमतिभेदेन श्रूयं-
ते ताभिः परिशुद्धं ”. हनन, पचन, क्रयण ए त्रण
कोटीने करबुं, करावबुं अने अनुमोदनवडे गुणवायी नव
भेदो याय, आ नव भेदे शुद्ध साधुओनुं वर्तन होय,
अर्थात् मुनियो कोइ जीवने हयो, हणावे अने हणाताने
सारो सप्जे नहीं, अग्नि आदिनो आरंभ करे, करावे ने कर-
ताने ठीक माने नहीं, कोइ पण चौज वजारयी मूल्ययी ले,
लेवरावे ने लेताने सारो सप्जे नहीं. परमार्थ के-४२ दोष
रहित जे आहारविधि मुनियो माटे आगल दर्शावी गया ते
आ त्रण कोटीमां अंतर्गत थाय छे. जो आ त्रिकोटीशुद्ध
वर्तन यथास्थित होय तो ज आ आहारविधि पण वरावर सुर-
चित थाय; अन्यथा आहारविधि पण सदोषमय जाणवी.
एट्ले निर्दोष आहार इच्छक मुनिये अवलम्बां अवश्य आ त्रण
कोटीनी शुद्धि करवी ए न्याय्य गणाय. ए ज वात शास्त्रोमां
कही छे—“ पिंडेसणाय सञ्चावा, संखितो असरह नव-

(६५)

सुक्षोडीसु । न हणह १ किणह २ न पयह ३, कय
कारवण अणुमहिं नवहा ” ॥१ ॥ “ पिंडेसणा संबंधी
सर्व विधि संक्षेपथी न हणुं ३, न खरीदुं ३, अने
न रांधुं ३ करुं, कराकुं, अनुमोदुं विगेरे ए नवकोटियां
समावेश थाय क्षे 。”

“ कषच्छेदताप त्रिकोटि ”

एवं टीकाकार पुनः “ त्रिकोटीपरिशुद्धं ” नी टीका
“ कषच्छेदतापकोटित्रयपरिशुद्धं ” जणावी स्थष्ट कहे
छे के—संपूर्ण जैनागम आठ प्रवचनमातापां अंतहिंत होवायी
एटले जैनागम आठ प्रवचनमाताना आधारे ज जीवे क्षे, माटे
विद्वानोए आ जैनागमनी पण त्रय कोटिथी कष, च्छेद अने
तापद्वाराए परीक्षा करवी ए नितान्त न्याय्य गणाय. वाह—आ-
भ्यंतर आचारने दर्शवनार एवा भूल स्थंभूत प्रवचन—सिद्धा-
न्तनी कसोटी कर्या विना आचारोनी कसोटी क्यांयी याय ?
अतएव अश्र टीकाकारे तेनी परीक्षा करवा “ त्रिकोटिपरि-
शुद्धं ” ए पदनो उपरोक्त अर्थ जणाव्यो क्षे एटलुं ज नहीं किन्तु
प्रगाढपणे खुल्लो करे क्षे. निदान के—आगम एटले सर्वज्ञानं वचन
अने तेनी यथास्थित परीक्षा यथाथी तदुक्त आठ प्रवचनमा-
तानी स्वतः परीक्षा यह गह, कारण के—सर्वज्ञवचनस्तप प्रवचन
आणायी ज साधुओ वर्तन—क्रियामात्र करे क्षे.

“ कषशुद्धि ”

कष, च्छेद अने तापतुं स्वरूप एतत् अंयकर्ता “ धर्म-

“विद्यु” मां आ रीते जणावे छे, जे परीक्षकोने वहु उपयोगी तथा ध्यान राखवा योग्य छे. “विधिप्रतिषेधौ कष्ट इति” विधि तथा प्रतिषेध ते कष्ट. मोक्ष या स्वर्गमासिमां हेतुभूल जे कायों तेने दर्शावनार वाक्यो ते विधिवाक्यो, जेवां के— “आसं च छुँदं च विर्गं च धिरे ” धीर पुरुषोए आशा तथा मोहनो त्याग करवो जोइए, “उदाहु वीरे अप्प-मादो महामोहे ” वीरप्रभु कहे छे के—महामोहथी अप्रमादी-सावधान रहो, “सच्चामगंधं परिणाय षिरामगंधो परिव्वए ” (आचारांग) सर्व भावोने छोडी निर्मोही यइने विचरो. एवं दान देखुं, तप करवो, पांच समिति तथा त्रण गुसिए शुद्ध चारित्र पालबुं—आ सर्व विधिवाक्यो जाणावा. फरी जे करवायी पापबंध थाय, आत्मालुं अहित थाय तेवा कायोंना निषेधर्दर्शक जे वाक्यो ते प्रतिषेध वाक्यो जाणावा, जेवां के—“रागदोसकसाएहिं इंदिएहिं य पंचर्हिं । दुहा वा मोहणिज्जेण अद्वा संसारिणो जिया ” राग—द्वेष अने कषायथी, पांच इन्द्रियोथी तथा वे प्रकारना मोहथी संसारी जंतुओ दुःखी थाय छे, अतएव तेनो त्याग करवो जोइये. मुनः “आत्मवत्सर्वभूतेषु, सुखदुःखे प्रियाप्रिये । चित्यज्ञात्मनोऽनिष्टां, हिंसामन्यन्त्र माचरे” ॥१॥ जेम स्वात्माने सुख तथा दुःख प्रिय अने अप्रिय लागे छे तेम सर्वात्माओ संबंधे समजी पोताना आत्माने अनिष्ट यवी हिंसा अन्य आत्मानी विद्वाने न करवी, तेमज शुद्ध न

चोलबुं, चोरी, मैथुन न करवा विगेरे आ सर्व प्रतिषेष वाक्यो
जाणवा, आ रीतना विधि, निषेध वाक्यो जेमां होय ते कषशुद्ध
जाणवा, सोनानी परीक्षा करवा पाटे प्रथम तेनी कसोटी पर
आंक आपी शुद्धि कराय छे, एवं जे घर्मशास्त्रमां आ उभय
वाक्यो कर्तव्यनो उपदेश अने अर्कर्तव्यनो त्याग उपदेशता होय
ते ज शास्त्र कपशुद्ध जाणबुं; परंतु जे शास्त्र हिंसा आदि पाप-
कर्मना त्यागना बदले कर्तव्यतया कथन करे ते शास्त्र आ कष-
शुद्धिमां आवी शके नहीं. अतएव ‘ यज्ञमां हिंसा कर्तव्य छे ’
एम स्पष्ट प्रतिपादन करनार वेदादि अने विषयकथाय आदिनी
मुष्टि करनार पुराणादि शास्त्रो कपशुद्ध क्यांयी संभवे ?

“ छेदशुद्धि ”

कषशुद्धि बाद छेद तपासवा जोइए. “ तत्संभवपाल-
नाचेष्टोक्तिश्छेद इति ” ज्यां विधि, निषेधनी संभावना,
पालन तथा वर्तनमां मूर्कवानुं जणाव्युं होय ते छेद कहो छे.
घणीवार सुवर्ण कसोटी पर वरावर शुद्ध देखाय छे छतां
पाछलयी तेमां भेद नीकली आवे छे, पाटे परीक्षको
सोनाने कापीने तेना अंदरना भागनी परीक्षा करवा चूकता
नयी. ए ज रीते शास्त्रोमां विधि, निषेध उभय वाक्यो दर्शाव्या
होय; किन्तु ते प्रयागे करी शकाय के नहीं, तेनुं पालन करवुं
जोइए विगेरे विषयो गुप्त राख्या होय अगर-न जणाव्या होय
या त्रो करवानुं अन्यथा प्रकारे दर्शाव्युं होय एटले उपदेश अने

वर्तन वजे जूदा जूदा दर्शन्या होय तो ते शास्त्र कषशुद्ध नं होवायी स्वीकार्य नथी; बल्के सर्वथा हेय जाण्यालुं. अतः कप-शुद्धि पछी शास्त्रना आंतरभागनी परीक्षा करवा छेदशुद्धि-द्वाराए मुशुज्जुओए अवश्यमेव चिकित्सा करवी. जे शास्त्रमां विधेयवाक्यो अने निषेधवाक्यो कहा पछी तेनी पुष्टि माटे विविध प्रकारनी बाहा पवित्र क्रियाओ कथन करी होय, तेने पाळवाना विविध प्रकारो दर्शन्या होय, अथवा जेथी विधेयवाक्यो अने निषेधकवचनोने जोर मळे तेवा विषयो जेमां अच्छी रीते वर्णन्या होय तो ते शास्त्र छेदशुद्ध कही शकाय. जेमके-विधेयमार्गमां दान, तप, स्वाध्याय विगेरे कहा छे, तो तेना पोषण माटे जैन सिद्धान्तमां दानलुं स्वरूप, भेदो अने फल दर्शनी तथाप्रकारे करवानो उपदेश आपी तेना पर अनेक दृष्टांतो कही पोषण कर्यु छे. एवं तपलुं स्वरूप, द्वादश भेदो, तेनुं फल अने तेने आचरणमां मूकवानो उपदेश आपी खुद महाबीर भगवानना दृष्टांतयी पुष्टि करी छे. स्वाध्याय विगेरे माटे पण तथाप्रकारे ज प्रगाढरीत्या उपदेश कयो छे; एटलुं ज नहीं किन्तु साधु अने गृहस्थना ब्रतो, क्रियाओ, अतिचार, अनाचार दर्शनी विधिवादने घणा जोरयी पोष्यो छे. ए ज रीते निषेधक वाक्योथी मोहत्याग, कषायत्याग, हिंसा, कूट आदिनो निषेध करी आ पापोना स्याग माटे भिज्ञ ग्रन्थ क्रियापंथो दर्शनी पालनता-कर्तव्यता पर वहु वहु जोर आपी अनेक दृष्टांतो कहा छे. अतः आ रीतना जे आस्तो ते

कष तथा छेदशुद्ध जाणवा; ज्यारे अन्य शास्त्रोमां तेवी प्रगाढ क्रियाओ दर्शावी नयी.

“ तापशुद्धि ”

कष तथा छेदे करीने बने रीते सुवर्ण सिद्ध थयुं होय सो पण विशेष शंकाने दूर करवा तेना मिश्रभागनी परीक्षा करवा फरी बुद्धिमान सराफो तेने ताप आपी-अभिमां तपावी अच्छी रीते निहाले छे. एट्ले जो सुवर्ण अभिमां नाख्या पछ्डी ते पोतानो असल रंग तथा स्व-स्वरूपनो त्याग न करे तो ते खरुं कंचन कहेवाय, अन्यथा ते सुवर्णपणाना मूल्यने लायक न गणाय; कारण के सात्रुं सोतुं सर्वदा एक ज रूपमां रहे छे. तथापकारे शास्त्र पण कष, छेद उभय रीते शुद्ध नीकल्या पड्ही तेनां अंतरतत्त्वनी यथार्थ परीक्षा करवा तेनी तापद्वारा शुद्धि निहाल्यी ए उचित ज गणाय. तापतुं स्वरूप आ रीते जाणावुं “ उभयनिर्बंधनभाववादस्ताप इति ” उपर जणावेल कष अने छेद उभयना आधारभूत अने परिणामी कारणरूप जीवादि पदार्थोनी यथास्थित जे च्याहुपा तेतुं नाम ताप, कष तथा छेदनी सफलताता तापनी शुद्धि पर अवलंबी रहे छे, एट्ले तापनी सफलतामां कष-छेदनी सफलता समजली. एवं शास्त्रोमां विद्धि, निषेधवाक्यो दर्शाव्या होय, विविध वाह क्रियाओ पण कही होय तदपि आ सर्वना आधारभूत आत्मा विग्रेरे तत्त्वतुं स्वरूप एकदेशीय अथवा सदोष प्रकाशयुं होय सो उपरोक्त बने फलशून्य समजना.

परमार्थ ए के—सर्व बाहा, आभ्यंतर व्यवहारनो मूल आधार जीव, कर्म, जगत् विग्रे पदार्थोंनी शुद्ध—निर्दोष मान्यता प्र रहो छे. अतएव आ पदार्थों आनादि अकर्तृक अने नित्यानि-त्यत्वरूप धर्मवान् ए रीते ज्यां ग्रहण्या होय अर्थात् आत्मा, कर्म, जगत् आदि पदार्थों द्रव्यास्तिक नयनी मान्यतामां नित्य अने पर्यायास्तिक नयनी मान्यतामां अनित्य, एवं उत्पाद, व्यय अने स्थितिरूप धर्मवान् छे—आबुं सुंदर अवाद्य स्वरूप ज्यां वर्णव्युं होय ते शास्त्रने तापशुद्ध विद्वानो समजे छे. आत्मा आदि पदार्थों कंचनकुंभना दृष्टांते नित्यानित्य धर्म-वान् छे ए बात वरावर गळे उतरे तेवी छे. कंचनकुंभ फुटी जबाथी तेना कुंडल के कडा विग्रे बनाव्या तदपि कंचन तो कायप ज रहुं; मात्र कुंभ आकारनो नाश अने कुंडलादि आ-कारनी उत्पत्ति यइ. एवं आत्मा पण अमुक गति अपेक्षया नाश अने उत्पन्न थाय छे ज्यारे आत्मत्वरूपेण सर्वत्र विद्यमान ज रहे छे. आ स्थितिमां प्रथम कहेल विधि, निषेषबाक्योनी साफल्यता तथा विविध क्रियाकांडोनी साफल्यता अच्छी रीते बनवा संभव छे, परंतु एकान्त नित्य अथवा एकान्त अनित्य आत्मवादमां सर्व क्रियाओ, उपदेशो अर्थशून्य—अरे ! छार पर लिपण जेवा समजवा; माटे विद्वानो तापशुद्धि, कषशुद्धि अने छेदशुद्धि कर्या पछी ज समुचित रीते करे छे. बस कष, छेद अने तापरूप त्रिकोटिये शुद्ध जे शास्त्र ते ज परिशुद्ध जाणाउं. अतः तदुक्त आङ्गाच्छो ज हितार्थीने शिरसावंद्य गणाय.

(१०१)

“ उपसंहार ”

आही आ त्रिकोटिशुद्ध सर्वज्ञशास्त्र सिवाय अन्य के
शास्त्र होय । ए रीते त्रये परीक्षामां सर्वज्ञ भगवंत महावीरहूं
बचन अवाचित सिद्ध यावाढी तदुक्त आठ प्रवचनमाता पण
नितान्त शुद्ध, अवाध्य जाणवी; माटे साधुए ए रीतनी निर्दोष
आठ प्रवचनमाता अहोनिश अवश्य पालन करवी, ए प्रमाणे
उपदेशके मध्यमधुद्धि लोकोने उपदेश आपवो. बधुमां उपदेशके—
“ अभीषामान्तरदर्शनमिति ” आ कष, क्षेद, तापमां
मुख्य कोण कोण ? समर्थ, असमर्थ कोण ? परस्पर भिजता
केटली ? विगेरे जरुर समजावऱुं.

“ त्रिधा हितकारी ”

फरी मुनियोनो आचार उपदेशके “आर्यतमध्ययो-
गैहितदं ” आदि, मध्य अने अन्तमां हितदायी एवो आ
आचार क्षे पम बणावऱुं. एटले ईर्यासमिति विगेरे साधुओनो
आचार आदि, मध्य अने अन्तमां हेतु, स्वरूप तथा अनुबंधे
करी सर्वथा परमपवित्र निर्दोष दर्शाव्यो ह्ये. प्रथम तो साधुने
जीवोनी दया—रक्षा अर्थे अने दुष्ट कायीं वंध करवा माटे ईर्या-
समिति आदि पालन करवानुं जाणाव्युं ह्ये, माटे आ आचार
हेतुरूपेण निर्दोष जाणवो. फर ईर्यासमिति आदि स्वयं
जीवोनी रक्षा—दयारूप होवाढी स्वरूपेण निर्वल जाणवो.
ईर्यासमिति आदि समितिमां अहोनिश सावधान मुनिने कदापि

अशुभ-अपावित्र विकल्पो उद्भवता नथी, वल्के सर्वदा सहि-
चारो ज बन्या रहे हें. अतएव आ समितियो कर्मनिर्जरा अथवा
शुभकर्मनो ज वंध करी भविष्यमां सुंदर फल अर्पण करे हें;
माटे आ मुनि-आचाररूप अष्ट प्रवचनमाता अनुबंधरूपे पण
शोभन कल्याणावह ज जाणवो. परमार्थ ए के-हेतु, स्वरूप अने
अनुबंधरूपे त्रिधा हितकारी एवो मुनियोनो आचार जाणवो.

“ बीजी व्याख्या ”

अथवा टीकाकार “ आद्यंत० ” आ पदनी टीका आ
प्रमाणे करे हें—“ वयसो जीवितव्यस्य वा हितदमु-
पकारि ” उपरोक्त साधु आचार जीवननी प्रत्येक अवस्थामां
हितकारी-उपकारी शाय तेवो हें. एटले प्रथम दशावेल मुनि
आचाररूप अमृतपान वाल, युवान के बृद्ध कोइ पण वयमां
देवामां आवे तथापि सर्व वयमां तुल्यरूपे उपकारी, अजर-
अमर फल अगाहरीत्या अर्पनार वने हें. उनः प्रकारांते
टीकाकार कहे हें के—“ वयनी आदिमां सूत्रादिनो अभ्यास,
मध्यवयमां अर्थश्रवण अने अंत्यावस्थामां धर्मव्याजादि
द्वाराए त्रणे वयमां आ मुनि-आचार हितकारी शाय हें ”
अर्थात् चारित्र ने जीवननी त्रण अवस्था पैकी कोइ पण
वयमां स्वीकाराय अने तेथी जे जे वयमां चारित्र स्वीकार्यु होय
ते ते वयमां तद् तत् वय योग्य कर्मद्वाराए स्वीकारनार आत्मा
पोतानुं अवश्य कल्याण करा शके हें. निदान के—अमुक ज

(१०३)

वयमां चारित्र स्वीकारी शकाय एवं अमुक ज वयमां चारित्र
पोतानुं फल ग्रापेण करे हे तेवो एकान्त नियम अहीं
नथी. अतएव प्रथम १२ वर्षमां सूत्राभ्यास, पछी १२ वर्षमां
अर्थाभ्यास अने पश्चात् १२ वर्षपर्यंत विहार करी शिष्यादि
निष्पत्ति एटले आचार्यपद योग्य थाय आप जे विशेषाबद्ध्य-
कमां दर्शान्वयुं हे, ते पण जेने प्रथम वयमां चारित्र स्वीकार्यं
होय अने आयुष्य दीर्घ तथा बुद्धि तीक्ष्ण होय तेने माटे,
अथवा वय गमे ते होय छतां क्षयोपशमादि तीव्र होय तेने
माटे आ नियम सुसंबद्धीत्या पाठकोए घटाव्वो-जाण्वो.
आथी उपरोक्त कथनमां पण काँइ वाय नहीं आवे.

“ उपाध्यायजीनुं कथन ”

उपाध्यायजी महाराज “ आद्यंत० ” ए पदनी दीकामां
साधु आचार माटे “ आवीलए निष्पीलए इत्याग-
मात्तदविरोधि अव्यमध्यमविकृष्टपोविशेषरूपैर्वा
हितदं भवति ” मलिन कपड़ुं सामान्य मर्दन, विशेष मर्दन
करवाथी सामान्य, विशेष रीते विशुद्ध वने हे, एवं कर्माहृत्त
आत्मा पण अल्प, मध्यम अने उत्कृष्ट तपस्या करवाथी विशुद्ध
विशुद्धतर याय हे. परमार्थ ए हे के-संयम स्वीकार्या पछी
जेम मुनि-आचारमां आठ प्रवचनमातानुं पालन करवानुं कहुं
तेम आत्मानी विशुद्धि माटे जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट तप
पण शक्ति अनुसारे कर्वो उचित हे. एटले ए रीते तप अ-
पेक्षाए पण मुनि-आचार आदि, मध्य अने अन्तमां सर्वथा

(१०४),

कल्याणकर्ता बने होः सारांश के-दरेके प्रकारनीं जुदीं जुदीं
व्याख्यानो सार एटलो ज के मुनि-आचार मात्रबत् एकान्ते
हितकारी जाणवो.

“ समाप्ति ”

संक्षेपमां—अहीं पर्यंत दर्शविल मुनि-आचारनी व्याख्या
मध्यमबुद्धिवर्ग पासे उपदेशके करवी, कैमके ते लोको वधुं
रीते मुनियोना उपरोक्त आचारो तरफ अधिक ख्यात राखे
हो, एटले आ आचारो श्रवण करी धर्मबद्धमां तेऽथो वधु
मक्कम थाय त्यारपछी तेऽथोने आगमतत्त्वनुं स्वरूप समजावी
बुध योग्य अधस्थामां आरूढ थाय तेम आचार्ये करबुं शास्त्रीय
गणाय, निदान के—मध्यमवर्गनी कोटीमां ज रहे ते कांइ उप-
देशनुं फल पर्याप्त न गणाय.

उपर कहेला मुनि आचार माटे ज वधु खुलासो करता
अंथकार आठ प्रवचनमातानुं पालन करवानो स्पष्ट उपदेश
दर्शवे हो—

अष्टौ साधुभिरनिशं मातर,
इव मातरः प्रवचनस्य ।
नियमेन नं मोक्षव्याः,
परमं कल्याणमिच्छद्भिः ॥ २-८ ॥

मूलार्थ—परम-उपमातीत कल्याण-सुखना इच्छक एवा

मुनियोए हितवत्सलपातानी तुलण आण प्रवचनमातानी नित्य
सेवा करवी, निश्चयतया कदापि तेनो पद्मव छोडवो नहीं.

“ तीर्थसूतमाता ”

स्पष्टीकरण—आ आर्यों आचार्यशी आठ प्रवचनमा-
तानी सेवा करवानो उपदेश जणावे छे. आठ प्रवचनमातां
स्वरूप आगलनी आर्याना विवरणामां विस्तारयी दर्शवी गया.
आ आठ प्रवचनमाताने महर्षियो मातानी उपमा आपी तेनो
मातृत्वपणे निर्देश करे छे. उपकारज्ञ जनो मातानी सेवा
एक ज्ञाण पण विसरता नवी, कारण के माता जन्मदाता,
पालनकर्ता अने हितकर्तृ होवायी अतुलित-अप्रतिकार्य-
अनन्य उपकारिणी शास्त्रोपां कही छे. अतपि उत्तमजनो
तेनी सेवा करवामां ज पोतां दुख, यश, भविष्या,
इतिकर्तव्यता समजे छे. एटले “आतीर्थमिवोत्तमानाम्”
“तीर्थनी माफक यावत्जीवन भक्तिपूर्वक आराध्य मानी उत्तम
पुरुषो मातानी सेवा करे.” ए उकिने चरितार्थ करे छे. निदान
के—माता भाटे भक्तियी पोताना प्राणो समर्पने पण जीदगीनी
अंतिम ज्ञाण पर्यंत लेझो सेवा करे ते ज उत्तम पुरुष जाणावो.

“ प्रवचनमातृत्व-तत्सेवा ”

अहीं लौकिक आराध्योमां माता जेम उत्कृष्ट आराध्य मानी
छे, परंतु तेनी समान अन्यरां तेवा गुणो न होवायी अन्यने
तथाप्रकारे आराध्य मानेल नवी. एवं लोकोचर क्रियात्मकमां

आठ प्रवचनमाता प्रातृत्व गुणधारिका होवाथी महर्षियों तेने माता कही संपूर्ण आराध्यतया उपदेशे हैं, अर्थात् जन्मदातृत्व, पालनकर्तृत्व तथा शिक्षादातृत्व गुणों तेसां परण हैं। प्रवचन-सिद्धान्त तेने जन्म आपनार, ईर्यासमिति आदिमां उपर्युक्त मुनि ज सिद्धान्त-तत्त्वने पामी शके। सिद्धान्तनो अभ्यास, स्वाध्याय विग्रहेनो अधिकार आठ प्रवचनमातामां अनुपर्युक्त मुनिने निषेध्यो हैं। निदान के—सिद्धान्तना अभ्यासथी जे कल्याण सधार्हुँ जोइष्ट ते कल्याण अनुपर्युक्त मुनि सिद्धान्तनो अभ्यास करवा छतां परण साधवा असमर्थ बने हैं। अतएव आ माताने प्रवचनजन्मदाता महर्षियोए कही। एवं उच्चरकालमां प्राप्त सिद्धान्तशान अने सद्वर्तन तेनुं पालन तथा पोषण अधिकाधिक आ माता ज करे हैं। अने क्रमशः शिक्षाश्चो अर्पीं उच्चरोत्तर उपाध्याय, आचार्य आदि पदोना अधिकारो पर लहू जह उच्च स्थाने आत्माने आ माता ज बीराजमान करे हैं। परामर्श एटलो ज के—आ माता पोताना पुत्रने दुःख-क्लेशोथी बचावी ले हैं तथा अपमार्गथी सर्वदा दूर ज राखे हैं, माटे उपकारज्ञ पुत्रोनुँ ए प्रधान कर्तव्य है के मातानो यत्किंचित परण अनादर न करवो जोइये, तो दुःख के क्लेशनी तो वात ज क्यां रही ? फरी माताना क्लेशयी पुत्रने क्लेश अने माताना नाशथी पुत्रनो परण परिणामे नाश याय हैं। एवं ईर्यासमिति आदिनो क्लेश उपजावाथी अथवा नाश करवाथी प्रवचन आकारूप पुत्रनो परण नाशः ज याय, माटे उल्लृष्ट कल्याण इप्सु (इच्छनारा) मुनियोए आ-

(१०७)

मातानी प्रतिक्षणे सेवा करवी, किन्तु एक क्षण पश्च तेने विसरवी
न जोड़ये; कारण के आ मातानी सेवा करवायी परमार्थतया
सर्वज्ञनी वरावर सेवा करी गणाय. अन्यथा प्रष्ठ आज्ञानो
लोप कर्ये मानवो एम भगवंत् पोकारी पोकारीने जणावे हैं.

ए रीते 'पद्ध्यमलुदि' ने उपदेश आप्या पछी, अन्तमा
आ प्रमाणे उपदेश जहर करवो—

एतत्सचिवस्य सदा साधो—

र्नियमाङ्ग भवभयं भवति ।

भवति च हितमत्यंतं,

फलदं विधिनाऽगमग्रहणं ॥ २-९ ॥

मूलार्थ—पूर्वोक्त आठे प्रवचनमाता सहित नित्य वर्त-
नार मुनिने निश्चयथी संसारनो भय होतो नथी अर्थात् संसा-
रनो नाश थाय है, एवं भविष्यमां पश्च अतिशे आत्मानुं हित-
कल्याण थाय है ने विधिपूर्वक आगमज्ञान पमाहवाक्यप फल
अपेण करे है.

“ प्रवचनमातानी सेवानुं सर्वोक्तम फल ”

स्पष्टीकरण—एुण्यकामना अर्थे उत्तमज्ञनो कदापि माताने
अलग करता नथी, कारण के तेवा वर्तनपां ज पोतानुं श्रेयः
तेजो समजे है, एट्ले तेजोने अपयश आदिनो भय उपजातो
नथी, एवं अहीं पश्च दृष्टांत समन्वय करता आचार्यश्री संक्षेपमां
उपसंहार करी जणावे हैं के-जे मुनि आ आठ प्रवचनमातानी

आज्ञानो लोप करता नथी, कोइ पण क्षणमां आ मातानी सेवा विसरता नथी, प्रतिद्वंशे “जयं चरे जयं चिष्टे”। “जयणाथी चालबुं अने जयणाथी बेसबुं” ए महर्षिपूज्य आज्ञाने शिरोधार्य करी, ईर्यासमिति आदिमां सोपयुक्त रही अहोनिश वर्तन आचरे छे, तेओने भवसंसारनो भय रहेतो नथी—अर्थात् आ सुनियोने चतुर्गतिना दुःखनो लवलेश जेटलो ढर होतो नथी कारण के—तेओनी शीघ्र मुक्ति ज थाय छे. ठीक ज छे के—जेओ अन्य प्राणीने स्वात्मवत् देखी एक रोमपात्रमां पण पीडा न थाय अने आत्मा अशुभ पापकर्मनो बंधक न बने, आत्मा एक रोममां पण अशुभ विचार के प्रवृत्ति न करे तेवी अलौकिक उदार—पवित्रतम अप्रमत्तभावना धारे—आचरे छे, तेओनी शीघ्र मुक्ति ज थाय. अतएव दशवैकालिकमां महर्षि-पूज्य शश्यंभवस्त्रिर महाराजे कह्युं ते उचित ज छे.—“सब्ब-भूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाहं पासओ। पिहिया-सबस्स दंतस्स, पावं कम्मं न बंधह” ॥१॥ “कोई पण जीवने दुःख न उपजावतो अने सर्वने स्वात्मवत् देखनार तथा आश्रवोने रोकनार अने इंद्रियोनो निश्रह करनार एवो मुनि फरीने पापकर्मने वांधतो नथी” बधुमां अर्ही मूलकर्ता भार दइने कहे छे के—‘नियमात्’ निश्चयथी भवनो भय रहेतो नथी, एट्ले नितान्त—अशंसयेन भवनो नाश थाय छे.

“ उपसंहार ”

फरी भविष्यमां आ मुनिनुं अत्यंत हित-उत्कृष्ट कल्याण ज थाय छे. परमार्थ ए के—सोपयुक्त मुनिने

आ जन्म के अपर जन्मपां आनिष्ट आपायो आवता ज नयी-
 एवं ईर्यादिसमितिवान् होवाथी विनय, वैयाच्छ, भक्ति,
 सरखता, नम्रता आदि गुणो जहर होय, एटले आचार्य,
 उपाध्याय आदिनी समीपे सूत्रवाचनादि मंडलीमां वेठवानो
 पूर्ण अधिकार आ मूनिने यथेष्टप्ये प्राप्त थाय हो, जेथी सि-
 द्धान्तज्ञान सुखपूर्वक उपलब्ध थाय; माटे आवा मूनिने आगम-
 ज्ञाननी श्राविद्वारा पण आठ प्रवचनपाता फलदात् अवश्यमेव
 बने हो, निष्कर्ष एटलो के—ईर्यासमिति आदिमां सावधान
 मूनिने ज आ सूत्रादिनी वाचनामंडलीमां वेसवानो अधिकार
 कहो हो, अर्ही आचार्यश्रीए ‘मध्यबुद्धि’ जन योग्य उपदेश-
 विधिनो उपसंहार करी अन्तमां आठ प्रवचनपातालुं वरावर
 पालन करवालुं पर्याप्त फलनो निर्देश ए रीते कर्यो. परमार्थ
 के-उपदेशके ए रीते ‘मध्यमवर्ग’ पासे आठ प्रवचनपातालुं
 अवसान फल पण अवश्य जग्यावतुं, ”

गत आर्या श्लोकमां आठ प्रवचनपाता-पालक मूनिने
 आगमज्ञाननो अधिकारी कहो. आगमज्ञान गुरुमहाराजना
 हृदयमां ज विराजित होय हो, माटे ‘मध्यमवर्ग’ ने आ उपदेश
 पण साये साये उपदेशके कर्यो—

गुरुपारतंत्र्यमेव च,
 तद्वच्छुमानात्सदाशयानुगतं ॥
 परमगुरुग्रासेरिह वीजं,
 तस्माच्च मोक्ष इति ॥ २-१० ॥

मूलार्थ— गुरु पर आंतरनी भक्तिपूर्वक तेमना आशयने अनुलक्षी ही ते प्रमाणे वर्तन करदुं-तेओनी आज्ञाने आशीन ज रहेहुं ए ज परमेश्वर प्राप्तिनुं मुख्य बीज छे अने तेनाथी ज मुख्यतया मोक्षमाप्ति आत्माने कही छे.

“ गुर्वाधीनता ”

स्पष्टिकरण— अहीं प्रवचनज्ञान प्राप्त करवा मूलिये प्रथम तो गुर्वाधीन रहेहुं जोइये, ए तच्च आचार्यार्थी दशावें छे. अर्थात्-जेने आगमज्ञान, तेनुं मौलिक तच्च प्राप्त करदुं होय तेणे अबलमां तो तेवा ज्ञानवान् गुर्वादिकोनी सर्वस्वनो भोग आपाने पण सेवा करवी जोइए. दीक्षाकार कहे छे के-आ गुरुदेव सिवाय मारो संसारभय कोइ दूर करनार नथी-ए ज तरणतारण एक बहाजहृप छे, ए भावना हृदयमां अंकित करी-रोमेरोपमां प्रतिर्विवित करी तेमनी सेवा करवी एतावन्-मात्र नहीं किन्तु गुरु चित्त परिनी (जाणी) तेमना आशयतुं अनु-सरण करदुं, चैष्टा के क्रिया विशेषयी तेमना हृदयनो भाव जाणी लेवो अने ते प्रमाणे वर्तन करदुं, तेओना पर सरल आशययी अदूभूत भक्ति वारण करवी, बहुमान, विनय, सेवा, आसन अर्पण करदुं, उपा यदुं, सामे बदुं, पादप्रसालन, वैयावच विगेरे भक्ति मनसा, बाचा अने कायाधी करवी. दुँक्हां गुरु आज्ञाधी ज सर्व वर्तन करदुं, किन्तु पोज्ञार्थीए स्वतंत्र के स्व-च्छारी वर्तन न करदुं जोइये. “ आणाए विय चरणं तज्जन्मने जाण किं न भग्नाति । आणाव अहकंतो-क-

स्त्राणस्सा कुणह सेसं ” ॥ १ ॥ “ भगवाने आङ्ग आराधनमां ज चारित्र कहुँ छे. आङ्गानो लोप थवा पछी शुं वाकी रहे एट्ले चारित्र क्यांथी रहे ? जेणे गुरु आङ्गाने अतिक्रमी ते हवे कोनी आङ्ग आराधे ? अर्थात् ते कोइनी पण आङ्ग माने नहीं ” फरी सर्व तत्त्वज्ञान, चारित्रनुं खास रहस्य, आगम पेटीनी चावी, विद्या अने मंत्रोनी सिद्धि, धर्मनुं गूढ तत्त्व-ए सर्व गुरु आधीन होवाथी मोक्षार्थीए खास करीने गुर्वाधीन ज पोताहुं जीवन व्यतीत करखुं, एट्ले गुरुपादसेवामां ज जीवन चरितार्थ करखुं जेथी सर्व सिद्धियोपूर्वक आगमनुं गूढ रहस्य त्यांथी वरावर उपलब्ध थाय अने परिणामे कल्याण ग्रासि पण यद शके. “ णाणस्स होइ भागी, विरयरो दंसणे चरिते य । घज्जा आवकहाए, गुरुकुलचासं न मुंचंति ” ॥ १ ॥ एवं आ अनंतसंसारना दुःखनो नाश करनार अने मोक्षदर्शक गुरु सिवाय आ भूतलमां कोई नथी, एवुं धारी तेओने आङ्गाधीन रहेवाथी तेओनी परमकृपामय ग्रसनाता प्राप्त याय छे. गुरु ग्रसनाता पासे जगदुना तमाप पदार्थो तुच्छ जेवा भासे छे. गुरुकृपा ए ज परम ग्रामव्य तत्त्व छे. आ तत्त्व ज परमगुरु-जे परमेश्वर तेनी ग्रासिनुं मुख्य बीज छे. एट्ले गुरुकृपा फल्या पछी परमेश्वरनी कुशा विनाविलंबे हाथमां आवे छे. परमार्थ के-जेओ गुरु आङ्ग आराधक होय तेओ अवश्यमेव प्रभु आङ्गनुं पालन करे छे अने जेणे गुरु आङ्ग लोपी तेणे प्रभु आङ्गनुं पण अवश्य खुन कर्यै बाष्पदुं, माटे अहीं गुरु पराधीनताने ईंधनयातिनुं मुख्य अंग कर्तुं छे.

(५१२)

निदान के—छेवटे तैनाथी ज तैने मोक्षप्राप्ति याय छे-निर्णर्थ
एट्लो ज के—मुनिये गुह आज्ञाधीन रहेहुं, गुरुकुमां वास करवो,
तैनाथी ज परमेश्वरनी मासि अने छेवटे मोक्ष याय छे-ए रीते
उपदेशके ‘मध्यमबुद्धि’ वर्गने उपदेश आपवो.

आ रीते गुर्वाधीनता जणावी छेवटमां ‘मध्यम०’ योग्य
उपदेशनो उपसंहार दर्शावी अडधी आर्याथी आचार्यश्री ‘बुध’
योग्य उपदेशविधिनी प्रस्तावनानो उल्लेख करे छे-

इत्यादि साधुबृत्तं मध्यमबुद्धेः
सदा समाख्येयम् ॥
आगमतत्त्वं तु परं बुधस्य,
भावप्रधानं तु ॥ २-११ ॥

मूलार्थ—पूर्वे दर्शाव्या प्रमाणे साधुओलुं सदूर्वर्तन—
सुंदर आचरण, क्रियाकूशलता उपदेशके निरंतर ‘मध्यमबुद्धि’
वर्ग पासे कथन करेहुं, अने ‘बुधवर्ग’ने तो रहस्यप्रधान
आगमतत्त्वनो ज उपदेश आपवो.

“ उपसंहार ”

स्पष्टीकरण—अत्र ग्रंथकर्त्ता पूर्वार्थभागमां ‘मध्यमबुद्धि’
योग्य उपदेशविधिनो उपसंहार दर्शावे छे ने उत्तरार्थी
‘बुध’ योग्य उपदेशनो प्रस्ताव करे छे. आ श्लोकनो भाव

स्पष्ट ज छे एट्ले तेनो विस्तार करवो ए ग्रंथना कलेवरने वधारवाख्य ज थाय. हुँकमां आचार्यश्री कहे छे के—अमे पूर्वे जे ‘ मध्यमबुद्धि ’ माटे ईर्यासभिति आदि आठ प्रवचनमातानुं स्वख्य दर्शावी तेनुं पालन करवानुं जणाव्युं, सिद्धान्त-तत्त्व अहण करवानी योग्यता दर्शावी, गुर्वाधीनता, गुरुआज्ञाग्राहता विगेरे उपदेशविधिनो प्रकार दर्शाव्यो तेना पर उपदेशके वरावर ध्यान आपी तदनुकूलपणे तथाप्रकारनो उपदेश ‘ मध्यमबुद्धि ’ ने हमेशा कथन करवो. एट्ले सम्यग्रीत्या साधु-ओनुं सदृवर्तन जणाव्युं, जेना अवणाथी आ लोको धर्मकार्यमां अधिक अद्भात्य बनी परिणामे बुधनी कोटीपां दाखल याय. अर्थात् उपदेशकनी उपदेशक्षमता त्यारे ज प्रशस्यतर गणाय के ज्यारे ओता उपदेशबलयी स्थापित अद्भामां मजबूत रही अधिक धर्मसूचिपणुं अने तत्त्वज्ञमति प्राप्त करे. वस अर्हो ‘ मध्यम ’ योग्य उपदेशविधि ग्रंथकर्ता समाप्त करे छे.

“ उपक्रम ”

एट्ले क्रम प्राप्त अने बुधनी कोटीपां आवेल मध्यमजनो जेनी अभिलाषा करे एवा बुध योग्य उपदेशनी आचार्यश्री प्रस्तावना करे छे. ‘ आगमतत्त्वना ग्रेमी अने हमेशा आगम-तत्त्वनी ज शोषमां, परीक्षवामां लीन होय ते बुध.’ आ लक्षण ग्रंथकर्ता आगल जणावी गया छे. अतएव आ लोकोने उप-देशके आगमतत्त्वनो उपदेश आपवो एट्ले आगमनुं-स्वरूं रहस्य

कथन करतुं आगमतत्त्व “आत्माऽस्ति स च परिणामी”^० ए स्लोकयी ग्रंथकार प्रथम प्रकरणमां जणावी गया छे, ते ज तत्त्व अर्ही ‘बुध’ वर्गने उपदेशतुं, अने बधुमां प्रवचनतुं मौलिक रहस्य दर्शावतुं जे हवे पछी ग्रंथकर्ता जणावे छे. मूलमां जे ‘तु’ शब्द छे ते एवकार अर्थमां होवाथी निश्चयेन पूर्वोक्त ज तत्त्व विग्रे कथन करतुं.

“ दर्शित संबंधवालो बुध योग्य उपदेशनो प्रकार आचार्यश्री दर्शावे छे.”

वचनाराधनया खलु
धर्मस्तद्बाधया त्वधर्म इति ॥
इदमत्र धर्मगुह्यं
सर्वस्वं चैतदेवास्य ॥ २-१२ ॥

मूलार्थ—सर्वज्ञ प्रवचनोक्त वचन—आङ्गानुं आराधन—आङ्गानुकूल वर्तन करतुं ते ज सत्यधर्म अने तेनी विराधना—प्रतिकूल वर्तन आचरतुं ते ज अर्थम जाणावो. अत्र सर्वज्ञागममां ए ज धर्मतुं गृह रहस्य छे ने ए ज धर्मतुं मुख्य सर्वस्व सार छे; आसिवाय धर्मतुं अन्य काँइ तत्त्व नथी.

“ बुध—देशना ”

स्पष्टीकरण—अर्ही ‘वचनं—आगमं’ वचन एटले आगम-सिध्यान्त-प्रवचन, अने बुध एटले पंडित—तत्त्वज्ञ ए अर्थो

खास छक्कयमां राखवा. बुध ते ज जाणांचो के—जे उपरनी बनावट अथवा तथाप्रकारनी विशिष्ट क्रियाना वेशना आहंवरयी न रंगाय, किन्तु साचा झवेरीनी माफक पाणीदार हीरा—मोतीनी परीक्षा करे—स्वीकारे. अतः बुधजन उपरनो वेश देखी राजी न थाय, ते तो वेशविठ्ठलकोपां पण छे. एवं उत्कृष्ट त्याग, वैराग्य के क्रियाओ देखीने पण खुश न थाय, ते सर्व जगाली, गोशालो के निहृतोपां पण हती, होय छे; किन्तु क्रिया अने वेश साथे प्रसूता वचननो आदर, प्रेम तथा भक्ति केटली छे ? ते ज तपासे छे ने तेनाथी ज मुग्ध वने छे; कारण के पूर्वे कहा प्रमाणे विधि—निवेदनुं प्रतिपादन करनार जे सर्वज्ञ भगवंतं आगमस्तुप वचन तेनी आराधना करवी ते ज मौलिक धर्म कहो छे. भावार्थ एटलो के—आगमानुसारी आगमदर्शित मार्गमां प्रवृत्ति करवी, आगमना एक वाक्यने पण वाष न आवे तेम हेयनो हेयरीत्या जाणी परित्याग करवो अने उपादेयनो उपादेय जाणी आदर करवो ते ज परमार्थ धर्म जाणांचो. अर्थात् उत्कृष्ट क्रियानी आराधना अने उत्कृष्ट तप के चारित्रं पालन आत्मा सर्वज्ञना एक वचनथी पण उलटो चाली करे तो ते पलालपुंज वरावर निर्माल्य ज समजबुं. निदान के—भगवानना वचननुं पालन करवाजमां ज सम्यकृत्व, श्रुत अने चारित्र ए त्रयोनी साफल्यता समजबी. अतएव भगवाने “कडेमाणे कडे” ए सूत्रनी नहीं श्रद्धा करनार उत्कृष्ट चारित्री जगालीने पण निहृत कहो. वली आ वचनथी उलटी गति करवी, स्वप्रतिने आगल करी वचननो लोप करवो

(११६)

अयवा वचननो दुरुपयोग के अनर्थ करवो, पोताना आग्रहने, धारणाने पोषणा माटे सर्वज्ञवचननो उपयोग करवो ए सर्व प्रभु आज्ञाहुं खूनरूप चेष्टा होवाथी अर्थमें ज जाणवो. निदान के—तेशी आत्मा संसारना दुःखहुं पात्र ज वने हे.

“ वचनाराधकतामां आराधकता ”

भगवान् हरिभद्रमूरिजी महाराज जणावे हे के—उपदेशके बुध श्रोताने खुल्लुं जणावर्णुं के—प्रभुना वचनहुं पालन करवुं ते ज धर्म अने तेनो अनादर—अपालन करवुं ते अर्थम्, ए ज अर्हीं जैन प्रवचनमां धर्मनुं नितान्त सत्य—गूढतत्त्व कहुं हे, अने ए ज संपूर्ण द्वादशांगीहुं परमतत्त्व—सर्वसारभूत प्रधान तत्त्व कहुं हे. निष्कर्ष ए के—प्रवचनज्ञानहुं फल ए ज के शक्ति छतां तदनुकूल क्रिया—वर्तन करवुं अने वधु माटे पूर्ण आदर साथे अपेक्षा मानवुद्धि धारवी, श्रोता समीपे सत्य तत्त्वहुं कथन करवुं अने पोतानी अशक्ति जाहेर करवी; कारण के अद्वायी पडेला आत्मानो उद्धार कदापि थतो नथी पण क्रिया-पतितनो तो उद्धार थड़ जाय हे. एट्ले प्रभु आज्ञाहुं पालन करवुं ए ज सत्य धर्म अर्हीं दर्शाव्यो. प्रभु हैमचंद्रमूरिजी पण ए ज दशावे हे के—“ आज्ञाराद्वा विराद्वा च, शिवाय च भद्राय च । इतीयमार्हती मुष्टि—मन्यदस्याः प्रपञ्चनं ” ॥ १ ॥ आ माटे ज भगवंतो आगम प्रमाणे वर्तनारने आराधक कहे हे ने एक अन्नरने पण नहीं माननारने अनंत-संसारी जणावे हे, तेहुं कारण ए ज के—जेणे आगमाज्ञा मानी

तेणे सर्व आगमोक्त वातो मान्य करी, अने जेणे एक अन्तर
लोप्यो तेणे प्रभुनो पण अनादर कर्यो. अतः प्रभु आज्ञालुं
पालन करवुं ए ज धर्मतुं परमतत्त्व छे, ए रीते 'बुद्धजन' पासे
उपदेशके कथन करवुं, निदान के—आगमाज्ञानी प्राधान्यता—
श्रेष्ठता—सर्वकर्तव्यता दर्शाववी.

" चिचिन्न दलीलो "

" अरे ! आ प्रकारनो उपदेश आपवाथी तो वाह अने
आभ्यंतर आचारोनी अप्रधानता वल्के असारता ज ग्रतिभा-
सपान थाय छे, अथवा आ उपदेशथी आ लोकोनी आचार
परत्वेनी रुचिनो नाश ज केम न थाय ? जो आप ज होय
तो पछी वालजनने वाह आचार संवंधी उपदेश, मध्यमजनने
आभ्यंतर आचार संवंधी उपदेश आपवो नकामो ज मानवो
जोइये; माटे सर्व अनुष्ठानोने गौण करी वचनाराधनमां ज
धर्म केम न कहो । आ वधी शंकाश्चोने दूर करवा समय
अनुष्ठानोलुं मूल प्रभु आज्ञा ज छे ए वात दर्शाववा आचार्यश्री
परमार्थ उपदेश देखाडे छे. "—

यस्मात्प्रवर्तकं भुवि,
निवर्त्तकं चांतरात्मनो वचनं ॥
धर्मश्चैतत्संस्थो,
मौर्नीद्रिं चैतदिह परमं ॥ २-१३ ॥

(११८)

मूलार्थ—अंतरात्माने विदेयकार्यमां प्रवर्तक अने निषिद्ध कार्योंथी निवृत्तिकारक आ भूमंडलमां केवल सर्वज्ञोक्त प्रवचन ज उत्कृष्टतो छे, अने परमार्थतया धर्म पण आ मौर्नांद्रिना प्रवचन सिवाय अन्यत्र नथी.

“ मननी स्थिति ”

स्पष्टीकरण—विशिष्ट पवित्र अथवा अपवित्र कार्योर्पा आत्मा मननी प्रेरणा विना गति करवाने घणा अंशे असमर्थ ज वने छे, एट्ले प्रथम मन इच्छे छे ने पश्चात् आत्माने प्रेरे छे. यद्यपि असंज्ञी द्विद्रियादि जीवो मनहीन होवा छतां प्रत्येक क्रियाओ शरीरद्वारा ज करे छे, एवं संज्ञी आत्माओ पण घणी चार मन विना क्रियाओ करता अनुभवाय छे; तथापि अहीं भावरूप मन कायम होवाथी मनपूर्वक ज क्रिया-प्रवृत्ति थाय छे एम सप्तज्ञुः निदान के-प्रवृत्ति-निवृत्तिमां मुख्यतया मन ज कारणभूत छे.—“ मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ” आचारांगस्त्रब्रह्मां पण कहुँ छे के—“ जे आसवा ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा ”. “ जे आश्रवो ते ज निर्बराना कारणो थाय छे, अने जे निर्बराना कारणो छ्ये ते ज आश्रवना हेतुओ थाय छे.” आ कथनमां पण मननी ज मुख्यता दर्शावी छे. वली सातमी नारकी योग्य कर्मो अने उंच देवत्व योग्य कर्मो पण आत्मा मननी सहायताथी ज वांछी शके छे. एट्ले मन विना आत्मा जे काँइ प्रवृत्ति करे ते मात्र सापान्य ज जाणवी, परंतु विशिष्ट प्रवृत्ति तो आत्मा

मनद्वारा ज करे छे. शुभाशुभ कार्योंमां मन मुख्य मान्यु हे, पाटे मन कदाचित् अशुभने शुभतया अने शुभने अशुभतया परिणामावी झके ए सहज छे. आथी मनने जे संस्कार पले तेवी रीते ते परिणामे हे ने प्रवृत्ति-निवृत्तिमां साधक बने हे. अतः आत्मानी ऐच्छिक इष्टसिद्धि पाटे प्रथम मनने ज सुशिक्षित अने पवित्र संकल्पी बनावडुं उचित हे. जेप थया पछी मन तप, संयम, स्वाध्याय, शील आदिने आदेय मानी तेमां प्रवृत्ति, अने हिंसा, शूठ, चोरी, व्यभिचार आदिने हेय मानी तेनी निवृत्ति करे हे. परंतु आ प्रकारनी विवेकशाली प्रवृत्ति-निवृत्ति करवानुं वत मनने सुसंस्कारो अथवा ज्ञानप्राप्ति थया विना शास यवुं दुःसाध्य हे—वरावर मन समझदार थया पछी ज करे हे।

“ सर्वज्ञवचन ”

आथी ग्रंथकर्ता जगावे हे के—‘यस्मात्’ आ भूमंडलमां शुभ कार्योंमां मनने प्रवर्त्तवनार अने अशुभकार्योंथी निवृत्ति करावनार केवल सर्वज्ञकथित सिद्धान्त-प्रवचन सिवाय अन्य कोइ पण साधन नयी; कारण के सर्वज्ञ प्रवचनमां ज प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्गो दर्शावी हेय, उपादेय पदार्थों अच्छी रीते दर्शाव्या हे. सिवाय एक पण एवुं प्रवचन जगतमां नयी के जेमां विरोधी, स्वार्थानुं अने सखलित कथन न होय. सर्वज्ञवचननो बोध यया पछी आत्मा हेयनो त्याग अने उपादेयवुं उपादान करे हे एटले मनने सर्वज्ञागमना अभ्यासयी संस्कारित बनावडुं जोइए. कारण के—सर्वज्ञागमनुं परिशीलन करवुं ते ज वास्तविक धर्म हे; हिंसादिथी निवर्तवुं अने तप, स्वाध्यायादिमां प्रवृत्ति करवी ते

तो धर्मनो वाहा व्यापारमात्र छे. निदान के-मन तथापकारे आगमथी संस्कारी थया पछी सहजतया शुभाशुभमां प्रवृत्ति-निवृत्ति करे छे, अतएव आगमोक्ततत्त्वनी आराधना करवी तेमां खरो धर्म जणाव्यो, आवृं मन वरावर अचलपणे प्रवृत्ति-निवृत्ति करे छे, एट्ले सुंदर चारित्र, तप, स्वाध्याय, ध्यान, क्रियाकूशलता आदि धर्मना प्रधान अंगो पण आत्माने सहजतया उपलब्ध थाय छे. अर्थात् आ मन कदापि आ व्यापारोनी उपेक्षा करतुं नथी वल्के परमश्रद्धापूर्वक सुविशुद्धपणे आचरे छे-कदापि भंग थवा देतुं नथी माटे ज ब्रह्मी ग्रंथकर्ता कहे छे के—“धर्मश्रैतत्संस्थो” धर्म आ भगवंतकथित प्रवचननी सेवामां आवाधपणे रहो छे अने जैनशासनमां आ सर्वज्ञवचन ज परमतत्त्व-उत्कृष्ट धर्म छे. दुँकमां सर्व अनुष्ठानोनुं मुख्य जीवन-प्रधान आधार सर्वज्ञवचन ज जाणावूं.

“ शंकानो उद्धार ”

देहना प्रत्येक अवयवो अने इंद्रियोनो व्यापार-स्थंभ मुख्य प्राणो ज छे. प्राणनो नाश थया पछी सर्व व्यापारोनो लोप आपोआप ज यह जाय छे, एवं सर्व अनुष्ठानोनी आराध्यता सर्वज्ञवचननी आराध्यताथी घने छे, अने सर्वज्ञवचननी विराधना करवायी सर्व अनुष्ठानो निर्जीव तुल्य समजवा, माटे बुध योग्य उपदेशविधिमां सर्वज्ञवचननी प्राधान्यता जणावी. परंतु आ कथनथी अन्य अनुष्ठानो गौण अथवा नकामा नथी समजवाना; वल्के सर्वज्ञवचननी प्रधानता दर्शावायी तेनाथी अभिन्न

(१२१)

एवा आगमोक्त सर्व अनुष्ठानो पण मुख्य ज जणाव्या, एटले नितान्त आदेय अने अनुष्टेय जाणावा, अन्यथा आगमदर्शित अनुष्ठानोनुं अबहुमान के अश्रद्धा करवाथी फरी आगम-वचननुं ज अबहुमान कर्यु जाणावुं, तथा तेम करवाथी अधर्म ज गणाय, आटला कथनयी प्रथमनी सर्व शङ्काओनुं पण निरसन थइ गयुं. उपाध्यायजी कहे छे के—धर्म अहीं व्यापार-रूप ज्ञापकता संवंधयी जाणावो, एटले आगम ए धर्मनुं ज्ञापक छे; ज्यारे धर्म अत्रै ज्ञेय जाणावो. द्वेवटे दीकाकार जणावे छे के—सर्वज्ञोक्तेन शास्त्रेण, विदित्वा योऽन्न तन्वतः । न्यायतः क्रियते धर्मः; स धर्मः स च सिद्धये ॥ १ ॥ “ सर्वज्ञभाषित शास्त्रोगां कहेल तत्त्वानुं भान—बोध करी न्यायरूपे जे कांइ करवामां आवे तेहुं ज नाम अत्रै बैन-सिद्धान्तमां धर्म कहो छे अने आ ज धर्मसिद्धि आपे छे; वाकी कोई पण धर्म मोक्षदायी मान्यो नयी. ” आ वात पर वहु वहु विचारावुं अने तथापकारे दुधजनने उपदेश आपवो.

“ सर्वज्ञवचननी मुख्यता अहीं शा शाटे जणावी ? तेनो हेतु ग्रंथकर्त्ता सपृष्ट करे छे. ”

अस्मिन् हृदयस्थे सति,
हृदयस्थस्तत्त्वतो मुर्नीङ्ग इति ॥
हृदयस्थिते च तस्मिन्नि-
यमात्सर्वार्थसंसिद्धिः ॥ २-१४ ॥

मूलार्थ—सर्वज्ञवचन—सिद्धान्तने हृदयांकित करवाथी एट्ले
चित्तमां स्थापन कर्या पछी परमार्थथी सिद्धान्तद्वारा मुर्नीदं-
सर्वज्ञ भगवाननी ज हृदयमां स्थापना कराय छे, अतः भगवान
हृदयमां वीराजवाथी आत्मा पोतानी सर्व अभीष्ट सिद्धियोने
नियमेन विनाविलंबे प्राप्त करे छे।

“ प्रभुप्राप्तिनो मार्ग ”

स्पष्टीकरण—अभीष्ट अर्थोनी सिद्धि परमात्मानी प्रसन्नता
सिवाय न ज याय ए तो सर्वसाधारण वात छे, परमात्मानी
प्रसन्नता खाली तेनी विविष पूजाओ करवाथी अने मंदिरो
धंधाववाथी ज न मले, किन्तु परमात्माने प्रसन्न करी तेने
पोताना हृदयमंदिरमां स्थापन करवानो मार्ग अलौकिक अने
घणो सरल छे, ते ज वात अत्र आचार्यश्री स्पष्ट करे छे।
जनता परमात्माने खुशी करवानो अने तेने मैलववानो मार्ग
चारंवार पूछे छे, तेना माटे आचार्यश्री कहे छे—“ अस्मिन्
हृदयस्थे ” आ विधि, प्रतिषेध, उत्सर्ग, अपवाद आदि मार्ग-
दर्शक लौकिक—लोकोचर कल्याणमार्गप्रख्यक स्पादाद-
शैलीमय एवं पूर्वोक्त आगमवचन—सिद्धान्तकथित आज्ञाओ
हृदयमां धारवाथी, अर्थात् आत्मा सामान्य के विशेष जे कांइ
प्रदृच्छि—निवृत्ति आचरे ते सर्व सिद्धान्तनी आज्ञा अनुकूलपणे ज
यदि आचरे तो “ तत्त्वतो० ” परमार्थथी आत्मा परमेश्वरं
ज नितान्त बहुमान करे छे; कारण के—परमेश्वर उपर ज्यारे
अनन्य भक्ति—बहुमान होय त्यारे ज भव्य आत्मा तदुक्त प्रत्येक

आज्ञाओंने हृदयांकित करी शके, आज्ञाओं पर वहुमान न होय तो परमेश्वरसुं वहुमान नथी ए पण निश्चित जाण्युँ. एट्ले परमेश्वरने खुशी अथवा प्राप्त करवानो सरल मार्ग आज छे के परमेश्वरनी आज्ञाओंने हृदय साथे एकाकार करवी. सामान्य व्यवहारमां पण ए ज नियम छे के मनुष्यना वहुमान पहेला तेनी आज्ञाओंलुं वहुमान लोको इष्ट गणे छे, ते सिवाय तो प्रत्येक मनुष्य तेवा व्यवहारने छल व्यवहार माने छे. कायदामां पण सरकारना वहुमान पहेला तेना फरमाननो प्रथम आदर करवो पडे छे, अतः अत्र साफ साफ कही दीर्घुं के बचननो आदर करवायी ज मूर्नांद्र-भगवाननो ज अवश्यमेव आदर थाय छे. एट्ले पछी ज क्रियमाण (कराता) प्रत्येक तप, जप, संयम, स्वाध्याय आदि क्रियाओं फलदात् बने छे. जे मनुष्य भगवानसुं वहुमान घणी घणी खुशीयी करे छे, पण तेमनी प्रत्येक न्हानी—मोटी आज्ञाओं स्वीकारता नथी अथवा एकाद आज्ञालुं खून करे छे तो ते मनुष्यनी उत्कृष्ट पण तप, संयम आदि क्रियाओं निष्फल जेवी ज भगवाने कही छे; वल्के संसारब्रमणरूप दंडनो अधिकारी कहो छे ए वात आगल जणावी गया छीए. प्रश्न आराधनाना उपाय मादे प्रकारान्तरे एतत् ग्रंथकर्त्ताए अष्टक प्रकरणमां खुल्लंखुल्ला जणाव्युं छे के—“यस्य चाराधनोपायः सदाज्ञाभ्यास एव हि” पुनः “हृदयस्थिते च तस्मिन् नियमात् सर्वार्थसंसिद्धिः” उपरोक्त कथनथी सिद्ध थह चूक्युं के बचनना वहुमानद्वाराए ज परमेश्वर हृदयमां विराजे—प्रसन्न थाय छे.

“ अभीष्ट सिद्धियो ”

अतएव भगवान् हृदयमां विराजवाथी नियमेन आत्माने सर्वं अर्थो—अभिष्ठोनी सम्यक्तया सिद्धि थाय छे. निदान के—भगवान् मल्या पछी क्यो पदार्थं जगतमां एवो छे के आत्मा सहजतया (सहेलाइथी) न मेळवी शके ? हुङ्कमां तप, जपादिनी सिद्धि, अष्टसिद्धिनी प्राप्ति, शरीर संबंधी दुःखोनो ह्रास, इंद्र चक्रवर्त्यादिनी रिद्धियो अने छेवटे संसारनो नाश यह परमात्मा साथे एकाकारपर्णं हस्तगत थवुं आत्माने कांइ हुःसाध्य नथी. अल्पकालेन अभिलिप्त स्थानोनी प्राप्ति थाव छे, केवल परमेश्वरनी हृदयमां अदूशूत रीते स्थापना थवी जोइये; माटे ज चुथजनने उपदेशके भगवाननी आज्ञा आराधवानो प्रथानतर उपदेश आपवो अने तेनो प्रभाव आ रीते जणाववो.

“ भगवाननी प्रसन्नताथी सर्वं कायोंनी सिद्धि थाय छे, एवुं जणावी भगवानना माहात्म्यनी ग्रंथकर्त्ताए आटली स्तुति शा माटे करी ? शुं भगवान् सर्वं कायों करी आपे छे खरा ? आ शंकालुं समाधान ग्रंथकर्त्ता दृष्टांतनी घटना साथे करे छे.”

चिंतामणिः परोऽसौ

तेनैव भवति समरसापत्तिः ॥
सैवेह योगिमाता,

निर्वाणफलप्रदा ओक्ता ॥ २-१५ ॥

मूलार्थ—आ भगवान्—जिनेश्वरदेव चिंतामणिरत्न

करता पण उत्कृष्ट रत्नरूप हे, कारण के आ वीतरागदेवथी ज आतमाने एकान्त उपशम-शान्तरसनी प्राप्ति थाय हे, अनेमहर्षियोए आ उपशमरसनी प्राप्तिने ज योगियोनी माता तथा निर्वाण-मोक्षफलदायी कही हे.

“ चिंतामणिनी उपमा ”

स्पष्टीकरण—अब्र भगवाननी उत्कृष्टता दर्शावा आचार्यशी सर्वतो सुंदर वृष्टांत आपी तेमनी आराध्यता वरावर सिद्ध करे हे. भगवान सर्वतोश्रेष्ठ होवायी अद्भूत आधर्योत्पादक वृष्टांत साथे ज तेमनी कांडक साम्यता दर्शावी ए पाठको माटे सरलता गणाय. भूतल पर चिंतामणि सर्वोत्तम पदार्थ मनायो हे. आ रत्न जड छतां तेनी सेवा करनारने अभिष्टफलो तेना मालिक (अधिष्ठायक) देवता अर्पण करे हे. एवं आ भगवान पण पोतानां बहुमान, भक्ति, अद्वा, आज्ञापालन करनारने पण आ लोक तथा परलोक संबंधी सर्व इष्ट पदार्थों पूरण करे हे. यद्यपि भगवान वीतराग होवाथी अभक्त, अपूजक, अबद्वालु सामे क्रोध अने आराधक-पूजक सामे प्रेम दर्शावता नयी, तेओ तो सर्व जगतने समहाषिए ज निहाळे हे, अन्यथा भगवंतमां वीतरागपणुं ज न कहेवाय; तथापि चिंतामणिनी भक्तियी आकर्षयेल तेना मालीक देवता सेवकनी कामनाओ पूरे हे. एट्ले आ अभिष्ट सिद्धियो चिंतामणिना आलंबनथी ज प्राप्त यइ परंतु परमार्थ रीते तो चिंतामणि ज अर्पण करे हे एवो व्यवहार जगतमां प्रवत्त्यो हे, तथापकारे जिनप-

(१२६)

णित आगमानुसारे उपादेय-हेयादिमां प्रवृत्ति-निवृत्ति करनार आत्माने अलौकिक लोकलोकोचर सिध्धयो तत्काल सहजतया उपलब्ध थाय छे. एटले—“ व्यवहारमां जेम अमुक माणसनी सलाहथी अमुक माणस कोइ जातनुं कार्य अगर व्यापार करे एवं मार्गमां गमन करे अने तेमां ज्यारे पोते फतेह मेळवे त्यारे ते माणस एमज समजे छे के अमुकनी सलाहथी-वचनथी हुं चाल्यो माटे ते माणसे ज भने सुखी कर्यो.” अत्र माणसना वचनथी जे सिद्धि यह ते माणसे ज सिद्धियो अर्पणी एवुं उच्चारता, मानता अने व्यवहार करता जनताने आपणे सामान्य दृष्टिथी लोझे छाये, तो पछी अर्ही भगवानना वचनाधारे प्रवृत्ति करनार आत्मा इष्ट सिद्धि मेळवे ते भगवाने ज अर्पण करी ए व्यवहार शामाटे अनुचित मानवो ? अर्थात् भगवान ज अर्पण करे छे ए उक्तिमां काँइ अनौचित्यपणुं समजानुं नथी. अतः भगवानने चितामणिनी उपमा वरावर चरितार्थ यड शके छे.

“ अनौपम्य भगवान ”

वधुमां भगवान तो चितामणिनी अपेक्षाए अधिक फल अर्पणकर्ता होवाथी भगवाननी आगल चितामणी पण सामान्य पत्थरवत् समजवो, कारण के चितामणि तो मात्र इहलोक संवंधी ज तुच्छ पदार्थो अर्पण करे छे पण बन्मांतरना सुखो आपवाने समर्थ नथी थतो; ज्यारे भगवान तो लोक-लोकोचरना दिव्य सुखो अर्पण करी अखंड आत्मानंदने

(१२७)

अर्पण करे छे, जेथी आत्माने आ संसारना भयानक स्वप्नाने जोवानो समय फरीने आवतो नथी.

“ प्रसुधी समरस लाभ ”

आ ज वातनो उद्देश ग्रंथकर्ता बणावे छे के—“ तेनैव भवति समरसापत्तिः ” भगवद् वचनाधारे प्रवृत्ति कर-बालुं, भगवाननुं बहुमान के पूजा करवालुं खरं फल ए छे के आत्मा भगवंत जेवो उपशमभाव प्राप्त करे—एट्ले कवायोनी क्षीणता थइ जाय. हेतु ए के-कथायोनी क्षीणता विना साक्षात् भगवद् भासि थती नथी अने आत्मानो वास्तव धर्म उपशमभाव-स्वस्वमावमां रमणता करवानो ज छे. आ स्वरूप खरी रीते भगवानना वचनोथी आत्माने उपलब्ध थाय छे, माटे अहीं बणाव्युं के भगवान पासेथी ज आ समरस-उपशमरसनी प्राप्ति याय छे; कारण के प्रसुक्षित वचनरूपी अमृत एवं छे के आत्मा तथाप्रकारे वर्ते तो जरुर अपृतभावमय ज थइ जाय.

“ समापत्तिनुं स्वरूप ”

अथवा दीकाकार “ तेनैव भवति समरसापत्तिः ” ए चरणनो अन्यार्थ निकाले छे. “ ते भगवानथी ज आत्मा समरसनी प्राप्ति करे छे.” अत्र ‘रस’ शब्द भाव अथनो चाचक छे एट्ले सपभावनो लाभ पामे छे. जिनभगवंतोप स्ववचनथी जेम जगतना कल्याण माटे प्रवृत्ति-निवृत्तिना द्वारो खोली दर्शाव्या छे तेम परमेश्वरालुं पण यथार्थ स्वरूप विना-

संकोचे प्रकाशनु छे, जेठी आगमना अभ्यासी अने आगमा-
तुसार प्रवृत्तिकारको पोतानु कल्पाणि निरावधपणे सार्थी शुके,
अयांत्र आगमोक्त मार्गमां चाली जे साधनोद्घारा परमेश्वरनी
ग्राहि बणावी ह्ये ते साधनो उपलब्ध करी, परमेश्वर स्वत्प
हृदयमां वरावर स्थापन करी सर्व द्वाचियो—विकल्पो वंथ करी
केवल परमेश्वरना ज व्यान—विचारमां तन्मय बने ह्ये, एड्ले
आ समये ते विशिष्टत्वा अने परमेश्वरनो बाणे असेदभाव न
ययो होय तेवो आ आगमोक्तकरी आन्याने अनुभव थाय ह्ये.
आनु नाम आचार्यांशी ‘समापत्ति’ व्यान कहू ह्ये.

“ व्याता, ध्येय अने व्यान ”

आ विषयने समजावदा टीकाकार योगशास्त्रनो वाचार आपे
ह्ये. ‘क्षीणवृत्तेरभिजात्यस्येव मणेग्राह्यग्रहीतृप्रस्तु
तत् स्यतद्भुगता समापत्ति:’ व्याता, ध्येय अने व्यान आ
विकोटीनी व्यारे एकवता थाय न्यारे ने ‘समापत्ति’—मपयावनी
ग्राहि करी ह्ये. जेप सुंदर अने स्वच्छ जात्य स्फाइकपणि
पासे जेवा प्रकाशनु रंगान कपड्हु घरवामां आवे त्यापकारनी
छाया ते मणिमां वरावर प्रनिविभिन थाय ह्ये, एड्ले कपडामां
स्थित वर्णनो स्वीकार करी मणि पण तेवा ज रंगनो देखाय
ह्ये. अही याणि. रंग अने कपड्हु ऐ त्रयोनो समागम वर्ना
एक—र्वाजा तन्मय तदाकार प्रनिभासमान थाय ह्ये. करण
के कपडामां स्थित वर्णने अद्दर—दक्षिणी ताकाढ़ परिमां
ह्ये अने वर्णमां पकडावानी गत्ति ह्ये. एवं आ वज्रे वस्तु एक

स्थानमां विराजमान छे एम दृष्टाने (जोनारने) प्रत्यक्ष मालुप याय
छे. एट्ले ग्राहकर्ण, ग्रहीत्वमणि अने वर्णने स्वीकारी तन्मय
यवानो मणिनो स्वभाव ते ग्रहण—आ त्रणे भाववर्ण अने मणिमां
साक्षात् अनुभवाता होवाथी स्वच्छ अने निर्दोष सुंदर मणि
लाल, पीलुं, आस्मानी, कृष्ण वर्णवालुं आपणे सौ साधारण
दृष्टिथी जोइ शकीए छीए. परमार्थ के—मणि कपडाना संवंध-
मात्रार्थी तथापकारना वर्णप्रय यह जाय छे ए ज रीते अर्हो
आत्मा अने परमेश्वरमां आ दृष्टांतनी वरावर साम्यता—घटना
समजब्बी. आत्मा ज्यारे आगमोक्त परमेश्वरनुं स्वरूप समझी—
विचारी तदीय ध्यानमां तन्मय वनी परमात्मा साथे एकाकार
बने छैल्यारे आत्मा पण सर्वज्ञरूप—परमात्मरूपपणानो परमार्थथी
अनुभव करे छे. एट्ले ध्येय परमात्मा, ध्याता—विचारकर्ता
आत्मा अने ध्यान ते परमात्माना स्वरूपनो विचार—आ त्रणेनो
समागम ते ‘ समापत्ति.’ परमात्मा सर्वने ध्येयस्वरूप प्राप्तव्य
होवाथी परमात्मा ध्येय अने तेमना स्वरूपनो—गुणोनो अभ्यास,
परिशीलन, विचार ते ध्यान; तथा विवेकी आत्मा आ स्वरूपनो
विचार—अभ्यासकर्ता होवाथी ते ध्याता, आ त्रणेनो ज्यारे
समागम—ऐक्यता याय त्यारे विवेकी आत्मा सर्वज्ञना ध्यानरूप
बाह्य आलंबनद्वाराए सर्वज्ञरूपनो अनुभव करे छे एट्ले ते
आत्मा पण सर्वज्ञरूप कहेवाय; कारण के—आ समये ते आत्मा
‘ मयि तद्रूपं स एवाहं’ ‘मारामां भगवाननुं रूप छे, अने
हुं भगवद्रूप छुं’ ए ज भाव विज्ञानद्वाराए अनुभवे छे. माटे

(३३०)

अर्ही ग्रंथकर्त्ता ए उल्लेख कर्यों के—आ पूर्वोक्त ‘समापत्ति’ रूप भावावस्था आत्माने परमात्मारूप वाद्या आलंबनद्वारा ज उपलब्ध थाय छेः सिवाय ते अवस्था अप्राप्य ज जाणवी।

“योग तथा योगि अने योगिमाता”

आट्ठो निर्देश करी फरी ग्रंथकर्त्ता आ ‘समापत्ति’ नी प्राप्तव्यता, आराध्यतानी अलौकिकता सिद्ध करवा उत्तराधीशी प्रकांड प्रहृष्टणा करे छे। ‘सैवेह योगिमाता’ दर्शित ‘समापत्ति’ ज अर्ही—जैनदर्शनमां अथवा सर्वदर्शनमां योगि-योनी माता कही छे। ‘मोक्षेण योजनात् योगः’ जेथी आत्मानो मोक्ष साथे वरावर संबंध थाय ते योग। आ योगने जैओ पाम्या तेओ योगि कहेवाय। योग तथा योगि शब्दनो अत्र आ अर्थ होवाथी सम्यक्त्व, ज्ञान, संयम, कषायविजय, इंद्रियनिग्रह, शान्ति, शौच, ब्रह्मचर्य, निर्ममत्व—आ सर्व योग-मार्गों छे अने ते मार्गमां चालनार सर्व योगि जाणावा। खाली बाह्यथी जटा वधारी, कौपीन, वल्कल के व्याघ्र के मृगचर्म धारी, भस्म चोली वेश करवो ते कांइ योगिपणुं न कहेवाय। जेमां मोक्षनो संबंध आत्मा साथे न थाय तेलुं नाम योग नथी कहो। आ योगियोने उपरोक्त योग धारवानुं मुख्य फल परमात्म-प्राप्ति सिवाय अन्य अभीष्ट नथी कहुं, अर्थात् आ सर्व योगियो पण योगमार्गना पंथमां विचरी परमात्माना ध्यान-रूप ‘समापत्ति’ अवस्थानो लाभ करी ते द्वाराए अनुक्रमे परमात्मा अने पोते बडे तुल्यस्थान स्थित बने छे। एट्टो

परमार्थ ए के—योगियो 'समापत्ति' ध्याननी सिद्धि माटे जा सम्यक्ल आदि योगो धारे छे. ज्यां सुधी आ ध्यान-सिद्धि न याय त्यां सुधी योगियोनो योगपथल अर्थहीन जेवो मान्यो छे, माटे योगियोनी सर्व कार्यसिद्धि आ 'समापत्ति' ध्यानथी ज याय हो. अतएव आ 'समापत्ति' ने नितान्त योगियोनी माता अर्ही जणावी.

"निर्वाणफलदृश्यन् "

ए ज वात अन्यत्र कही हो—“ सम्यक्त्वज्ञानचारित्र-योगः सद्योग उच्यते । एतद्योगाद्वि योगी स्यात् परमब्रह्मसाधकः ” ॥ १ ॥ अन्तर्मां ग्रंथकर्ता आ 'समापत्ति' ने 'निर्वाणफलप्रदा प्रोत्ता' निर्वाण—मोक्षफल-दात्री महर्षियोए कही हो एवो निर्देश करे छे. निष्कर्ष ए के—आ 'समापत्ति' प्राप्त थया पछी मोक्षफल अवश्यमेव आत्माने सुलभ्य थाय हो. “ हलिका भ्रमरीं ध्यायन् भ्रमारित्य-सुपतिष्ठते ” 'इयल भ्रमरीनुं ध्यान करवाथी छेवटे भ्रमरी-पणाने पामे हो' तथाप्रकारे योगियो पण परमात्मानुं 'समापत्ति' रूप ध्यान पामी परमात्मावस्थाने—मोक्षभावने पामे हो, आम अनुभववेदी सर्वदर्शीं महापुरुषो अने पूर्ववर आचार्यों कहे हो. दुंकमां आगमानुभारी प्रवर्तक स्वहृदयमां पूर्वोक्त न्याये आगमद्वाराए परमात्माने स्थापन करी ते परमात्मरूप आलं-वनथी 'समापत्ति' रूप खरुं ध्यान पामी छेवटे मोक्षस्थानमां चिराजे हो. अतएव आगमवचननी आराधना ते ज वास्तव-धर्म,

(१३२)

अर्हीं 'बुध' कर्ग माटे दशाव्यो. अतः उपदेशके पण आ स्वरूप बराबर ध्यानमां राखी तथाप्रकारे बुधजनने उपदेश करवो.

"आ अधिकारना प्रारंभमां ग्रंथकर्त्ताए बाल, मध्यम, बुध माटे उपदेशविधिनो प्रकार तत्त्वज्ञोए जे प्रमाणे कहो छे तथाप्रकारे जणावचानुं कहुं हतुं" तो अर्हीं सुधी उपर दर्शाव्या प्रमाणे सिद्धान्तानुसारी उपदेशविधिना प्रकारो कहा, एटले आचार्यश्रीए 'यथोदेशः तथा निर्देशः' ए महर्षियोनुं कथन चरितार्थ कर्युं. हवे आ 'विधि' नो उपसंहार करी तथाप्रकारे उपदेशदाननुं अपूर्व फल दर्शावी उपदेशकोने ए दिक्षामां ज गमन करवानी सूचना आपी आ अधिकारने पूर्ण करे छे. "

इति यः कथयति धर्म,
विज्ञायौचित्ययोगमनधमतिः ॥
जनयति स एनमतुल्यं,
ओतृषु निर्वाणफलदमलम् ॥२-१६॥

सूलार्थः—अनधमति—शुद्धमतिमान् एवा जे धर्मगुरु बाल, मध्यम आदिनी योग्यता बराबर परीक्षी योग्यता प्रमाणे धर्मोपदेश करे छे, तो तेओ ओताना हृदयमां मोक्षफलने अर्पण करनार एवा अनन्य—असाधारण धर्मभावनी श्रद्धा स्थापन—उत्थान करे छे.

“ उपसंहार ”

स्पष्टीकरणः—उपदेशविविना प्रकारो दर्शन्या, अत्र तो तेजुं फल प्रकाशयुं हे. प्रथम तो उपदेश आपवानो अधिकार आगल दर्शन्या प्रमाणे “ धर्ममो जिण पण्णन्तो पकप्प-जयिणा कहेयच्चो ” जिनकथित धर्म केवल प्रकल्पयतिष (गीतार्थमुनिए) ज प्रस्तुतो, अर्थात्—स्यागी, मोक्षमार्गस्थित अने गुरुखुलवासमां रही योगादि क्रिया आराधी जघन्यथी पण आचारांगादि पांच सूत्रोमां निषुण एवा गीतार्थमुनिए ज धर्मव्याख्या करती; सिवाय अन्यने तो बोलवानो पण अधिकार नथी तो पछी धर्मदेशनानी वात ज क्यां रही ? आ मुनि पण ‘ अनधमतिः ’ पापहुद्धि रहित एटले केवल पवित्राशयवान् होय ते ज. हेतु ए के—स्वार्थी के आग्रही कदापि शुद्ध उपदेश आपी शक्ता नथी. ते पण वाळ, मध्यम आदि वर्गनी प्रथम चेष्टा, क्रिया, अभिरुचि, बुद्धि, विचार आदि साधनद्वाराराए योग्यतानो बराबर ख्याल करी, तपास कर्या पछी ते लोकोने धर्मनो बोध याय, अद्भु अने अभिरुचीमां बधारो याय, उत्तरो-त्तर उत्तम उत्तम अवश्याओ श्राप करे तथाप्रकारे पूर्वोक्त उपदेशके तेऽनोना अधिकार प्रमाणे उपदेश आपवो. उपदेश आपती वत्ते एटलुं तो सास ध्यान राखवुं के उपदेशमां भगवंत तथा पूर्वाचायोना व्हाने स्वपतिकल्पना के आग्रहनुं मिश्रण करी श्रोताओने उपदेश न अपाय; कारण के एथी उपदेशक अनंतसंसारनी बृद्धि करी श्रोताने पण कल्पायना बदलामां अकल्पाय ग्राति घसडी जाय हे. एवं आशाभाव तथा

(१३४)

मान-प्रतिष्ठानो लोभ छोड़ी परिश्रम के शरीरखेदनो विचार कर्या विना मात्र श्रोतानुं कल्याण क्या प्रकारे थाय तेवा पवित्र विचारोपूर्वक ज उपदेश आपवो.

“ उपदेशनुं खरुं फल ”

आ रीतें उत्तम उपदेश आपवायी वक्ता आचार्य स्वनुं (पोतानुं) कल्याण साधवापूर्वक श्रोताने उद्दाम धर्मज पमाहे हे. आचार्यश्री कहे हे के-‘ जनयति स एनमतुलं श्रोतृषु निर्वाणफलदमखम् ’ आ रीते धर्मोपदेश आपवायी उपदेशक सारी रीते श्रोताओना चित्तमां असाधारण एवो धर्मप्रेम उत्पन्न करे हे, जेथी श्रोताने एवो वृद्ध धर्मप्रेम जागृत थाय हे के जे परिणामे अवश्यमेव निर्वाण-मोक्षरूप फल अर्पण करवा समर्थ बने हे. निदान के-श्रोता छेवटे भोक्ता पामी स्वात्माने कुत्कुत्य करवा समर्थ थाय तेवो उत्तरोत्तर शुद्धतर धर्म पाने हे. हुंकमां-आचार्यना उपदेशमां एवो तो अद्वैत चमत्कार तथा आकर्षण होय के श्रोताने कंटाळो के अभाव कदापि उत्पन्न न थाय, किंतु योरलीना नादयी आकर्षयेला नागनी माफक खेंचाइ खेंचाइने उपस्थित यह अधिकाधिक अवण करवामां दत्तचित्त बने ने पछी परिणामे तथाप्रकारे उपदेशना बलयी उत्तम पंथानुयायी थाय. आयी श्रोता अने वक्ता उभयनुं परिणामे कल्याण ज थाय हे. बधुमां उमास्वाती महाराज कहे हे के-“ वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति ” आबो उपदेश आपनार आचार्य छेवटे कांइ नहीं तो पोताना अनंतपापकमोनी निर्जरा-क्षय निःसंदेहपणे करे हे.

—१०००२०—

(३) धर्मलक्षणाषोडशकम् ।

“ शंका अने संबंध ”

गत अधिकारना प्रारंभमां ‘बाल’ आदि वर्गने सर्वदीनी
देशना आपवानुं जग्याव्युं हतुं अने अंतमां “ तथापकारे
उपदेशं आपवाथी उपदेशक श्रोताने असाधारण धर्मप्रेम
पेदा करे छे. ” एटले वचे स्थलमां धर्म ए शब्द आवे छे.
तो धर्म कोने कहेवो ? तथा धर्मनुं लक्षण शुं ? ए आशंकानो
उच्चर जग्याववा द्वाराए पूर्वाधिकार साथे सुसंबंधतया स्थित
आचार्यश्री धर्मस्वरूपदर्शक त्रृतीयाधिकारनो आरंभ करे
छे. उपदेशवलयी आत्माने जे धर्म प्राप्त याय अथवा धर्म
उपजावाय ते धर्म कोने कहेवो ? ए शंसय अशंसयपणे
उत्पन्न याय. अतः वीजा अधिकार पछी उपरोक्त शंकाने
दूर करवाना संबंधवाळो आ त्रीजो अधिकार दर्शावे छे. एटले
आ अधिकार संबंधशून्य छे ए शंकाने अहीं अवकाश
मळ्ठो नयी.

अस्य स्वलक्षणमिदं

धर्मस्य बुधेः सदैव विजेयं ।

सर्वागमपुरिशुद्धं

यदादिमध्यांतकल्याणम् ॥ ३-१ ॥

(१३६)

मूलार्थः—धर्मनी परीक्षामां निषुण एवा बुधजनोए प्रथम धर्मनुं लक्षणं हमेशा आ प्रमाणे जाणावुं के जे सर्व शास्त्रोवडे अतिशुद्ध होय अने फरी आदि, प्रध्य तथा अंतमां कल्याणा फलने ज अर्पण करे.

“ बुधने सूचना ”

स्पष्टीकरण—पदार्थनुं स्वरूप विचारवा पूर्वे प्रथम विद्वानो पदार्थना लक्षणनो विचार करे छे, कारण के लक्षणे करीने अव्यवस्थित पदार्थ स्वरूपमां पण अव्यवस्थित ज होय छे, एवं लक्षणद्वारा पदार्थनुं सामान्यतः स्वरूप पण समजवामां आवी जवाथी पथात् विशेष स्वरूप समजवाने सरलता पण थाय छे. अतएव ग्रंथमां उद्दिश्य पदार्थोनुं स्वरूप वर्णन करवा पूर्वे समर्थ विद्वानो पदार्थनुं लक्षण पहेलाथी ज प्रकांडतया कथन करे छे. आ नियमनो वाध न थाय ते माटे ग्रंथकर्ता आ प्रकरणनी आदिमां ज ग्रंथपरीक्षक विद्वानो प्रति स्पष्ट विद्वत् प्रणालिकानुं दर्शन करावे छे के—अत्र धर्मस्वरूप—निरूपणमां बुधजनोए हमेशा धर्मनुं लक्षण आगलनी आर्यामां जणावशे तथाप्रकारे जाणावुं, धर्मपरीक्षकोए तथा धर्महस्तु (धर्म इच्छनारा) महालुभावोए धर्म ग्रहण करवा पूर्वे अहीं जे धर्मनुं लक्षण कहुं छे तथाप्रकारनुं लक्षण स्वीकृत, स्वीकार्यमाण धर्ममां अविरोधपणे सुघटित छे के नहीं। एवो विचार प्राङ्गहृदययी अवश्य करवो, जेथी मुग्धहृदयने पदार्थ स्वीकार्या पछी पथात्ताप के स्वेदनो प्रसंग न आवे; कारण के धणी वार धर्मभद्राल्ल विद्वानोनुं पण मन आतुरतामां

अथवा विचारायाव के अन्य कोइ विचित्र कारणोंथी वर्मायाव-
स्पलमां धर्मनी पान्यता करवाने ललचाय-मुण्ड थाय छे.

“ लक्षण’नुं लक्षण ”

अत्रे लक्षण ते ज जाणबुं के जेनाथी उद्दिष्ट पदार्थी
इतर पदार्थनो निषेध थाय अने अभीष्ट पदार्थनुं बराबर
पूर्णांशे ज्ञान थाय. जेबुं के—‘ उष्णस्पर्शवर्त्तेजः । ’ ‘ उष्ण
एवो स्पर्श जेमां होय ते अग्निं । अत्रे अग्निलुं लक्षण “ उष्ण-
स्पर्शपर्णुं ” कहुं. आथी अग्निं सिवाय जेटला पदार्थों तपा-
सीए ते दरेकमां भिन्न भिन्न स्पर्शों कोइमां थंडो, कोइमां
काढीण्ठता, कोइमां कोमलता विगेरे छे खरा पण उष्ण एवो
स्पर्श तो अग्निमां ज छे; अन्य पदार्थमां नथी देखातो. गरम
जल, गरम लोहुं विगेरेमां जे जग्याय छे ते पण अग्निनो ज
गुण छे, कारण के ते पदार्थों तो जाते थंडा, मुदु अने कठीण
छे. सूर्यनो ताप अने विजलीने पण नैयायिको अग्नितत्त्व ज माने
छे, एट्ले आ लक्षणथी अन्य पदार्थनो निषेध यवाथी अग्निपदार्थनुं
स्पष्ट स्वरूप समजाय छे. फरी आ लक्षणं अतिव्याप्ति, अन्याप्ति,

१—“ तदेव हि लक्षणं यदव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभवरूपद्वैष-
शून्यम् ॥ २—“ अतिव्याप्तिनाम अलक्ष्ये लक्षणसत्त्वम् ॥ ” निषिद्ध
पदार्थमां लक्षणनी प्रवृत्ति ते अतिव्याप्ति, जेमके ‘गो’ नुं लक्षण
‘महिषि’ मां जागु थाय ते. ३—“ अव्याप्तिनाम लक्ष्यैकदेशावृ-
त्तित्वम् ॥ ” लक्षणा एक ज देशमां लक्षण जागु थाय ते अव्याप्ति,
यथा ‘गो’ नुं लक्षण अमुक अ ‘गो’ मां जागु थाय ते.

(१३८)

असंभव दोषत्रयशून्य होय तो ज समिचीन कहुँ छे.

“स्वलक्षण”

अत्र धर्मनुं स्वलक्षण जगाववा पूर्वे ग्रंथकर्ता कहे छे के-
 इच्छित धर्मनुं स्वलक्षण केवल सामान्य न जाणलुं, किन्तु आ-
 लक्षण “सर्वागमपरिशुद्धं” छ दर्शनना जे जे शास्त्रो ते ते
 शास्त्रोनी कसोटीद्वारा सर्वतोपकारे शुद्ध-निर्दोष होइनुं जोइए.
 अर्थात् धर्मनुं स्वलक्षण एबुं दर्शावबुं-दर्शाव्युं छे के छए दर्श-
 नोना विद्वानो पोताना शास्त्रस्त्री हथोडावडे घणुये कूटे तो पण
 जे खंडित न थाय, परंतु सत्य सुवर्णनी माफक निर्दोष अने
 स्वीकार्यरूपे जाहेर थाय. एवं खाली निर्दोष अने स्वीकार्य
 होय आटलुं ज नहीं किन्तु आचार्यश्री वघु भार दृढ़े
 कहे छे के—“यदादिमध्यांतकल्याणम्” जे धर्मनुं
 स्वलक्षण आदिमां, मध्यमां अने ग्रंतमां कणस्त्रूप कल्याण-
 फलप्रदात् होय. एट्ले नितान्त लक्षण ज एबुं छे के-
 ज्यारे तथाप्रकारना धर्मनो आदर करे ते समये, आदर
 कर्या पछी, एवं धर्मना ग्रंतमां ज्यां देखो त्यां भोदक के
 साकरनी माफक सुंदर फलने ज अर्पण करे छे अर्थात् तेनो
 कोइ पण अंश एवो नथी के ज्यां कल्याण ज न होय. दुङ्कमां

४—“असंभवो नाम लक्ष्यमात्रे कुत्रापि लक्षणासत्त्वम् ”
 लक्ष्यमां लक्षण सर्वथा जाणु. न थाय ते असंभव, यथा ‘गो’ तुं
 लक्षण ‘गो’ भां जाणु ज न थाय ते.

(१३६)

सर्व शास्त्रोने मान्य अने सर्वथा कल्याणफलमदाता एवा
आ धर्मना स्वलक्षणानी परीक्षा विद्वानोए ग्रथम तपासवी.

आट्क्षो उद्देश कर्या पछी धर्मनुं स्वलक्षण कयुं क्षे १ ए
प्रश्नना उच्चरमां आचार्यश्री हवे बीजी आर्यामां धर्मनुं स्वलक्षण
प्रकाशे क्षे.

धर्मश्चिन्तप्रभवो यतः

क्रियाधिकरणाश्रयं कार्यं ॥

मलाविगमेनैतत्कल्पु

पुष्ट्यादिमदेष विज्ञेयः ॥ ३-२ ॥

सूलार्थः—चित्त-मनथी जे उत्पन्न थाय ते धर्म कारण
के विधि, प्रतिषेधरूप क्रिया मनथी ज प्रवतें क्षे अने आ क्रिया
ते तो कार्यरूप क्षे, तथा क्रियारूपी कार्यनुं अधिकरण-स्थान
शरीर ज क्षे. एवं क्रियाभेरक मन शरीराश्रयी क्षे, एट्ले पुष्टि
अने शुद्धिए करी अलंकृत एवुं जे मन तैनी जे प्रवृत्ति ते ज
निश्चयेन धर्म जाणावो.

“ धर्मलक्षण ” (यशोभद्रसूरिजी)

स्पृष्टीकरणः—आ आर्यानी व्याख्या ‘ यशोभद्र-
सूरिजी ’ थी उपाध्यायजी सर्वथा मिन्न रीते करे क्षे.
एट्ले उपाध्यायजी यशोभद्रसूरिजीनी दीकाने हस्त-
स्पर्श सरखो पण करता नयी एट्लुं ज नहीं किन्तु जे

बावतमां यशोभद्रसूरिजी दोष जाहेर करे छे ते बावतने पोते पहेला स्वीकारे छे, माटे अहीं उभय टीकाकारोनो आशय समजवा वांचको पासे उभयथा नीकलतुं स्पष्टीकरण अमे पण अलग अलग धर्यु छे. एके टीकाकारना आवायनी लघुता करवा अमे साहस नथी करी शकता. परमार्थ तो विद्वानोप ज विचारवो.

अंथकर्ता धर्मलुं लक्षण दर्शावे छे. लक्षणलुं लक्षण गत आर्याना स्पष्टीकरणमां तपासी गया तथाप्रकारे अहीं पण घटना पाठकोए करी लेवी. “चित्तप्रभवो धर्मः” “चित्त-मननी उत्पत्ति ते ज धर्म”. चारित्र-वर्तनमात्र, क्रियारूप प्रवृत्तिमात्र मनपूर्वक ज थाय छे, एट्ले हृदयना संकल्पो ते ज अहीं धर्म जाणवो, कारण के स्लोकांतर्गत ‘चित्तप्रभवो’ ए वाक्यनो विशेषणसमास अत्र स्वीकारवो. “चित्तं स चासौ प्रभवश्च चित्तप्रभवः” “चित्त-मन तेनो ज प्रभव-जन्म-आविर्भाव ते ज चित्तप्रभव” एट्ले आलुं नाम धर्म. अत्रस्य यत् शब्दाथी चित्तलुं अहण करवुं. परमार्थ ए के-कोइपण विधेय या निषिद्ध क्रियामां आत्मानी गति थाय छे ते मननी प्रेरणा विना तो नहीं ज, एट्ले मननी इच्छाद्वाराए क्रियाकांड वने छे; माटे चित्त ए क्रियोत्पादक होवाथी कारण जाणवुं अने क्रिया ए निष्पद्यमान होवाथी तेने कार्य कहुं छे. हवे जे, क्रियाओने जन्म आपनार मन छे ते कांह निराधारपणे स्वतंत्र रही शक्तुं नयी, तेमज क्रियाओ पण मनना

आधारे उपजती नथी; किन्तु—“ अधिकरणाश्रयं कार्यं ”^१
 अत्र अधिकरण शब्द सामान्येन आधारवाचक हो तो पण
 प्रकरणवशात् यन्तु जे अधिकरण—आश्रयस्यान शरीर ते ज
 लेखुं. हेतु ए के—शरीरना आधारे ज मननी अवस्थिति होय हो
 अने क्रियाओ सर्व शरीरद्वारा ए ज बने हो. तत्त्व एटलो के—
 मनथी इच्छाओ थाय, पश्चात् शरीरद्वारा आत्मा चेष्टाओ—नवा
 नवा व्यापारो करे हो. अतः जे चित्त इच्छाओ करे हो ते ज
 चित्तसुं नाम अहीं धर्म जाणवो. एटले के—शरीरद्वारा जे जे
 कार्यो थाय हो ते धर्म न समज्वो, किन्तु ते तो चित्तरूप
 धर्मनां व्यापारकार्यो जाणवा. आ परथी जेओ शरीरनी
 यथोष्ट अमुक जातनी क्रियाप्रवृत्तिने धर्मपणे निर्देश करे हो
 तेओ भ्रान्त हो—धर्मलक्षणथी अनभिज्ञ हो एटलो निर्णय
 समज्वो. दुँकमां टीकाकारना पतथी दान, पूजा, सामायिक
 आदि ए व्युत्ये धर्मनो व्यापार हो. धर्म तो आंतरसुं जे तथा-
 प्रकारसुं मन ते जाणवो. छतां आ क्रियाओने धर्मतया प्राह्णुरुषो
 व्यवहार करे हो ते तो धर्मनो क्रियामां कारणानो उपचार करीने ज,
 एटले कारण कार्यने जहर पेदा करे. जे कारण कार्यने पेदा
 न करे ते कारण ज न कहेवाय. आथी जेओ क्रियाप्रवृत्ति विना
 अथवा क्रिया अंध हो एम कही क्रिया नकामी जणावी स्वा-
 त्माने मननी पवित्रता मात्रथी धर्मी माने हो तेओ पण नितान्त
 भ्रान्त हो एम समजबुं, कारण अहीं तो टीकाकार, क्रियो-
 त्वादक एबुं जे मन तेने ज धर्म जणावे हो. प्रथम कहा प्रमाणे
 अहीं विशेषणसमास स्वीकारवांशी ‘चित्त’ ए विशेषपदार्थ

अने ' धर्म ' ए विशेषण पदार्थपणे स्थिर याय छे. एटले अर्ही जे जे विशेषणो आप्या छे ते सर्वने 'चित्त' नी साथे घटाववा अर्थात् आ विशेषणो चित्तने सम्यकूतया लागु थइ शके क्षे. यदि आ प्रयाणे समास न स्वीकारता "चित्तात्प्रभवतीति चित्तप्रभवः" "चित्तथी-मनथी जे पेदा याय ते चित्तप्रभव" धर्म जाणवो. ए रीते कर्मधारय समास स्वीकारीए तो 'धर्म' विशेष्य अने चित्त विशेषण याय. आम यवाथी श्लोकोक्त सर्व विशेषणो 'धर्म' ने ज लागु करवा जोइए. फरी यत शब्दथी पण 'धर्म' पदानुं ग्रहण करवुं घटे. आ स्थितिमां श्लोकनो भाव दुर्गम्य थइ जाय छे एटले एके विशेषण 'धर्म' पदनी साथे बंधवेसातुं नथी-वघुमां क्लिष्टता प्राप्त याय क्षे. आ दोषो उपजता होवाथी प्रारंभोक्त समास स्वीकारी व्याख्या समजाववी अनुकूल यइ शके क्षे.

" लक्षणमां वधारो "

उपर कथित लक्षणवाळो धर्म स्वीकारवाथी चोरी, शूठ, व्यभिचार, हिंसा आदि क्रियाने पण धर्मतया व्यवहार करवो जोइए, कारण के ते ते व्यवहारो पण मनथी ज पेदा याय क्षे; मन विना एक पण विशिष्ट शुभाशुभ कार्य यतुं नयी. अतः ए आपत्तिने दूर करवा ग्रंथकर्त्ता उपरोक्त लक्षणमां वधारो करवाणु जणावे क्षे. " मलविगमेनैतत्खलु मुष्ठ्यादि-मद्देश विज्ञेयः" अत्र 'खलु' शब्द निश्चयार्थवाचक जाणवो.

एट्टले 'निश्चयेन राग, द्वेष, मोह आदि रहित मळो अने
पुष्टि तथा शुद्धिमय पर्युं जे चित्त ते ज धर्म विद्वानोए जाणवो'
जे चित्तमांथी राग, द्वेष, मोहना भावो-विकारो वगरनी
इच्छाओ जन्मे अने ते पण आगल जेतुं स्वरूप कहेवाशे तेवा
प्रकारनी पुष्टि तथा शुद्धिमय होय ते ज 'चित्त' ने अहीं
धर्म मान्यो छे. अतएव धर्मतुं अन्याहत लक्षण आ प्रमाणे
छेवेटे सिद्ध यतुं "मलाविगमेन पुष्ट्यादिवत् चित्त-
प्रभवो धर्मः" " पळ रहित अने पुष्ट्यादिमय एवा चित्तनो
जे आविर्भाव ते धर्म." आयी चोरी विगरे विकारवालुं मन
मलरहित न होवाथी तेने धर्म न ज कहेवाय. निदान के-पवित्र
चित्तनी वासनाओ, आध्यवसायो अने तज्जन्य पवित्र क्रिया-
ओने ज वास्तव धर्म कही शकाय.

" धर्मलक्षण " (उपाध्यायजी)

" धर्मचित्तप्रभवः " 'चित्तयी उत्पन्न थाय ते धर्म '
चित्त-मनथी जे जे कायों प्रवर्ते तेतुं नाम अत्र धर्म जाणवो.
एट्टले के—"चित्तात्प्रभवतीति चित्तप्रभवः" ए प्रमाणे
कर्मधार्य सप्तास स्वीकारवायी उपरोक्त अर्थ कथितपदनो
प्राप्त थाय छे. परमार्थ ए के-खाली आशय वगरनी संमृच्छम
जेवी क्रिया ते अहीं धर्मतया अभीष्ट नथी गर्खी, खाली शून्य
क्रिया ते तो अहीं एक व्यवहार तुल्य स्वीकारी छे. आ परयी
अहीं आटलुं जाणवुं कै मनना संकल्पपूर्वक आत्मानो बे
अष्टचि-निवृत्तिरूप व्यापार तेतुं नाम धर्म.

केवल संकल्पमात्रने उपाध्यायजी धर्मतया स्वीकारता नथी. आ व्याख्यामां ‘यत्’ शब्दनो ‘धर्म’ साथे संबंध करी उपाध्यायजी कहे छे के ‘यतः धर्मात्’ जे माटे धर्मथी, विहित क्रियानुं आचरण अने निषिद्ध क्रियानो त्याग तदूप क्रियानी प्राप्ति थाय छे. फरी मूलस्थ अधिकरण शब्द अधिकारवाचक छे. एट्ले क्रियारूप जे अधिकार तेना निपित्तथी—आश्रयथी भवि आत्माने संसारनी उदासीनता, विषयथी विमुखभावरूप कायों निष्पत्ति थाय छे. मनथी धर्म, धर्मथी क्रिया, तथा क्रियाना आधारथी भवनिवेदरूपकायोंनो जन्म थाय छे; माटे अत्र ‘चित्तप्रभवो धर्मः’ ए रीते धर्मानुं लघण जाणावुं.

“ विशेष कथन ”

आ व्याख्यामां “ यत्, अधिकरण, क्रिया, कार्य ” आ शब्दोना संबंध माटे, तेना अर्थ माटे अन्यान्य कल्पनाओ के अधिक विचारो करवानी मुश्केलीओ नहती नथी. अर्हि मार्गानुसारीनी जे प्रवृत्ति ते धर्म जाणावो. आ लक्षणवाळो धर्म मार्गानुसारीमां संभवे, परंतु अमव्य के दुर्भव्यमां आ धर्म न होय कारण के त्यां तो मनना धर्मीय संकल्पपूर्वक विहिता-चरण अने निषिद्ध त्यागरूप क्रियानो संभव ज न होय.

“ लक्षणवृद्धि ”

आ ‘ धर्म ’ पण रागादि भलविकारो रहित अने पुष्टि शुद्धिवाळो ज बाणावो. एट्ले रागादि विकारवान्

चित्तना अभिप्रायपूर्वक जे क्रियाव्यवहार ते आही धर्मपणे स्वीकार्य नयी. निदान के-अत्र 'धर्म' पद विशेष्य होवाची 'मलविगमेन पुष्ट्यादिमत्' ए शब्दो धर्म-पदना विशेषणपणे जाणवा. अतः आ व्याख्यापक्षभां "चित्तप्रभवः मलविगमेन पुष्ट्यादिमान् धर्मः" ए शकारे धर्मनुं अव्याहृत लक्षण जाणवू.

"तारवण"

सारांश के—उभय पक्षमां 'धर्म' ना लक्षणमां अने तेना परमार्थमां भेद नयी मान्यो, मात्र श्लोकोक्त पदोनो भाव क्यो निकाळवो ? समास क्यो लेवो ? अने विशेष्य विशेषणपणे क्या पदो स्वीकारवा ? अमुक शब्दनो कोना साथे संबंध जोडवो ? आटलो ज भेद पाढ्यो ह्ये. मूल वस्तुने वाधा न थाय तेवी रीते अन्यान्य युक्तियी व्याख्याओ करवी तेमां शास्त्रीय विरोध आचार्योए मान्यो नयी. प्रथम व्याख्यामां मनने धर्म मान्यो ह्ये अने मनोविचारजन्य क्रियाने उपचारथी धर्म कहो ह्ये, ज्यारे उपाध्यायजी मनोविचारजन्य अध्यनसायपूर्विका क्रियाने विना उपचारे सीधी रीते धर्म कहे ह्ये, आटलो भेद उभय पक्षमां ह्ये खरो. वज्रे पक्षमां जे लक्षण धर्मनुं दर्शाव्युं ह्ये ते एवं ह्ये के सर्वदर्शनमान्य थाय, कोइ पण दर्शनवाला गरे तेदली युक्तियोशी अत्रोक्त धर्मलक्षणानुं खंडन करता समर्थ नयी; एवं आ लक्षण सर्वतो कल्पाणमदाता पण

(१७६)

अवश्यमेव छे. अतः धर्म परीक्षक बुधजनोए धर्म स्वीकारवा
पहेला आ लक्षण ध्यानपां रात्री तथाप्रकारनो धर्म स्वीकारवा
प्रयत्न करवो. एट्ले ज्यारे आ लक्षण अच्याहत रीते
समन्वित थाय त्यारे ज ते सत्य अकर्तुम धर्म छे एवुं समजबुं.
परमार्थ ए के—आवो ‘धर्म’ सर्वज्ञप्रवचन सिवाय अन्यथा
पापवो अशक्य ज छे.

“‘धर्म’ ना लक्षणमां “मलविगमेन पुष्ट्यादिमद्”
ए जगाव्युं तो अर्ही मलो क्या ? अने चित्त अथवा धर्मनी
पुष्टि—शुद्धि ते केवी रीते ? आ भाव दशाव्वा श्रोताप्रति
आचार्यश्री कथन करे ह्ये.”

रागादयो मलाः

खल्वागमसद्योगतो विगम एषां ।
तदूयं क्रियात एव हि
पुष्टिः शुद्धिश्च चित्तस्य ॥ ३—३ ॥

सूलार्थ—राग, द्वेष, मोह आदि मनना मेलो हे, आ
मलोनो निश्चयेन आगम—सर्वज्ञप्रवचनना सदूच्यापारथी नाश
थाय हे; माटे सत्क्रियार्थी ज आ मननी पुष्टि—पुण्यशुद्धि
तथा चित्तनी शुद्धि—निर्मलता सुंदर रीते बने हे.

“ मनना मेलो ”

स्पष्टीकरण—“रागादयो मलाः” शुद्ध पदार्थने जे

(३४७)

अशुद्ध—अपवित्र करे ते मल. पवित्र वस्त्रने मट्ठी, काजल आदि मलिन करे छे, मणि अने कांचनने माटी अशुद्ध करे छे माटे ते तेना मलो कहेवाय छे. एवं शुद्धभावस्थ आत्मा तथा मनने रागादिको मलीन—अपवित्र बनावे छे, अतः ते तेना मलो कहा. “ रंजनं रागः, द्वेषणं—कोपनं द्वेषः कोपः, मोहनं मोहः ” जेनाथी आत्मा—चित्त रंगाय—खुशी थाय—ग्रेमी बने ते, जेनाथी आत्मा—चित्त द्वेषी—कोषी बने—तपी जाय—अग्निस्वरूप धारण करे ते अने जेनाथी आत्मा—चित्त व्याकुलता पामे—लिपटाय जाय—मुग्ध बनी आसक्तिपूर्वक मूर्च्छा धारण करे ते अनुक्रमे राग, द्वेष तथा मोह आदि मलो विकारकारको जाणवा.

“ मलनो प्रभाव ”

जेप माटी आदि मलना संयोगथी मणि, कांचननुं असल स्वरूप बहार आवतुं नयी अने तेप थवाथी मणि अने कांचन माटी जेटला ज आदरणीय अने निर्मूल्य चरावर गणाय हे तथाप्रकारे अहीं आत्मा या चित्त ज्यां सुधी आ मलोनी संगतीमां रही रागी, द्वेषी, मोहीपणुं धारण करे त्यांसुधी आत्मा पोताना असल स्वरूपथी दूरतर ज रहे छे अने आत्मा आदरभावने कदापि पामतो नयी. ए तो ज्यारे माटी आदिना संगथी निर्मूक्त थाय त्यारे ज मणि अने कांचन अ-मूल्य पदार्थनी गणतरीमां आवे छे तथाप्रकारे क्षणे क्षणे प्रकटतो इष्ट—बछुभ पदार्थोनो रागभाव, अनिष्ट पदार्थनो द्वेष-

भाव अने विषयो, लक्ष्मी, स्वजनो, शरीर आदिनो मोहभाव दूर करे—अल्प करे तो ज आत्मा आदर पामे—अमूल्य पदार्थनी पंक्तिमां आवे. परमार्थ ए के—आत्मा असलथी सर्वे पदार्थनो साक्षात् प्रकटकर्ता, सर्वनो दृष्टा, अनंत अनिस्तुपम सुखनो भोक्ता, अनंत उपमातीत बल धारणकर्ता, केवल सद्-चित्-आनन्द ए त्रिपुर्दीनो पालिक, दुःख, क्लेश, विषयविकार रहित एक अलौकिक व्योतिस्तुप पदार्थ छे. रागी, क्रोधी, मोही आदि भावो आत्माना नर्था परंतु अनादिर्था आ सर्वे विकारो—मलो आत्मापर धेरो नांखीने पड्या छे, जेथी—“ जेम सिंहबुं बच्चुं माता भरी जवा पछी शियालना समूहमां उछरी मोहुं थवा पछी पण शियालना समागमथी पोते सिंह—शृगालशब्दु छतां स्वात्माने शियालपणे ज मानवा लाग्युं ” तेम आ आत्मा पण ते ते मलोना संसर्ग—एकाकार संवंधयी पोताने तथाप्रकारे रागी, द्वेषी, मोही, विषयीपणे माने छे. अतएव—आ विकारो आत्माने मलीन—अपवित्र आन्तकर्ता होवार्था शाखकर्ता भद्रियो तेजोने मलतया व्यवहरे छे. आ मलोबुं विस्तृत स्तरूप शाखोमां अनेक स्थले वर्णब्युं छे. यहाँ तो माझ श्लोकज्ञो भाव देखाहवा पूरतो ज अपारो ग्रयास छे. एड्ले कषायाना विस्तृत विचारमां उत्तरबुं ते ग्रंथबुं क्लेवर वधारवा जेबुं होवार्थी अमे नयी उत्तर्या अयवा ज्यां जेटला विवरणनी जस्त छे त्यां तेटलो विचार अवसरे आपवा अमे प्रयत्न साच्चर्वाशुं—साच्चब्यो छे.

“ मल्लो घोबानो मार्ग ”

मणि तथा कांचनने लागेल माटीरूप मल शास्त्र—अग्नि आदिनी क्रियाद्वाराए दूर याय छे, एवं आत्मा—चित्तने लागेल पूर्वोक्त मलोनो दूर करवानो उपाय ग्रंथकर्त्ता जणावे छे. “ आगमसद्योगतो विगम पृष्ठां ” ‘जिनप्रणीत जे आगम तेना सद्बोध—सम्यग्ज्ञानथी आ मलोनो विगम—नाश याय छे.’ “ शियालभूत सिहने ज्यारे अन्य सिहनो समागम ययो अने तेणे कहुं के—भाइ ! तुं पण मारा जेवो ज छे. आ टोळामां तुं क्यांथी भक्ष्यो ? आ लोको तो आपणे खोराक छे. तने विश्वास न आवतो होय तो तुं विचारी जो के तारुं शरीर, वर्ण, आकृति, शब्द अने क्रियाओ आ लोकोथी केडला जुदा छैरी आ वचन श्रवण कर्या पछी ज्यारे तेणे विचार्यु अने वरावर समजायुं त्यारे सिहनाद कर्यो एट्ले पोताना स्वरूपने तेणे ओळखी लीधुं.” ए ज रीते अर्ही पण आत्मालुं अनादि शुद्धरूप अने रागादि भावोनो विकार आ वज्रेनी मिथता, कर्मोनी लीला अने स्वरूप, पुद्गल अने पोतानो भेद, ज्ञानादि गुणोनो चपत्कार, सन्यति तथा दुर्मतिना कारणो, उपादेय क्रियाओलुं आचरण, हैय भावानो त्याग—आ सर्व पदार्थने प्रकांडतया जणावनार एबुं जिनभगवंतना आगमलुं ज्ञान आत्माने प्राप्त यत्वाथी पोतालुं कर्तव्य तेने समजाय छे. एट्ले आत्मा विहिताचरण अने निषिद्धना त्यागरूप क्रियामां प्रवर्तन करे छे, जेथी उपरोक्त मलोनो अवश्यमेव नाश ज याय छे. निदान के—

आत्मा पोताना असल स्वरूपने समंजी महेश्वरंपथी अलग
बवा प्रयत्न करे छे. अतएव—‘तदर्थं कियात एव हि’
आ क्रियाद्वाराए ज मलो नाश थवाथी ‘पुष्टिः शुद्धिः अ-
चित्तस्य’ चित्तनी पुष्टि तथा शुद्धि वने छे. अत्र पुष्टि अने
शुद्धिनुं स्वरूप उत्तर श्लोकमां दर्शाविशे ते अर्ही जाणवुं
अर्थात् पूर्व श्लोकमां ‘पुष्ट्यादिमत्’ ए प्रकारे चित्तनुं
विशेषण कहुं हतुं तेमां पुष्टि-शुद्धि चित्तनी क्या प्रकारे
थाय ? ए शंकानो प्रत्युत्तर आ श्लोकना स्पष्टीकरणथी
समजाइ जाय छे.

“मलोनो विगम थवाथी चित्तनी पुष्टि तथा शुद्धि प्रगटे छे
ए भाव गंत आर्यामां दर्शाव्यो. अर्ही पुष्टि तथा शुद्धिनुं स्वरूप
शुं ? आ शंसयने दूर करवा माटे अत्र आचार्यथी पुष्टि अने
शुद्धिनुं लक्षण दर्शावे छे.”—

पुष्टिः पुण्योपचयः
शुद्धिः पापच्छयेण निर्मलता ॥
अनुबंधिनि द्वयेऽस्मिन्
क्रमेण सुक्तिः परा ज्ञेया ॥ ३-४ ॥

मूलार्थ—पुण्य-शुभकर्मनो उपचय-शुद्धि ते अत्रे
शुष्टि, तथा पाप-आशुभकर्मनो क्षय-नाश थवाथी चित्तनी ऐ
निर्मलता-स्वरूपता ते अर्ही शुद्धि जाणनी. आ उभयना अनु-

बंध-परंपराथी अनुक्रमे आत्मानी उत्कृष्ट मुक्ति याय हे ए तत्त्व जाणवू.

“ पुष्टि-शुद्धि लक्षण ”

स्पष्टीकरण— “ उपचीयमानपुण्यता पुष्टिः ॥ ” अनु-
क्रमे पुण्य-सुखरूप फलप्रदाता कर्मनी वृद्धि तेतुं नाम अत्रे पुष्टि
अभिप्सित हे, अने पूर्वबद्ध ज्ञानावरणीयादि सम्यग्ज्ञानादि
गुणघातक कर्मनो अनुक्रमे लक्ष्य थवाथी आत्मानी स्वच्छता
ते अहीं शुद्धि मानी हे. तत्त्व ए के—पूर्व क्षोकमां दर्शाव्या
प्रमाणे आत्मा सिद्धान्तज्ञानना संयोगथी पवित्र एवी दान,
तप, शील, पूजा, इंद्रियदमन, कषायविजय, सामायक आदि
क्रियाओतुं आचरण तथा हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन आदि
पापक्रियानो त्याग करे. एटले आ क्रियाद्वाराए आत्मा अने
लदाधारभूत चित्त बने पवित्रतर थवाथी शुभ-पुण्यकर्मनो ज
बंध करे हे, भविष्यमां जेथी सुख मळे तेवा ज कर्मो वांधे हे
अने सम्यग्ज्ञानादि गुणोनो नाश करनार एवा ज्ञानावरणीय,
दर्शनावरणीय, अंतराय, मोहनीय ए चारे घातीकर्मनो अनुक्रमे
नाश करे हे. आयी आत्मा तथा तत्संबंधी चित्त उभय स्व-
च्छ-निर्मल याय हे. अत्रे दर्शित चारे कर्म आत्माना मुख्य
एवा ज्ञान, दर्शन, एकान्त शुद्ध स्वरूप तथा वीर्य गुणोनो
नाशकर्ता होवाथी ते घातीकर्म कराहे हे. अत्र क्रियाद्वारा
पापकर्मनो नाश सर्वथा अयवा देशथी याय ते उभयथा निर्मलता
समजवी. आ स्थलमां मूलकर्त्ताए जे ‘ चित्त ’नी निर्मलता

‘जणावी ‘चित्त’ शब्दनुं ग्रहण कर्यु छे आथी अने चित्त शब्दशी भावमनरूप आत्मा ज जाणवो. ‘चित्त’ द्रव्य अने भाव एम वे प्रकारसुं कर्णु छे. आत्मा औदारिक आदि स्थूल देहना प्रयत्नथी विविध विकल्पो-विचारो करवा माटे मनो-वर्गणाना द्रव्योने ग्रहण करे छे जे द्रव्योवडे आत्मा अनेकधा विचारो करे छे. आ द्रव्यनुं नाम बैनशास्त्रकारो द्रव्यमन कहे अने विचाररूप अथवा विचारकर्ता आत्मा ते अहीं भावमन मान्यु छे, तेमां द्रव्यमन पुढगलस्वरूपी होवाथी तेनी पुष्टि-शुद्धि दर्शावामां कंइ तत्त्व नथी. मात्र विचाररूप जे भावमन तेनी ज पुष्टि अने शुद्धि कर्मनाशद्वारा यवाथी अहीं आ विचार-रूप भावमननुं ज ग्रहण कर्यु छे, परंतु द्रव्यमन लीझुं नथी. हवे आ पुष्टि तथा शुद्धिनुं फल उत्तरार्थी आचार्यश्री जणावे छे.

“ पुष्टि शुद्धिनुं फल ”

उपरोक्त पुष्टि तथा शुद्धिनो अनुवंश-परंपरा चालवाथी अर्थात् प्रथम दशविल क्रियाओमां निरंतर प्रवृत्ति करवाधी, कदापि क्रियामां त्रुटीयो न आववाथी, क्रियाथी अष्ट मनने पण अनुसंधान करी पुनः क्रियामां दाखल करी अस्वलित क्रियाओ करवाथी आत्मा शुभकर्मनो वंश अने अशुभ-पाप-कर्मनो क्षय अधिकाधिक कर्ये जाय छे. आथी परिणामे आ जन्मपां के परजन्मपां अधिक शक्ति विस्तारी ते ज क्रियाना अभ्यासवलथी शुभाशुभ उभय कर्मनो सर्वथा नाश करी

मुक्तिस्थान आत्मा पामे छे, निदान के—आ बन्मर्मा यदि आ
प्रात्मानी मुक्ति न थाय तो पण अभ्यास करेल ते ते क्रियाओयी
उत्तर (पर) जन्मर्मां उच्च स्थान पामी त्यां तेने ते ज क्रियाना
पुंस्कारो उदयमां आवे छे, अने फरी आ संस्कारखुं एट्लुं उल्कृष्ट
बल आत्मा पामे छे के जेथी पोते सर्व कर्मनो क्षय करवाने
समर्थ बने छे एट्ले आत्मा तान्त्रिकी मुक्ति जहर पामे छे। आ ब
परमार्थ दशवैकालिकना चतुर्थ अध्ययनमां शश्यंभवसूरिजी
मानकमुनिजीना कल्याण माटे बहु सुंदर रीते जणावे छे, जेनो
दुँक भावार्थ पाठकोने उपयोगी धारी अमे आहीं आप्यो छे।

“ क्रियानो अनुबंध ”

“ जो आत्मा जीवादिकनुं स्वरूप वरावर समजे तो पछी
“ विषयभोगादिकथी अवश्य विरक्त थाय, एट्ले गमे तेवा
“ सुंदर पण भोगोनो वाह—आभ्यंतर उभय रीते त्याग करे,
“ अने आ त्याग—परिणाम प्राप्त थवाथी आत्मा अवश्यमेव गृह—
“ संसारथी चिमुख यइ अनगार—साधुपणुं स्वीकारे। साधुपणुं
“ स्वीकार्या पछी स्वात्माना पूर्ण कल्याण माटे उल्कृष्ट संवर—
“ पार्ग (जेथी नवा कर्मन आवे)मां आरूढ यइ असाधारण
“ धर्मां स्थिर थाय छे। आथी मिथ्यात्वभावथी पूर्वोपार्जित
“ कर्मरूपी रजनो नाश करे छे, कर्मरजनो नाश करवाथी
“ आत्मा सर्व पदार्थने प्रकाश करनारं एवुं केवलज्ञान पामे छे,
“ लोकालोकनुं स्वरूप जाणनार केवलज्ञानी जिनभगवंत बने
“ छे। केवलज्ञानी थया बाद अवशेष कर्मनो सर्वथा नाश करवा

“ माटे मन, वचन, कायाना योगोनो निरोध करी शैलेशि
 “ भाव पामे ह्ये एट्ले समग्र कर्मयी छूटी सिद्धिस्थानमां चौद-
 “ राजतोकना मस्तक भाग पर बीराजी शान्धत एवुं सिद्धस्व-
 “ रूप प्राप्त करे ह्ये.” ए रीते उत्तरोत्तर पवित्र क्रियामां आगल
 “ वधवाथी आत्मा आत्मादुं पूर्ण कल्पाणा करे ह्ये ए ज वात
 “ संज्ञेपमां अमे आगल जणावी गया छीए. जेझो चारित्र-
 “ पतित यथा होय तेना माटे पण कहुं ह्ये के—पच्छावि ते
 “ पयाया, स्विष्पं गच्छळंति अमरभवणाहं । जेसिं
 “ पिअो तबो, संजमो अ खंती अ वंभवेरं च ” ॥ १ ॥
 “ जे आत्माओ ग्रथम चारित्रभ्रष्ट यथा होय परंतु पाछल्यी
 “ सन्मार्गमां आरुढ यह आराधना पामे ह्ये तेझो मत्यु पामी देव-
 “ विमानोमां उपजे ह्ये के जेझोने तप, संयम, क्षमा, ब्रह्मचर्य
 “ आदि गुणो पर प्रेम होय ह्ये.” परमार्थ ए के—उपरोक्त
 क्रियाथी हेवटे देवतोकमां पण आत्मा जाय ह्ये.

जेझो आ उपरोक्त पुष्टि—शुद्धिनो अनुवंश पामे तेझो मुक्ति
 पामे ह्ये ए भाव गत श्लोकना अंतमां कहो, तो आ ‘अनुवंश’
 कोण न पामी शके ? तेनो खुलासो ग्रंथकर्ता अवे जणावे ह्ये.

न प्रणिधानाद्याशय-

संविद्व्यतिरेकतोऽनुवंशि तद् ॥

मिळग्रंथेन्नर्मल-

बोधवतः स्यादियं च परा ॥ ३—५ ॥

**मूलार्थः—प्रणिधान आदि पांच धर्मना अध्यवसाय स्थानों
आगल दर्शावे छे.** आ अध्यवसायनो जेने बोध न होय तेओने आ
पुष्टि-शुद्धिनो अनुबंध पण न होय, तेपज जेओए ग्रंथीमेद कर्यों
छे अने उत्तम एवो शास्त्रनो बोध प्राप्त कर्यों छे तेओने तो आ-
पुष्टि-शुद्धिनो अनुबंध उत्कृष्टतया होय ज.

“ अनुबंध साधनो ”

**स्पष्टीकरण —‘ पुष्टि तथा शुद्धि ’ ना अनुबंधप्रा-
सिनुं मुख्य साधन ‘ प्रणिधान ’ विगेरे पांच आशयनुं ज्ञान
अने अनुभव अहीं ग्रंथकर्ता दर्शावे छे.** आ ‘ प्रणिधान ’ आदि
पांच अध्यवसायनुं स्वरूप अने तेना नामो शास्त्रकर्ता आगलना
म्होकोथी जणावज्ञे. यद्यपि अंतःकरणाथी उद्भवता
विचारो अनेक प्रकारना कहा छे तो पण धर्मक्रियाना
पोषक अने वर्धक एवा सर्व अध्यवसायो पांच अध्यव-
सायनी अंतर्गत होवाथी विशिष्टपणे पांच ज अध्यवसायो
जाणावा. अहीं आचार्याथी जणावे छे के—आ प्रणिधान
आदि अध्यवसायनुं प्रथम बराबर ज्ञान याय अने
त्यारपछी तेनो जेने योग्य रीते अनुभव ययो होय तेने ज
आ दर्शित ‘ अनुबंध ’ नो लाभ याय. एटले के-जेने
आ अनुभव नयी भल्यो तेने ते ‘ अनुबंध ’ नो लाभ न ज
याय. अतः टीकाकार पण मूलस्य ‘ संवित् ’ पदनी व्या-
रुयामां “ संवित् संवित्तिः संवेदनमनुभवः ” संवित्

(१५६)

शटले ज्ञान, संपेदन-अनुमत-आ उभयनो ज्यां ‘व्यतिरेक’ अभाव होय त्यां पुणि-शुद्धिना अनुबंधनो पण अभाव जाणवो एवो भाव देखाव्यो छे. परमार्थ ए के-प्रथम हृदयनी काङ्क्ष स्वच्छता थाय त्यारपछी ज पवित्र एवा आ अध्यवसायोनो आविर्भाव थाय, माटे आ आशयो प्राप्त करवा पहेला हृदयना दुष्ट मिथ्यात्व आदि मलो साफ करवा प्रयत्न करवो उचित गणाय. दुष्ट मिथ्यात्व आदि मलनो नाश तीव्र भयानक एवा रागद्वेष आदि भावो ज्यां सुधी घर करीने बेटा होय त्यां सुधी तो न ज थाय, माटे शास्त्रकर्ता आ ‘अनुबंध’ कोण पामी शके ? एनो खुलासो उत्तरार्थी जगावे छे.

“ ग्रंथीभेद ”

“ भिन्नग्रंथोर्निर्मलबोधवतः ” ग्रंथीनो भेद जेणे कर्यो होय अने निर्मल बोधवान् जे होय तेने “ स्यादित्यं च परा ” आ उत्कर्षवती ‘ अनुबंधश्रेणी ’ नी प्राप्ति थाय. अत्र ग्रंथीभेदनुं स्वल्प आ रीते जागावूँ. समकित-शुद्ध मान्यता प्रति जेओ वक्या होय अथवा वक्त्वा तैयार होय-थशे तेओ ज आ ग्रंथीभेद करे, सिवाय कोइ पण न करे. आत्मा अनादिथी मिथ्यावासनाथी आकंठ घेरायेल होवाथी सत्य पदार्थनुं ज्ञान अने मान्यता करी शकतो नयी, अतएव जे आत्मा प्रथम तो आ संसारमां रुलतो रुलतो अने अनंत कष्टो भोगवनो थको ज्वेम पर्वतथी उत्तरती नदीना जलप्रवाहमां तणाता अषडाता-अषडाता पथथरो स्वयमेव चोखूणा, त्रिखूणा, गोल यह जाय त्वे

तथाप्रकारे यथाप्रवृत्तिकरण आत्मा पोताना स्वाभाविक अपूर्व-
वीर्यवलथी आशुभ्य सिवायना सात कर्मोनी वृहत् स्थितिनो नाश
करी पात्र पल्योपमना असंख्यात भागन्यून एक कोटाकोटी
सागरोपम जेटली स्थितिवाला कर्मोने करी मृके. अर्हांथी आगल
वधवा जेटलुं वल जेओमां नथी होतुं, तेओ तो अर्हांथी ज पाढ्या
पडी जाय छे अनेघणाओ अर्हां ज उभा रहे छे, कारण के
आ स्थलमां दुर्भेद वंशनी गांठ जेवी कठोर रागद्वेष
परिणतियो उपस्थित थाय छे जेथी आत्मा पाढ्यो पडी जाय
छे. आने ज महर्षियो ग्रंथी कहे छे. अभवि आत्माओ अर्हां
सुधी अनन्तीचार आवी आवीने पाढ्या वळी गया छे, एवं
अर्हां भवि अभवि असंख्यकाल यावत् स्थिर पण थाय छे
यावत् अभवि तो चारित्र धारण करी अपूर्ण एवा दशपूर्व
पर्यंतनो अभ्यास पण करे छे, छतां तेओना ज्ञानने मिथ्याज्ञान
कहुं. दशपूर्व अने चौदपूर्वनो अभ्यास तो समकितीने ज होय.
“ चउदस दस य अभिज्ञे नियमा सम्मं तु सेसए
भयणा तु ” इवे कोइ कोइ भवि आत्माओ तो अपूर्व-
करण-अद्वृत पराक्रमवडे उपरोक्त रागद्वेषनी ग्रंथीने
मेदी नांखी मिथ्यात्मस्थितिना उदयकाल संवंधी अंतर्ष्ठूर्च
काल जेटला भोग्यकर्मने छोडी, त्यारपछीना भविष्यमां
उदय आवनार एवा अंतर्ष्ठूर्चकाळ जेटला ज मिथ्यात्म-
कर्मना प्रदेशोने जाश करी शके एवुं ‘ अन्तरकरण ’
आत्मा अनिवृत्ति नामे कोइ सबोंतम वलवडे रचे छे. अर्हां

‘अन्तरकरण’ एटले अंतर्मुहूर्त यावत् मिथ्यात्वकर्मने सर्वथा द्वावी राखवा ते, आ अन्तरकरणना पहेलाना टाइपमां मि-थ्यात्वनो उदय होवायी आत्मा मिथ्यात्वी जाणवो अने अन्तरकरणना ग्रथम समयथी ज मिथ्यात्वनो उदय न होवायी आ समये आत्मा ‘उपशम’ नामे कषाय अने मि-थ्यात्वकर्मना उदयाभावरूप समकितने पामे छे, एटले आत्मा साची मान्यता—बीतराग धर्मनो वरावर आदर करे छे.

“ वे—पक्षो ”

आ स्थानमां वे मतो छे—एक तो आगमपक्ष अने बीजो कर्मभ्रम्यनो पच. कर्मग्रंथकार जणावे छे के—यदि अनादि मिथ्यात्वी आत्मा समकित नवेसरथी पापतो होय तो ते अन्तरकरणे करी द्वावेळा कर्मोनो शुद्ध, अर्धशुद्ध, अशुद्ध एवा त्रण पुंज करी उपशम समकित पाम्या विना ज ‘क्षायोपशमिक’ समकित पामे छे, शिवाय अन्य जीव एटले जे पहेला समकित पाम्यो हतो अने पछी पढी गयो छे ते जीव समकित पापतो होय तो पुंजन्त्रयनी रचना कर्या विना ज ग्रथम तो उपशम समकित पामे छे; माटे आ जीव उपशम समकितथी पडीने नियमा मिथ्यात्वे जाय छे. आगमिक पक्षमां तो पूर्वोक्त रीते उपशम समकित पाम्या पछी आत्मा नियमेन मैणमय कोद्रवाने साफ करवथी कोद्रवा शुद्ध, अर्धशुद्ध अने अशुद्ध एम त्रण प्रकारे विभक्त याय तथाप्रकारे अध्यवसाय-बद्धयी मिथ्यात्वना प्रदेशोने साफ करतो शुद्ध, अर्धशुद्ध,

अशुद्ध ए रीते त्रण प्रकारे प्रदेशोनो भाग पाडे छे. आरुं ज नाम अिंपुंज शास्त्रो जणावे छे, एट्ले उपशमयी पछ्या पछी मिथ्यात्व, मिश्र अथवा क्षायोपश्चमिक भावने आत्मा यामे छे.

“ निर्मलबोधवान् ”

वस आ प्रमाणे जेओए ग्रथीभेद कर्यो होय एट्ले तेओने ज अर्थात् ग्रथीभेद कर्या पछी अवश्येन आत्मा अनिवृत्ति नामाकरणथी—अध्यवसाय विशेषथी समकित पामे छे. अतः आ आत्माने ज ‘ प्रणिधान ’ आदि अध्यवसाय स्थाननो बोध तथा तेनो अनुभव निश्चयथी थाय छे. अर्हि ‘ भिन्नग्रंथे ’ ए व्यच्छेदक विशेषण होवायी आ भिन्नग्रंथी सिवायना आत्माने आ प्रणिधानादि अध्यवसायो न होय, एवं आत्मा एवो जाणवो के—‘ निर्मलबोधवतः ’ निर्मल—सुंदर हेयोपादेय संबंधी बोधवान् जे होय. परमार्थ ए के—जेने जिनप्रवचन प्रति-पाद्य तत्त्वनुङ्गान प्राप्त थयुं होय तेने ज आ अध्यवसायो आवे, एट्ले खाली भिन्नग्रंथीने ज उपरोक्त आशयोनी प्राप्ति न थाय किन्तु निर्मलबोधवान् पण होवो जोइए. आ परथी जेओ शास्त्रीयज्ञान-वान् न होय अने भिन्नग्रंथी होय तेओ यदि गीतार्थ आज्ञानु-सारी अथवा गुर्वाङ्गाप्रमाणे प्रवृत्ति—निवृत्तिक्रियाकारक होय तो तेओ पण परमार्थतया निर्मलबोधवान ज होवायी तेओने आ अध्यवसायो पेदा थाय तेमां काँइ पण विरोध न जाणवोः कारण के मारुष मातुष जेवा मुनिप्रवरो पण मोक्षे गया

(१६०)

द्वे एम शास्त्रपां सुलुं जणाव्युं छे आट्हो अत्रे अधिक सुलासो जाणवो. हेतु ए के—निर्मलबोधनुं मुख्य फल अध्यवसायो अर्हीं क्रायम होवाथी ते विमलबोध ज कहेवाय. आवा आत्मा माटे ग्रंथकर्ता जणावे छे के—‘स्यादियं च परा’ ‘प्रणिधान’ आदि आशय संवंधी अनुभव प्राप्ति आ आत्माने उत्कृष्ट-प्राधान्यतावाली होय, अतः आ आत्माने ज पुष्टि-शुद्धिनो खास अनुवंध लाभ थाय.

“ आट्हुं जणावी हवे ‘ प्रणिधान ’ आदि आशयोनी नामग्रहणपूर्वक संख्या ग्रंथकर्ता जणावे छे. ”—

प्रणिधिप्रवृत्तिविध्न—

जयसिद्धिविनियोगभेदतः प्रायः ।

धूर्मज्ञैराख्यातः

शुभाशुयः पञ्चधाऽत्र विधौ ॥ ३—६ ॥

मूलार्थ—पुष्टि-शुद्धिनी अनुवंधविधिमां मुख्य हेतु अने पवित्र एवा पांच आशयो-आत्माना विशिष्टाध्यवसायो धर्मज्ञ महापुरुषो ए आ प्रयाणे कहा छे. प्रणिधि, प्रवृत्ति, विध्नबँय, सिद्धि अने विनियोग ए पांच शुभ आशयो जाणवा.

“ स्पष्टीकरण ”

आ आर्यानो भाव स्पष्ट ज छे. पुष्टि तथा शुद्धिनो अनुवंध पवित्र एवा शुभ परिणामोने आधारे ज थाय यथ दर्शाव्युं हतुं. अतः आ परिणामो माटे अर्हीं ग्रंथकर्ता

(१६१)

कहे ह्ये के धर्मङ्ग-धर्मना सत्य मर्मने जाणनार एवा पूर्व महा-
पुरुषोए शास्त्रोमां पांच प्रकारना शुभ परिणामो जगाव्या ह्ये.
यद्यपि शुभ परिणामो असंख्य प्रकारना कहा ह्ये, तो पण
अहीं जे पांच परिणामो दर्शाव्या ह्ये तेमां ते सर्व परिणामोनो
समावेश थइ जवाथी पांचथी अधिक परिणामो विशेष-
रीत्या गण्या नथी. एवं 'पुष्टि-शुद्धि' नो अनुबंध पण आ
पांच आशय सिवाय अन्य आशयोथी थतो नथी एवो धर्मङ्ग
पुरुषोनो अनुभव होवाथी मूलपां मूलकर्ताए 'प्राप्यः' पद
आप्युं. वहोव्यताये प्रणिधि, प्रवृत्ति, विघ्नजय, सिंद्धि,
विनियोग-आ पांच आशयो ज अत्र अनुबंधविधिपां सुख्य
कारणो जाणवा. परमार्थ ए के-जेने आ पांच आशयोनो लाभ
याय तेने ज पुष्टि-शुद्धिनो अनुबंध प्रवर्ते, एटले
पुष्टि-शुद्धिनो अनुबंध प्राप्त करवा आ पांच आशयोनुं
ज्ञान करी तेने भेदव्यवा प्रयत्न करवो विवेकीनुं कर्तव्य गणाय.
अहीं जे पांच आशयोना नामो दर्शाव्या तेमां तथाप्रकारना
गुणो अने स्वरूप होवाथी तेमज अन्याशयोमां तथाप्रकारनी
विशिष्टता न होवाथी पण अत्रे ए ज पांच आशयो दर्शाव्या
आटलो विशेष खुलासो जाणवो.

" गत आर्यामां नाममात्रथी दर्शविल पांचे आशयोनुं
क्रमशः स्वरूप दर्शावता ग्रंथकर्ता प्रथम 'प्रणिधान' नामे
आशयोनुं स्वरूप एक आर्याथी वहु सुंदर अने स्पष्ट रीते
दर्शवे ह्ये. "

(१६२)

प्रणिधानं तत्समये
स्थितिमत्तदधः कृपानुगं चैव ॥
निरवद्यवस्तुविषयं
परार्थनिष्पात्तिसारं च ॥ ३-७ ॥

भूलार्थ—धर्म संवंधी जे जे धर्मदा-प्रतिज्ञा स्वीकारी होय तेमां जे अविचलपणुं अने पोताथी नीची स्थितिना-धर्मप्रतिज्ञाहीन मनुष्यो उपर अनुकंपा करवी, एवं जे कार्योथी अन्यनो उपकार थाय अने विशेष पाप न होय, तथा अंगी-कृत धर्मपर्यादाने अनुकूल ज वस्तुनुं ध्यान बन्या रहे, एवा परिणापने ‘प्रणिधान’ नामे आशय कहो छे.

“ प्रणिधान ”

स्पष्टीकरण—‘प्रणिधानं प्रणिधिः’ प्रणिधान ते ज प्रणिधि. अहीं प्रणिधाननो सामान्य अर्थ एट्लो ज के अंतःकरणनी मक्कपता, एट्ले पवित्र हृदयनी खास दृढता. आ दृढता पण अनेक प्रकारनी छे तो ते दृढता केवी ? अने क्या क्या प्रकारनी ? अहीं समजबी, एवं आ आर्थीमां ‘प्रणिधान’ ए विशेष्य पद अने ते सिवायना अन्य तेना विशेषण पदो छे. अतः आ ‘प्रणिधान’ पदना विशेषणपणे अन्य पदोनी व्याख्या कर्वानुं खास ध्यान राख्दूं, एट्ले प्रणिधान नामे आशय कोने समजबो ? ते विशेषणद्वारा अंथकर्ता समजावे छे.

‘ तत्समये स्थितिमत् । ’ समयः—अधिकृत धर्मस्थान संवंधी जे प्रतिष्ठा अर्यात् जेनाथी आत्माने धर्मलाभ याय तेवा प्रकारनी धर्म संवंधी जे प्रतिष्ठा तेमां, जेम ‘ मांस अमुक काल या जींदगीपर्यंत न खावुं । ’ एवो धर्म जार्णी आत्मा प्रतिष्ठा—पञ्चख्लाण—सोगन—नियम करे तो आ सोगन धर्मकारक होवार्था धर्म संवंधी प्रतिष्ठा कहेवाय. एटले आ अने तेवी ज अन्य धर्म प्रतिष्ठाओ स्वीकार्यां पछां ते ते प्रतिष्ठाओ पालवामां अनुकूल एवा जे विचारो, अथवा स्वीकृत प्रतिष्ठाथी आत्मा गमे तेवा संयोगपां पण चलायमान न ज याय. उपाध्यायजी मटाराज कहे छे के—जे विषय संवंधी प्रतिष्ठा करी तद्विषयनी सिद्धि न याय त्यां सुधी जेपके—‘ हुं आजथी चार पास सुधी जिनपूजा कर्यां विना भोजन नहीं करीश. । ’ वस आ प्रतिष्ठा स्वीकार्या पछां एवा प्रबल संयोगो आवी लागे छे के पूजा करवानो समय न ज मलै; छूतां आत्मा पूजाना संस्कारोर्या एवो तो देवाइ जाय के गमे तेटलो टाइम यह गयो होय अने भूख्या परवानो समय आवी लागे तथापि भूख्या मरवुं ए स्वीकारी ले परन्तु प्रतिष्ठानो भंग न ज करे. प्रतिष्ठा पूरी न याय त्यां सुधी आवी दृढता सर्वांशे कायम राखवाना जे शोभन विचारो ते अंतःकरणनी मङ्गमता.

“ तद्धः कृपालुगं चैव ”—‘ प्रतिपत्ति धर्मस्थानधी चंचित जनो पर अनुकंपा तत्पूर्वक. । ’ उपर दर्शाव्या प्रपाणे जे जे धर्मविषयक प्रतिष्ठाओ आपणे स्वीकारी होय तेने टका-

बवाने तेवा तेवा अनुकूल विचारो ज आपणे ; विचारी आत्माने हृद बनावी तथापकारे धर्म्य प्रतिज्ञामां निश्चलता पामीए. आपणी आ स्थितिना मुकावले आपणाथी अन्य जनता उत्तरती देखाय त्यारे ते गुणहीन नीची कोटीना छे एम घारी तेना पर यदि द्वेषबुद्धि अथवा घृणा के निंदकपणुं जो उभयभवे तो ते 'प्रणिधान' नामक आशय न कहेवाय. हेतु ए के-धर्म्य प्रतिज्ञा स्वीकार्या छतां जे आत्मा पोताने ते धर्मस्थानना बहाना नीचे गर्वी, द्वेषी बनावी अधिक पाप पेदा करे छे ते धर्मस्थाननी साध्यता चूकी जाय छे. अतः आ 'प्रणिधान' आशय संबंधी विशेष खुलासो करवा ग्रंथकर्ता अन्य विशेषण दर्शविं छे. आपणाथी धर्मस्थानवंचित या पतित एवी अन्य जनताने देखी तेना पर अनुकंपा धारवी. जेमके—' हुं पूजा कर्या विना मोजन करतो नथी अने तेवी प्रतिज्ञां में लीडी छे. तमे शुं करवाना ? तमारामां क्यां तेवी शक्ति छे ? तमारो तेवो पुण्योदय क्यांथी होय ? तमे अघर्वी पापी छो. तमाराथी योडो पण धर्म यतो नथी. धिक्कार छे तमारा जन्मने !' ए रीते गर्व के द्वेष न करवो किन्तु ' अहो आ लोको मनुष्य-जन्म, बुद्धि, बल, आरोग्यता विग्रेरे पामवा छतां कांह पण धर्म-साधन करता नथी. आ लोकोनी शी दशा थशे ? आ लोकोनो कांह दोष नथी. तेओ तो कर्मार्धीन छे.' आ प्रमाणे तेओना पर अनुकंपा ज भाववी. आवी अनुकंपा सहित धर्मविषयक प्रतिज्ञामां हृदयनी ज्ञे हृदता-परिणार्ती ते ज अत्र 'प्रणिधान' आशय कहो छे.

आ आशयनी प्राप्ति जेओ अतिषापकारी आरंभोमां सर्वदा
 प्रवर्तनशील होय अने पोतानो ज स्वार्थ मुख्य रीते साधवामां
 जेओनी प्रधान द्रष्टि होय तेओने तो न ज याय, कारण के आवी
 द्रष्टिवाक्षमां वहोलताये अनुकंपाबुद्धिनो सर्वथा लोप ज यथो
 होय छे; अने ज्यां अनुकंपा न होय त्यां धर्म ए खाली नाममा-
 त्र ज समजबो. अने अर्ही अनुकंपा तो खास मुख्य मानी छे.
 अतः ग्रंथकर्ता उत्तरार्धधी अधिक खुलासो करे छे के—‘निर-
 बद्धवस्तुविषयं, परार्थनिष्पत्तिसारं च’ ‘परोपकार-
 सिद्धि प्रधान अने निर्देष पदार्थ संबंधी जे विचार’ जे कार्यो
 करवाथी पोते अंगीकृत धर्ममर्यादानुं पोषण याय एट्ले नित्य
 एवा ज पदार्थनुं ध्यान रहे के स्वीकृत धर्म संबंधी प्रतिज्ञानो
 कदापि भंग न याय तथा ग्रत्येक कार्यो अने तत्संबंधी विचारो-
 द्वारा अन्यनो मुख्यतः उपकार ज याय किन्तु पोतानो स्वार्थ
 मुख्य न सधाय एवी रीते पापनो परिहार करी प्रधान कार्यो
 करवाने हम्मेशा ध्यान करबुं-विचारो करवा. आवाहृविचारोने
 हुँकमां धर्म संबंधी स्वीकृत प्रतिज्ञामां दृढता अने गुणहीन जनो
 पर अनुकंपाबुद्धिपूर्वक परोपकारप्रधान पापनिरुक्त वस्तु-
 ओनुं हम्मेशा चितवन-ध्यान-आने ज शाक्तकर्ता ‘प्रणिधान’
 . आशय जणावे छे.

“‘प्रणिधान’ नामे पहेला आशयमां केवल मानसिक
 . . . सुंदर बुधि दर्शावी. इवे आवी बुधिनो जन्म
 . पछी तेना फलरूप अने प्रथम आशय पछी जेथी सुंदर

(१६६)

आचरण प्रकटे के जेने प्रत्यक्ष व्यवहारमां देखी शकाय एवो
‘ प्रवृत्ति ’ नामे बीजो आशय दर्शावे ह्ये. ”

तत्रैव तु प्रवृत्तिः

शुभसारोपाथसंगतात्यन्तम् ॥

अधिकृतयत्नाति—

शायादौत्सुक्यविवर्जिता चैव ॥३-८॥

मूलार्थः— स्वीकृत धर्म संबंधी प्रतिज्ञामां पवित्र अने
उत्कृष्ट एवा उपायो—साधनो योजवामां अतिशयेन निषुण एवो
ज्ञोरदार प्रयन्त—उद्यम करवो, तथा मानसिक उत्सुकता अथवा
अकाले ते धर्म संबंधी फलप्राप्तिनी वांच्छा रहित एवो जे
प्रयन्त करवो तेने अर्हीं ‘ प्रवृत्ति ’ जाणवी.

“ प्रवृत्ति ”

स्पष्टीकरण— शोभन—अशोभन प्रवृत्तिनुं मूल शो-
भन—अशोभन विचारश्चेणी सिवाय अन्य नथी. अतः प्रवृत्ति
उत्पादक ‘ प्रणिधान ’ नामे पहेलो आशय जणाव्या पछी
आ आर्यामां ‘ प्रवृत्ति ’ नुं स्वरूप दर्शावे ह्ये. अर्हीं पण ‘ प्रवृत्ति ’
ए विशेष्य अने अन्य तेना विशेषण पदो जाणवा. दुनियाना सर्व
व्यवहारने लोको प्रवृत्ति ज कहे ह्ये अतः अत्र क्या प्रकारनी
प्रवृत्ति समजवी ? आनो खुलासो आचार्य जणावे ह्ये. ‘ तत्रैव
तु ’ पूर्वे प्रणिधान नामे आशयना अधिकारमां जे धर्मविष-

यक प्रतिज्ञानी दृढ़ता अने तत्संबंधी विशेष आशयनीं शुद्धि
 दर्शावी ते ज आशयशुद्धिपूर्वक धर्म संबंधी प्रतिज्ञामां ‘प्रवृत्तिः’
 गमन करवुं. परमार्थ ए के—अर्हं प्रवृत्ति मात्र शून्यचित्तवाली
 क्रियारूप न लेवी, किन्तु अभिप्रायपूर्वक वाहक्रियारूप आ-
 त्मानी विशिष्टि चेष्टा तदरूप प्रवृत्ति अत्र जाणवी. पूर्वे कहा
 प्रमाणे “ हुं आजथी हमेशा पूजन करीश ” आ प्रमाणे
 प्रतिज्ञा गुरुसमव्य स्वीकार्या वाद ज्यांसुधी आ प्रतिज्ञानो समय
 पूरो न थाय त्यांसुधी ते प्रमाणे वर्तन कर्या ज करवुं, परंतु
 अंतरमां मात्र प्रतिज्ञा लेवानी इच्छा उद्भवी ते इच्छारूपे ज
 बन्या रहे तेम नहीं अथवा तो लीधा पछी तेना पालन प्रति
 वेदरकारी या तो एक वेदरूपे पूरी थाय तेवी नहीं परंतु
 “शुभसारोपायसंगतात्यंतम्” ‘शुभ-सुंदर, सार-उत्कृष्ट
 एवा उपायोवडे अत्यंत युक्त ’ स्वीकृत धर्म संबंधी प्रतिज्ञाना
 पालन माटे हमेशा जेम बने तेम शोभन अने उत्कृष्ट
 एवा उपायो बुद्धिवलवडे योजी योजीने आदरपूर्वक अत्यंत
 क्रियानुं आचरण करवुं. एटले जे जे प्रतिज्ञाओ स्वीकारी
 होय तेना पालननी बृद्धि माटे क्या क्या साधनोनी अपेक्षा रहे
 क्षे ? तेमां केवा विवेकनी जर्ल रहे क्षे ? आवा आवा विचारो
 करी, धर्मज्ञ पुरुषोने पूछी पूछी तथाप्रकारे सुंदर आचरण
 करवुं. ‘ गतानुगतिक ’ न्याये अथवा पहलाथी ओघबुद्धिए
 जेम क्रिया करीए तथाप्रकारे कर्या करवी, अगर तो कोइ
 सुधारवालुं कहे तो पण न सुधारता पोतानुं ज धार्यु करवुं

आवी प्रवृत्ति अब अपेक्षित नथी; कारण के आवी क्रिय तो संमूर्छय जेवी अंध अने मूढ़ क्रिया ज कही छे, अतएव उपाध्यायजी स्वकृत टीकामां विशेष खुलासो करे छे—‘उपायः प्रेत्त्वोत्प्रेत्त्वादिः’ अब उपाय ते प्रेत्त्वा—सामान्यथी धर्मप्रतिज्ञा माटे विचारो करवा, आलोचन करवुं, दृष्टिद्वारा जीवोनी तपास करवी, उत्प्रेक्षा—विशेषपरणे विचारो करवा, रजोहरण आदि साधनोंवडे पटिलेहणा करवी.

फरी—‘अधिकृतयत्नातिशयात्’ अंगीकृत धर्मर्था दानुं पालन करवा माटे प्रयत्न—उद्यम एट्लो होय के जेमां लेशमात्र प्रमादने अवकाश न मले अर्थात् प्रमादने दूर करी विशिष्ट रीते प्रतिज्ञा—पालन माटे उद्यम करवो. जेमके—अग्रुक प्रकारनी धर्म संवंधी प्रतिज्ञा लीधा पछी आनुं पालन करवामां विलक्षुल प्रमाद न करवो, किन्तु दिवसे दिवसे उद्यम अधिक ज जेमां कराय. आथी ज ‘औत्सुक्यविवर्जिता चैव’ जे प्रवृत्ति—क्रियामां शीघ्रता—मननी उत्तावल न होय अथवा इच्छानो वेग न होय तेवी, एवं वीजा अर्थमां आ क्रिया कर्या पछी अनवसरे आ क्रियाना फलनी इच्छा करवी तेणे करीने द्वे वर्जित होय. आवी प्रवृत्ति ते अत्र ‘प्रणिधान’ नामे आशयना फलरूप सत्य प्रवृत्ति जाणवी. अनवसरे फलनी इच्छा करवी ते पण एक आर्चाध्यान कहुं छे—‘विपरीतं मनोज्ञानाम्’ ‘इष्ट पदार्थोनी इच्छा ते आर्चाध्यान’ ‘निदानं च’ विपर्यसुख माटे जे प्रार्थना ते पण आर्चाध्यान,

(१६६)

अतएव अर्हा फलनी इच्छा रहित एवी प्रवृत्ति जणावी। परमार्थ ए के—कोइ पश्य धर्मसाधनमां फलनी इच्छा कर्या विना अने मन तथा कायानी उत्सुकताने छोडीने प्रवृत्ति करवी, तो ज ते प्रवृत्ति नामे पवित्र एवो धर्म संबंधी बीजो शुभ आशय कहेवाय; अन्यथा ते धर्म नहीं किन्तु एक जातनी धमाल ज कहेवाय। अत्रे आ सर्व प्रवृत्ति क्रियारूप छतां तेमां आशयनी मुख्यता होवायी अर्हा तेने आशय कहो छे।

“ प्रवृत्ति नामक आशयपूर्वक क्रियामां प्रवर्तनारने विघ्नो कदाचित् आवे खरा, अतः प्रवृत्तिरूप आशय साथे संबंध राखनार ‘ विघ्नजय ’ नामे श्रीजा आशयनुं सरूप ग्रंथकर्ता दर्शवे छे। ”

विघ्नजयस्त्रिविधः

खलु विशेषो हीनमध्यमोत्कृष्टः ॥
मार्ग इह कंटक—

ज्वरमोहजयसमः प्रवृत्तिफलः ॥३-१॥

मूलार्थः—प्रवृत्तिरूप आशयना फलने अर्पनार एवो, मार्गमां कंटक, ज्वर तथा मोहजयनी माफक जघन्य, मध्यम अने उत्कृष्ट एम त्रण प्रकारनो निश्चयथी विघ्नजय अत्रे जाणवो।

“ विघ्नोनुं खल ”

स्पष्टीकरण—पापक्रियामां प्रवर्तनारने कदाचित् विघ्नो न

आवै ज्यारे धर्मक्रियामां गमन करनारने बहुधा जरुर विघ्नो नडे क्षे
खरा। “ श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवंति महतामपि ।
अश्रेयसि प्रवृत्तानां क्षापि यांति विनायकाः ” ॥१॥
एटले जो प्रवर्तनार निर्बल मननो होय तो ते क्रियाथी पाढ्हो
पडी जाय, अतः पोताना साध्यपर्यंत ते पहोंची शकतो नयी;
माटे प्रवर्तनारे हिम्पतपूर्वक एवी रीते प्रवर्तवुं जोइए के गमे
तेवा विघ्नो आववा छतां ते सर्वनो विजय करी पोताना साध्य
मति वरावर पहोंची शकाय. ‘ प्रवृत्ति ’ रूप आशयतुं फल
विघ्ननो विजय करवाथी ज प्राप्त याय. अन्यथा ‘ प्रवृत्ति ’
ते अप्रवृत्तिभूत ज गणाय. अतः अर्हीं प्रवृत्ति नामे आशय
कशा पछी विघ्नजय नामे आशयतुं स्वस्त्रप दर्शायुं छे. आ
विघ्नजय नामे आशयतुं बल ज्यांसुधी आत्मा प्राप्त न करे
त्यांसुधी उपर कहेला वझे आशयो नकाया जाणवा. अर्हीं
क्रियामां प्रवर्तनार जघन्य, मध्यम, तथा उत्तम एम त्रण प्रका-
रना पनुष्यो होय छे. तेमां ‘ विघ्न आवशे तो ? ’ एवा भयथी
जेझो क्रिया न करे ते जघन्य, प्रवर्तवा छतां विघ्न आव्या
पछी वचमां ज अटकी जाय ते मध्यम अने अनेक विघ्नो
आववा छतां अचल रही सर्वनो विजय करी कार्य साधे
ते उत्तम. “ प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः, प्रारभ्य
विघ्नविहता विरमंति मध्याः । विन्नैः पुनः पुनरपि
प्रतिहन्यमानाः, प्रारभ्यमुक्तमजना न परित्यजन्ति ”
॥२॥ एवी ज रीते धर्मकार्योमां गति करनारने जे विघ्नो आढा

आवे छे तेने अर्ही ग्रंथकार त्रण विभागोमां वहेची दृष्टांतो साथे घटना करी समजावे छे. ‘विज्ञजयस्त्रिविधः’ विज्ञनो जय त्रण प्रकारनो ‘विज्ञेयः’ जाणवो. ‘हीन-मध्यमोत्कृष्टः’ हीन, मध्यम अने उत्कृष्ट. अत्र आर्याना पूर्वार्थां ‘खलु’ ए वाक्यनी शोभा अर्थे आप्यो छे अथवा तेनो निश्चय एवो अर्थ करीए तो अर्ही विज्ञो त्रण प्रकारना ज छे, ए प्रपारणे भावार्थ जाणवो. आठलुं कहा पछी आ भावने समजावदा हवे ग्रंथकर्ता दृष्टांत कहे छे.

“विज्ञ प्रकारो”

‘मार्ग इह’ इष्ट अर्थमाटे घणा मनुष्यो आमांतरे जवा निकव्या होय त्यां मार्गमां ज कांटाओ, बुखार, आंधी विगेरे कष्ठे आवी पडे छे, छतां प्रवल मनुष्य आ सर्वनो विजय करी जैम इष्ट अर्थनी अवश्य सिद्धि करे छे तथाप्रकारे अर्ही पण ‘कंटकज्वरमोहजयसमः’ कंटक समान हीनविज्ञ, ज्वर समान मध्यमविज्ञ अने आंधी समान उत्कृष्टविज्ञनो विजय करे ते जं स्वसाध्य स्थळे पहोची शके.

“कंटकविज्ञ”

परमार्थ ए के—मार्गे जवा नीकलेल मनुष्यने कदाचित् मार्गमां कांटाओ, कांकराओ, पत्थराओ पगमां खुंचे—लागे छतां कोइक हिमती अने समर्थ मनुष्य आ सर्वने अलग करी, सावचेती रासी, जोइ जोइने पण मृकतो जराये खेद न करतो पोताना स्थाने पहोचे

(१७२)

छे, एवं अर्हीं पण स्वीकृत धर्मप्रतिज्ञाना पालन करवायां प्रवर्तना-
रने कदाचित् कांटां आदि समान ठंडी, गरमी, तुष्टा, पिपासा,
डांस-मच्छर, याचना आदि परीसहो प्राप्त थाय, जे परीसहो
आवायाथी आत्मा त्रास पामे, कंटाळी जाय, चक्षितपरिणामी
थाय, मेघकुमार मुनिनी माफक आर्तध्यान करे. अतएव
धर्मस्थानथी आत्माने आ परीसहो यत्किंचित् स्वसेडनार होवायी
आ परीसहो हीनविघ्न कंटक तुल्य कहा. हीनता एटला माटे
के आ परीसहोनो आत्मा स्वेजे विजय करी शके छे. क
स्वार्थ के लालचयी पण लोको आवा दुखोने गणता नथी.
जे लोको आ विघ्नोनो विजय करी आगळ वधे एटले पोतानी
धर्मविषयक प्रतिज्ञानुं रक्षण करे, विघ्नोथी कदापि न ढरे,
किन्तु वहु आनंद साथे तेनी सामे खडा रहे ते ज योग्य छे.

“ उवरविघ्न

तथा ते ज मनुष्य कांटा आदिथी नहीं ढरतो आगळ वधता
मार्गमां यदि तेने बुखार आवी जाय तो ते आगळ वधवामां
हिम्मत हारी जाय छे. एटले आगळ जवानी इच्छा छतां
बुखारना कारणाथी जइ शकतो नथी, छतां जवाने थोडुंघणुं
साहस करे तो पण तेना पण बराबर चालता नथी. एटले
कंटकविघ्न जीतवा पूरतुं जे बल होय तेना करतां पण तीव्र
अधिक बल ज्यारे होय त्यारे ज ते आगळ वधी शके. एवं अर्हीं
पण धर्मप्रतिज्ञा स्वीकार्या पछी कदापि झरीर संबंधी अनेक

व्याधियो आवी पडे. आथी वर्ष आराधनानी इच्छा छतां ते रोगोना कारणे धर्मने पटतो मूके माटे आ विज्ञो विशिष्ट अंतरायभूत होवाथी मध्यम विज्ञो बुखार तुल्य कहा; किन्तु जे पुरुष गमे तेवा व्याधिना समयमां पण पोतानी धर्मपति-ज्ञाओ अचल राखी नित्य कर्तव्य नियमोमां खामी आवधा न दे अने विशिष्ट उत्साहथी शुभ धर्मनी आराधना करे तो ज दर्शन्या प्रमाणे कंटकतुल्य हीनविज्ञजय अने ज्वरतुल्य मध्यमविज्ञजय नामे शुभ आशयनो आविर्भवि थयो छे तेबुं जाणी शकाय. आबुं अदृभूत बल प्राप्त थवाथी ज प्रथम कहा प्रमाणे ' ग्रहृति ' नामक आशयनी सफलता थाय छे.

" मोहजयविज्ञ "

फरी मार्गमां आन्धी, रजोदृष्टि, जलदृष्टि अने धूमस विगेरे होय तो तो उपरना बने प्रकारना विज्ञो जीतवालुं सामर्थ्य छतां घणा माणसो पूर्व-पश्चिम विगेरे दिशाओ भूली जवाथी मार्गमां ज इधरउधर आथज्या करे छे, उलटा मार्ग पर चढी जाय छे; किन्तु विवेकी पुरुष आवा संयोगोमां पण विशिष्ट विचारो करी पोतानी निश्चल बुद्धिनी परीक्षाथी निष्ठ-रपणे आगळ बध्यो जाय छे. अथवा बीजाओथी मार्गलुं ज्ञान करी तेनापर विश्वास राखी तीव्र उत्साहलुं अवलंबन करी मार्ग सन्मुख चाल्यो जाय छे तथाप्रकारे अर्हा पण धर्ममार्गमां

चालता थका कदाचित् मिथ्यात्वभावना उद्यथी घणा धर्मोमां
 क्यों धर्म सत्य हशे ? जैनधर्मना प्रवर्तको सर्वज्ञ हता के नहीं ?
 धर्मनुं फल परजन्ममां मलशे के नहीं ? निगोद विगेरे भावो
 कहा छे ते शुं सत्य हे ? आवा आवा मनना विभ्रमो-संशयो
 पैदा थाय एट्ले आत्मा तेनाथी व्याकुल थइ धर्मों अस्थिर
 परिणामी थइ जाय, सम्यकृतया धर्माराधन करी शके नहीं एट्ले
 मिथ्यात्वभावना कारणथी आत्मा धर्मपंथने छोडी अधर्मना
 मार्गे चडी जाय हे. माटे आ विघ्न अनर्थकारी जार्खा तेनो
 सर्वथा विजय ते ज करी शके के जे सम्यक् धर्ममार्गनी पोतानी
 अपूर्व शुद्ध-बुद्धियी परीक्षा करी चलितपरिणामी न थाय
 या तो अन्य गुरुदिको जे धर्ममार्ग दर्शावे तेना पर वरावर
 अद्भा-विभ्वास राखे अने मनना खोटा असदृशूत संशयोने
 आधीन न थाय. आ त्रणे प्रकारना विज्ञो आत्माने धर्मथी
 झष्ट करे हे, तो आत्माना निश्चल परिणति स्थिर करा,
 मनना विभ्रमोनो नाश करा जे धर्माराधन करवानुं अदृशूत
 बल धारण करे, कोइ पण विज्ञोथी पराभूत न ज थाय ते ज
 आत्मा धर्मपार्गना इष्ट स्थान प्रति पहोची शके हे. आवा
 आशयनुं नाम अब्र 'विघ्नजय' नामे त्रीजो आशय कशो हे.
 “ परामर्श ”

अब्रे आ त्रणे प्रकारना विज्ञो पैकी कंटक तुल्य शीत,
 उष्ण आदि परीसहस्र दीनविज्ञो मात्र धर्माराधनामां
 आत्माने कायर प्रमादी बनावे हे, अने ज्वर तुल्य रोगादिस

(१७६)

भृत्यम विद्धो धर्ममां प्रवृत्ति करवानी आत्मानी इच्छाओने पंद करे छे; किन्तु आत्माने सर्वथा धर्मप्रष्ट करी मिथ्यात्वना मार्गे घसडी शकता नथी. एटले ते विद्धो अहीं सामान्य कोटीना जणाव्या ज्यारे मोहजय नामे उत्कृष्ट विधन तो आत्माने अबला मार्गमां उतारी नांखे छे, एटले आ विधनने नाश करवाऊं सामर्थ्य जेमां होय ते आत्मा कदापि प्रथमना ते प्रकारना विद्धोथी पराभूत थतो नथी; अने उपरना वज्रे विद्धोथी ले पराभव पामे ते तो निश्चयेन त्रीजा नंवरना विधनथी पराभूत थाय ज. अतएव आ विधन जीतवानीं शक्ति प्राप्त करवी अधिक आवश्यक गणाय, कारण के प्रथम कहा प्रमाणे धर्ममां गति करनारने विद्ध तो जल आवे; माटे विद्धोथी ढरी धर्ममां गति न करवी या तो धर्म छोडी देवो तेनुं नाम धर्मापिणुं न ज कहेवाय किन्तु खरी रीते विद्धोनी सापा थइ धर्माराधन करवुं ते ज सत्य धर्मापिणुं कहेवाय अने तो ज ‘प्रवृत्ति’ नामक आशयानुं फल प्राप्त थयुं वरावर गणाय. अर्थात् आ ‘विधनजय’ करवो ए अहीं ‘प्रवृत्ति’ आशयानुं प्रधान फल गण्युं छे. आणी ज मूलकर्ताए कहुं ‘प्रवृत्तिफलः.’ संक्षेपमां—उपर कहा प्रमाणे जेझो विद्धोनो विजय करी धर्ममां ‘प्रवृत्ति’ करे तेझोमां मुख्य रीते ‘प्रणिधान, प्रवृत्ति’ अने ‘विधनजय’ आ आशयोनो आविर्भाव थयो छे एम प्रवृत्तिद्वारा जाणी शकाय.

“ ए रीते विधननो जय कर्या पछी अवश्य प्रस्तुत धर्मनी सिद्धि थाय, अतः ‘सिद्धि’ नामे चतुर्थ आशयानुं स्वरूप ग्रंथकर्ता अत्रे दर्शवी छे. ”

(१७६)

सिद्धिस्तत्तद्धर्मस्थाना-

वासिरिह तात्त्विकी ज्ञेया ।

अधिके विनयादियुता

हीने च दयादिगुणसारा ॥ ३-१० ॥

मूलार्थः—पोते अंगीकृत तद् तद् धर्मर्यादाओनी शास्ति
ते ज अश्र परमार्थभूत 'सिद्धि' नामे आशय जाणावो. आ
आशय त्यारे ज यथो जाणवो के ज्यारे पोतायी अधिक गुणी
जनो पर विनय आदि गुणयुक्त होय अने गुणहीन जनो पर
अलुकंपादि गुणप्रधान होय.

" सिद्धि-भेदो "

स्पष्टीकरण—आशयो-परिणामोना भेदो पैकी 'सिद्धि'
नामे चतुर्थ आशय छे ए वात आगल जणावी गया छीए.
'सिद्धिः'-निष्पत्तिः सिद्धि एटले निष्पत्ति तैयार याउं.
ग्रथम तो क्रियामां प्रवर्तयुं, वचमां उद्भवता विघ्नोनो विजय
करवो, एटले पछी वरावर क्रियानी सिद्धि-निष्पत्ति याय.
आ रीते आ आशयनो पूर्वोक्त आशयो साथे अनंतर संबंध
सुसंगतया बने छे, एटले आशय अधिकारयां आनी 'विघ्नजय'
पछी स्थापना वरावर योग्य रीते थाय छे. 'सिद्धि' वे प्रका-
रनी कही. एक तो परमार्थभूता तात्त्विकी अने वीजी अपर-
मार्थभूता अतात्त्विकी, अथवा व्यवहारिक कायों संबंधी अने

आत्मिक अधिकार संबंधी, जेथी आत्मानुं आलोक तथा परलोक उभय लोकमां कल्याण याय ते तो तात्त्विकी अने जेथी आत्मानुं कदाचित् आ लोक संबंधी ज हित सधाय ते अतात्त्विकी व्यवहार संबंधी। प्रस्तुत अधिकारमां जे सिद्धि नामे चतुर्थ आशय कहो छे ते केवल तात्त्विक-आत्मिक कल्याण संबंधी ज आशयवाळो जाणावो, परंतु व्यवहारिक कायोंनी सिद्धिरूप आशय अर्ही न लेवो। अतएव ग्रंथकर्त्ताए आ सिद्धिनुं ‘तात्त्विकी’ ए व्यवच्छेदक विशेषण आप्युं, तथा आ सिद्धिनो सत्य अर्थ आचार्यशी पोते ज दग्धावे छे।—

“सिद्धि-स्वरूप”

‘सिद्धिः—तत्त्वच्छर्मस्थानावासिः’ सिद्धि एट्ले ते ते धर्मस्थानंकोनी प्राप्ति, अर्थात् पूर्वे आत्माए जे जे धर्म संबंधी मर्यादाओ—प्रतिज्ञाओ स्वीकारी होय तेनी अखंड रीते वरावर समाप्ति थवी, आत्माने ते ते धर्मप्रतिज्ञाना संस्कारोथी वरावर धासित करी उत्तम परिणामीवान् वनाववो। जेमके—सामायिक, पूजा आदिना नियमो लीधा पछी निर्विघ्नणे अखंडतया दोष रहितपणे पूरा पाल्वा। टीकाकार अर्ही खुलासो करे छे के— “विवक्षितस्य—धर्मस्थानस्यार्हिंसादेरवासिः प्राप्तिः सिद्धिरूप्यते” विवक्षित—स्वीकृत धर्मस्थान जे अर्हिंसा आदि तेनी प्राप्ति—छाप ते सिद्धि कहेवाय छे। एट्ले आत्मा अर्हिंसा आदि ब्रतोनी वरावर निष्पत्ति जे आशयना वलथी

करे ते आशयनुं नाम 'सिद्धि' जाण्युं. नितान्त आ आशयना जोरथी आत्मा परमार्थभूत धर्ममां कृशलता प्राप्त करे छे. मात्र लोकद्रष्टिए धर्ममां निपुणता करवी ते कांइ सिद्धि न कहेवाय कारण के बीजा प्रकारनी निपुणताथी कांइ आत्मानुं कल्याण थाँ नथी, किन्तु तेनाथी तो मात्र यद्विक्षित् सुख के पानप्रतिष्ठा मले छे; माटे ज आ सिद्धिने अताच्चिकी दर्शनी, ज्यारे पहेली सिद्धिथी निश्चयेन आत्मानुं अद्भुत कल्याण थाय छे. अतएव आने ताच्चिकी ए विशेषण आयुं. वधुमां परमार्थ तथा धर्ममार्गमां निपुणता प्राप्त थवाथी आत्मा आकरा प्रबल कषायोथी निर्मुक्त थाय छे. हेतु ए के-प्रबल कषायोदयवान् आत्मा कदापि उत्तम धर्ममार्गमां पवित्र आशय साथे प्रवृत्ति करी शकतो नथी, किन्तु जेना कषायो नरप हीन बली यथा होय ते ज प्रवृत्ति करी शके, अतः आ आशयना प्रबल प्रतापथी आत्मा जेना साथे नित्यना वैरो होय तेनो पण नाश करे छे. एट्ले अमुक अंशे मैत्री, प्रमोद आदि भावनाओना संस्कारवालो वने छे माटे पण आ आशयने ताच्चिक आशय कहो छे.

" प्रधान सिद्धि "

फरी यथकर्ता आ आशयनी प्राधान्यता देवाड्वा उत्तरार्थमां बीजा वे विशेषणो आणी अधिक पुष्टि करे छे. "अधिके विनयादियुता" एट्ले स्वात्माथी अधिक गुणवान् जे सज्जनो, वर्डीलो, महाएुरुषो पर वहुमान, विनय आदि करवा, अथवा तेवा श्रेष्ठ पुरुषो के

जेमणे सूत्र-अर्थनो अभ्यास कर्यो होय, महाब्रतोनी भावनाओं-
नो अभ्यास जेओए कर्यो होय एवा तथा साक्षात् तीर्थ समान
गुरुमहाराज आदिनी भक्ति, सेवा, वैयाक्ष, विनय आदि
करवा. भावार्थ ए के—धर्मपार्गनी सिद्धि आ गुणो सिवाय अपूर्ण
ज कहेवाय, एठ्ले सिद्धिनी सिद्धि करवा आ' गुणो तो अव-
श्यमेव आत्माए प्राप्त करवा जोइए. जे आत्मा गुणीजनोनो स-
त्कार विनय आदि करे छे ते ज आत्मा धर्मपार्गनी सिद्धि पामे
छे, अतः विद्वानोए स्वात्माने गुणी बनाववा माटे प्रधानपार्ग
ए ज दर्शन्यो छे के—तीर्थभूत गुरु आदिनो विनय विगेरे करवो.
अत्र महाब्रतो तथा दर्शनादिनी भावनाखुं स्वरूप आचारांग
तथा तत्त्वार्थसूत्रमां कहुं छे ते विचारखुं.

“ ब्रत—भावना ”

१ “ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच ” त० अ०७
सू० ३। जिनभगवंतोए प्रत्येक महाब्रतोनी स्थिरता माटे
पांच पांच भावनाओ दर्शावी छे. ‘ प्राणातिपातविरमण ’ नामक
पहेला महाब्रतनी रक्षा माटे—इर्यासमिति—साढात्रण हाथ जेटली
जमीनमां बरावर जोइने चालवुं, मनोगुंसि—अशुभ विचारोने
बंध करवा, एषणासमिति—४२ दोष रहित आहार ग्रहण
करवो, आदानमंडमच्चनिक्षेपणासमिति—वस्त्र—पात्र आदि तपासी-
पद्धिलेही पछी ग्रहण करवा के मूकवा, आहारैदि तपासीने
खावा, ‘ सृषावादविरमणब्रत ’ नामे वीजा ब्रतनी रक्षा माटे—
द्वितमित्वं वचन बोलवुं, कोर्खेनो त्याग, लोभेनो त्याग, आकस्मिक

आप छतां यदि स्वात्मा अनुकंपाहीन होय, हुखीओनो
वेली परोपकारी न होय तो ते धर्मनी सिद्धि करी शकतो नयी;
माटे अहीं ग्रंथकर्ता वधु विशेषण आपी खुलासो करे छे के—‘हीने
दयादिगुणसारा’ पोतानी अपेक्षाए न्यूनगुणी जनो पर
अनुकंपा—दयाभाव राखवो, अर्थात् गुणहीन मनुष्योनी प्रवृ-
त्तिओ, देखी तेना पर द्वेष न करवो किन्तु तेओना पर दयाना
विचारो करवा. एट्ले ते लोको पण गुणवान वने तेवी भावना

तर्थो मरणभयाथी निडरता, हास्ये आदिनो त्याग करवो.
‘अदृचादानविरमण’ ब्रतना रक्षण माटे—विचारपूर्वक शुद्ध
स्थाननी याचना, जैरुर होय त्यारे अवग्रहनी याचना करवी
पण पहेलाथी संग्रह न करवो, मैनोपेव वस्तुनी याचना करवी,
एक गैळ्यना सुनिश्चो पासे जन्यानी याचना करवी, गुरु-
आज्ञाथी पान भोजन लेवा. ‘मैशुनविरमणब्रत’ माटे—ज्यां
खीओ, पशुओ, नपुंसको रहेता होय एवा स्थाननो त्याग करवो,
खींयो साथे प्रेमालाप न करवो, कामिनीयोहुं रूप इंद्रियोहुं
अवलोकन न करवुं, ग्रंथम सेवेल भोगादिहुं स्मरण न करवुं,
लिङ्घै पदार्थोनो त्याग करवो. ‘परिग्रहविरमण’ ब्रत माटे
पांचे इंद्रियोना इष्ट विषयो पर मोह अने अनिष्ट विषयो पर
द्वेष न करवो. आ प्रमाणे नित्य भावनाओनो अभ्यास कर-
वाथी आत्मा महाब्रतोने अविचलपणे पाली शके छे ने लेश
पण विनो उद्भवता नयी माटे ज आने महाब्रतोनी भावनाओ
कही. पुनः पुनः अभ्यास करवो, विचारवुं, ज्ञान करवुं तेहुं नाम

राखवी, आटलुं ज नहीं परंतु आपत्तिग्रस्तनो उद्धार करवा प्रयत्न करवो, दुखीयोने दान आपबुं, तेओनुं दुःख दूर करवुं विगेरे चेष्टा करवाथी आत्मा योग्य रीते धर्मनी सिद्धि करी शके छे. अहीं अधिकगुणी तथा हीनगुणीनुं ग्रहण करवाथी मध्यमगुणीजनोनुं पण ग्रहण यह जाय छे, अतः मध्यमगुणी जनो पर पण अनुकंपा, उपकार विगेरे करवा, आ रीते अधि-

भावना. आलुं विशेष स्वरूप तत्त्वाथेटीका अने आचारांगना भावनाध्ययनमां वहु सारी रीते दर्शनब्युं छे, तथा प्रशस्त अने अप्रशस्त ए रीते भावना बे प्रकारनी पण कही छे. दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वैराग्य संबंधी जे वारंवार अभ्यास करवो ते प्रशस्त भावना अने ओष, लोभ, मोह आदि पापोनो वारंवार अभ्यास करवो ते अप्रशस्त भावना.

“ दर्शन—भावना ”

दर्शन आदि भावनानुं स्वरूप खास विचारवा योग्य होवाथी अमे अहीं टिप्पणीमां आपबुं उचित धार्युं छे—“ तीत्यगराण्य मगवधो एवयणपावयणिश्चइसहूणं । अभिगमणनमण-दरिसणकित्यसंपूर्णायूणणा ॥ १ ॥ जम्माभिसेयनिक्षम-णचरणनाणुप्या य निवाणे । दियलोअभवणमंदरनंदी-सरभोमनगरसुं ॥ २ ॥ अहूवयमृजिते गयगगपयए य घम्म-चक्के य । पासरहाक्कनगं चमरुप्पायं च चंदामि ॥ ३ ॥ “ तीर्थकर भगवंतो, द्वादशांगधारी आचार्यो, केवलज्ञानी, मनःपर्यायज्ञानी, अवर्धिज्ञानी, चौदूर्पूर्ववरो, आमौषवी

(१८२)

कुण्डीनो विनय विगेरे, मध्यमण्डी तथा हीनण्डी पर दयाभाव करवायी आत्मा धर्मपार्गनी बरावर सिद्धि करवाने समर्थ बने छे. आवी चेष्टाओद्वारा धर्मी आत्मामां सिद्धि नापनो चतुर्थ आशयनो जन्म थयो छे एम जाणी शकाय. दुंकमां-

आदि लब्धिघरो आदिनी सामा जबुं, तेअोना दर्शन, गुणानुषाव, शुभद्रव्योथी पूजा—नमस्कार आदि करवा. आम करवायी नितान्त स्वसम्बकूत्वनी शुद्धि थाय छे; तथा जिनेश्वरोना जन्म, दीक्षा, केवल, निर्बाणभूमिना देवलोक, भेषपर्वत, नंदी-शरद्वीप, पातालमुवन, आविना शाश्वत चैत्योना, अष्टापद, रैवताचल, गजाप्रपद, तक्षशिला बाहुबलीजीनी राजधानी, धरणेन्द्र महाराजे ज्यां पार्श्वनाथजीनो महिमा कर्यो हतो ते स्थानमां, रथावर्तपर्वत, जे स्थलेथी वीरभगवाननुं शरण लह चमरेन्द्रे उत्पात कर्यो हतो, आ सर्व स्थानोना दर्शन, स्पर्शन, पूजा, नमस्कार करवायी पण समकित निर्मल थाय छे” पुनः “गणियं निमित्त जुक्ती संदिही अवितह इमं नायं। इय एगंतमुवगया गुणपचहथा इमे अत्था ॥ १ ॥ गुणमाहप्पा इसिनामाकित्यां सुरनरिंदपूया य । पोराणचेष्टाणि ग इय एसा दंसये होइ” ॥ २ ॥ “पवित्र बुद्धिमान् आत्मा-आ आचार्यभगवंत बीजगणित तथा निमत्तशाखोना पारंगत छे दृष्टिवादमां उक्त नानाप्रकारना द्रव्यसंयोगो-चूणों वह सरस रीते जाए छे. अचल समकित अने अविसंवादि निर्दोष ज्ञानना धरनार छे इत्यादि रीते आचार्योनी गुणप्रसंसा करवायी, तथा

ज्यारे आ प्रकारनो सिद्धि नामनो आशय प्राप्त थाय त्यारे ज पूर्वना त्रणे आशयो सफल थाय, अन्यथा ते नकमा जेवा गणाय; माटे उपरोक्त त्रण आशय पास्या पछी आ आशयने पासवा प्रयत्न सेववो उचित गणाय. तथा सिद्धिना अंगना जे जे गुणो आर्यामां आचार्यश्रीए दर्शाव्या ते ते गुणोनी प्राप्ति थाय त्यारे ज सिद्धि नामना आशयनी सिद्धि थइ जाणवी।

पूर्व महात्माओङुं नामस्मरण, देवेंद्र नरेंद्रोप करेल पूजा आदिनी स्तुति, प्राचीन मंदिरोनी पूजा विग्रे करवाथी पोवानुं समकित खराबर निर्भलतर करे छे. ”

“ ज्ञान—भावना ”

तत्त्वं जीवाजीवा नायव्वा जाणणा इहं दिड्हा । इह कञ्ज-
करणकारगसि कारगसिद्धी इह वंधमुक्खो य ॥१॥ घट्ठो य
वंधहेड वंधण वंधपफलं सुकहियं तु । संसारपवंचोवि य इह
यं कहिश्चो जिणवरेहि ॥ २ ॥ नार्ण भविस्सर्ह एवमाइया
यायणाइयाओ य । सज्ज्ञाए आउत्तो गुरुकुलवासो य इय नाणे
॥३॥ “ आ भूतलमां सत्य पदार्थनुं स्वरूप प्रतिपादन करनार
केवल जिनप्रवचन ज छे, तेम ज साची श्रद्धा तेनाथी ज आ-
त्माने मले छे कारण के जीव अजीव आदि पदार्थनुं परमार्थं
स्वरूप तेमां दर्शाव्युं छे; तथा मोक्षरूपी कार्य अने तेने साधनार
सम्यक्त्व ज्ञान—चारित्ररूपी कारण, पुनः तेमां प्रवर्तनार साष्टु
ए रीते कार्य, कारण तथा कारकनुं स्वरूप पण आईत प्रव-
चनमां ज देखाउयुं छे. कर्मनो वंध, कर्मोनो नाश, आत्मा आठ

(१८४)

ए प्रमाणे सिद्धितुं स्वरूप कहा पछी तेना फत्तभूत
‘विनियोग’ तुं स्वरूप कहे छे.—

कर्मधी बद्ध क्षे, भिक्षात्व, आविरति, प्रमाद, कषाय, योगे
ए रीते कर्मबंधनां हेतुओ, कर्मतुं स्वरूप, चार गतिरूप कर्मतुं
फल, संसारप्रपञ्चतुं स्वरूप अने आत्महितकारी पंथो ए सर्व
अहीं जिनप्रवचनमां ज दर्शाव्युं क्षे, किन्तु औछ, सांख्य,
वेदान्त आदि कोइ पण मतमां दर्शाव्युं नयीं. आंवा आंवा
विचारो करवाथी आत्माने जहर तत्त्वज्ञाननी प्राप्ति थाय क्षे,
तथा वारंवार अभ्यास करवाथी पण ज्ञाननी लाभ थाय क्षे.
सूत्र—अर्थनो स्वाध्याय करवाथी अने गुरुकुलमां वास करवाथी
ज्ञाननी प्राप्ति थाय क्षे.”

“चारित्र-भावना”

“साहुमहिंसा धम्मो सज्जमदत्तविरह य वर्मं च ।
साहुपरिग्रहविरह साहु तवो वारसंगो य ॥ १ ॥
वेरुगमप्यमाओ एगगो भावणा य परिसंगं । ह्य चरणमण-
गयाओ भणिया इचो तवो बुच्छं” ॥ २ ॥ “अहिंसा
मुख्य धर्म, सर्वथा हुद्ध सत्य, अदत्तनो एकान्व त्याग, नववाङे
हुद्ध ब्रह्मचर्य, मूर्च्छारूप अपरिग्रहनो त्याग, वार भेदवाली
तपस्या—ए सर्व अत्र जिनमतमां ज कहुं क्षे. वैराग्यनी भावना—
संसारसुखनी गर्हा, अप्रमाद सांस—मदिरा विगेरे कर्मबंधना
कारणो कहा क्षे. एकाग्रमावना—ज्ञान दर्शनमय मारो आत्मा

सिद्धेश्वोत्तरकार्य
 विनियोगोऽवन्ध्यमेतदेतस्मिन् ।
 सत्यद्वयसंपत्या
 सुन्दरमिति तत्परं यावत् ॥ ३-११ ॥

शाश्वतो तथा एकलो जे क्षे अने सिवाय अन्य बाहु पदार्थो अशाश्वत—विनाशी होय क्षे—आवा आवा विचारो करवायी आत्मा चारित्रभावनी पुष्टि करी शके छे.

“ तप—भावना ”

किह मे हविष्ठऽवंज्ञो ? किं वा पहू तवं काउं । को इह दंधे जोगो खिचे काले समयभावे ॥ १ ॥ उच्छ्राहपाल-याए इति तवे संजमे य संघवये । वेरगोऽशिक्षाई होइ चरिते इहं पगाण् ” ॥ २ ॥ तपस्यावडे मारो दिवस सफले क्यारे यशो । हुं कह तपस्या करी शकीश ? क्युं क्षेत्र अने द्रव्य आदिमां हुं तपस्या करी शकुं ? अब तप भाटे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आश्रयी विचार करवो. द्रव्य—वाल, चणा विगेरे ज लेवा, क्षेत्र—ज्यां स्तिग्रह पदार्थो बधारे मले, काल—शीत अंगर गरमानीो समय, भाव—अखेदपणे—ए रीतनो विचार करी तपोव्युद्धि थाय तेमें तप संबंधी भावनाओ विचारखी. फरी अणशाण भाटे स्वात्माने उत्साहित करवो. पूर्वे लीबेत नियमोनुं बराबर पालन करवुं. संयम—इंद्रिय भन आदिना निग्रहरूप, संहनन—अंगीकृत तप आदिनो निर्वाह

मूलार्थ—सिद्धिनुं उत्तरकार्य ग्रथात् फल विनियोग
 एट्ले जे धर्मस्थानोनी सिद्धि यथा पछी अन्य जनोने ते धर्म-
 स्थानो योग्यतया पामाडवा. आ विनियोग नामक लक्षण पाम्या
 पछी 'अहिंसा, दान' आदि धर्मो कदापि निष्फल थता नयी,
 किन्तु परंपराए अहिंसा आदि धर्मस्थानो सुंदरताने पामी उ-
 त्कृष्ट रूपने धारण करे छे. भावार्थ निश्चयतया भोक्षने अर्पें छे.

स्पष्टीकरण—

पूर्वना श्लोकमां 'सिद्धि'ना उपायो वताव्या.
 अहिं सिद्धि कर्या पछी 'विनियोग' नामक
 धर्मनुं पांचमुँ लक्षण आचार्य दर्शवै छे. प्रथम तो
 आत्माने अमुक अमुक धर्मोनी योग्यतावाळो संपूर्णतया
 बनाववो. तेम यथा पछी अन्यने पोताना समान करवा
 ग्रामधर्मो अन्यमां विनियोग-स्थापन करी धर्मस्थानोनी अवि-
 च्छिज्ञता करवी, जेथी स्वात्मा जन्मातरमां मुगमतया ते ज
 धर्मो पामी अखंड कल्याणनो अनुभवी बने. ए ज भाव अहीं
 आचार्य स्पष्ट समजावे छे.

करनार वज्ररुपभन्नाराच आदि, वैराग्यभावना-अनित्य आदि
 द्वादश भावना, आ सर्व विचारो तथा भावनाओ आत्मानी
 शुद्धि अर्थे कही छे. संज्ञेपमां आ सर्व विचारो जिनेश्वरोदे
 कर्मनिर्जरा अने कल्याण शर्ये जणाव्या छे माटे उपर कहा
 ग्रमाणे अर्थी अने धर्मी मनुष्ये तेनो वारंवार अभ्यास करवो
 जेथी महाब्रतोनी अचलता अने दर्शन-ज्ञान-चारित्रनी निवान्त
 पुष्टि याय.

प्रथम पदार्थनी सिद्धि—उत्पत्ति अने पछ्ची ज तेनो व्यापार कराय, अतएव सिद्धिनुं उच्चरकार्य—फलकार्य ‘विनियोग’ व्यापार—स्थापन नामे पांचमो आशय सिद्धिना फलरूपे कहो। एटले अर्हिसा, सत्यवाक्, ब्रह्मचर्य, दान, पूजा विग्रेनी पूर्ण कूशलता आव्या पछ्ची ज अन्य आत्माने ते ते कायोंमां जोडवा ग्रथल करवो। भावार्थ ए के—स्वआत्मामां ग्रत्येक धर्मस्थानो प्राप्त यथा पहेला, योग्यता आव्या पहेला, वरावर परिणाम्या पूर्वे, विधि ज्ञान अने स्वरूप समज्या विना अन्यने उपदेशवा ग्रथत्न करवो ते विना रसवतीए भोजननो आग्रह करवा वरो-वर कहेवाय। एवं अपूर्ण धर्मस्थान अवस्थामां अन्यने उपदेश करवाथी स्व अने पर बन्नेने हानिकारक याय छे। आ विनियोग नामे आशय आव्या पछ्ची अर्हिसा आदि धर्मस्थानो कदाचिपि निष्फल बनतां नथी एटले अर्हिसादि धर्मस्थाननुं मूल्य फल निर्जरा करवा भाये आत्मा नितान्त धर्ममय बने छे, तेमज अन्यने उपदेशवार्थी ते ते धर्मो अविच्छेदरूपे कायम घन्या रहे—नाश न पामे। भावार्थ ए के—विनियोगकर्ता जो कदाचित् धर्मभावथी खसी पण जाय तथापि कनककलशमयं ए न्याये फरी धर्म संस्कारोनी जागृति यवाथी जन्मांतरनी परंपराए ते धर्मो कायम स्थिर रहे छे अने परिणामे उच्च धर्मस्थाननी सरहद भूमि पर आत्माने दोरी जइ यावत् मोक्षरूप उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करावे छे अतएव ग्रथम धर्मनी वरावर प्राप्ति करवी अने त्यारघाद स्वपरना उपकार माटे अन्यने

(१८८)

स्वसमान बनाववा जरूर धर्मस्थाननो विनियोग करवो जेझी धर्मस्थानोना संस्कारो जन्मांतर माटे बन्धा रहे. धर्मसिद्धि थया पछी जरूर 'विनियोग' नामे आशय प्रगटे अने त्यारे ज पंचांगपूर्ण धर्म प्राप्त थयो कहेवाय. प्राप्तधर्मनुं मुख्य फल स्व समान परने करवो ए ज छे अने 'विनियोग' नुं लक्षण पण ते ज कहुं छे. आ 'विनियोग' आशय आव्या पछी धर्मी आत्मा माटे कांइ पण वाकी रहेतुं नथी.

अहीं 'विनियोग' नुं स्वरूप देखाहवाथी धर्मना पांच आशयोनुं स्वरूप संपूर्ण थयुं. आ पांचे आशयो क्रियाद्वारा ज जणाय छे, माटे आशयनी ज महत्ता बताववा ग्रंथकर्ता जणावे छे—

आशयभेदा ऐते

**सर्वेऽपि हि तत्त्वतोऽवगत्तव्याः ।
भावोऽयमनेन'विना**

चेष्टा द्रव्यक्रिया तुच्छा ॥ ३-१२ ॥

मूलार्थ—पहेला कहा ते सर्वे परमार्थयी निश्चयतया आशय—अंतकरणना विचारभेदो-प्रकारो जाणवां. आने ज शास्त्रकारो 'भाव' कहे छे, आना विना केवल मन-बचन-कांयानी चेष्टा-व्यापार असार द्रव्यक्रिया जाणवी।

स्पष्टीकरण—

द्रव्य अने भाव एम वे प्रकारे क्रिया शास्त्रोमां

कही छे, आ वजे क्रियानुं स्वरूप पांच आशयतुं स्वरूप
ध्यानमां उत्तरवाथी सहजतया समजाय तेबुं छे, अतएव श्रीमान्
इरिभद्रस्त्रिजीए 'एते सर्वेऽपि' ए पदथी पूर्वे कहेल प्रणिधान,
प्रवृत्ति, विवृत्य, सिद्धि, विनियोग, ए पांचे परमार्थथी
आशय—अभिप्रायना भेदो—प्रकारो जाणवा एम कहुं. मूलमां
आपेल 'तत्त्वतो' ए वाक्यनो भाव आ छे के—जो के प्रणिधान
आदि सर्वे केटलेक अंशे क्रिया—प्रवृत्तिस्तु ज ह्ये तो पण
अंतःकरणनो भाव क्रिया विना ओलखी न शकाय एटले
क्रियानुं कारण अंतःकरणनो भाव ज होवाथी ए सर्वे
'तत्त्वतो' 'परमार्थथी' आशयभेदो जाणवा. अर्ही आ-
शय, अने, भावमां शुं तफावत छे ? एना उत्तरमां मूलकर्त्ता ज
'भावोऽयम्' ए वाक्यथी स्पष्टपणे. आ आशयभेदो भाव
ज छे एम कहे छे. आ उपर वतावेल भावो—आशयो विना
जे काँइ कायाद्वारा शुभक्रियानो व्यापार कराय तेनुं ज नाम
द्रव्यक्रिया समजवी अर्थात् तेवी क्रियाथी आत्मकल्याणस्तुपी
फल मलतुं नथी माटे अने 'अप्यहाणे दब्ब सहो' ए
वचनथी द्रव्य शब्द अप्रधान अर्थनो वाचक होवाथी भाव
विनानी द्रव्यक्रिया तुच्छ जाणवी अर्थात् जे क्रियामां कर्तनी
क्रियानुं ज्ञान अने 'भावे उपयोगः' आ वाक्यथी ते ज
क्रियानुं पवित्र ध्यान—उपयोग ते क्रिया स्वफल—मोक्षसाधक
होवाथी तेने आचार्योंए प्रधान भावक्रिया अने एथी विपरीत
क्रियाने भाव—उपयोगना अभाववाली होवाथी अप्रधान
द्रव्यक्रिया कही छे.

(११०)

जे कारणी द्रव्यक्रियाने तुच्छ गणी भावनी प्राधान्यता
कही ते कारण शीमान् हरिमद्रस्तुरिजी बतावे हो—

अस्माच्च सानुबन्धा-

च्छुच्छ्यन्तोऽवाप्यते द्रुतं क्रमशः ।
एतदिह धर्मतत्त्वं

परमो योगो विसुक्तिरसः ॥ ३-१३ ॥

मूलार्थः—उपरोक्त भावनी परंपरायी ज क्रमे क्रमे
शीघ्र अन्तःकरणनी शुद्धिनो वधारो प्राप्त थाय हो एटले
अविच्छिन्न भावनी परंपरा चाले हो, तेमज उपरोक्त भाव ए
ज धर्मनुंखास तत्त्व हो अने भाव ए ज परम योग हो—भाव
ए ज विशिष्ट मुक्तिनो रस हो.

स्पष्टीकरण—

पूर्वे कहेल पांच आशयोनो वारंवार अभ्यास कर-
वायी भावनी दृढ़ता वधे हो. आत्मामां शुभ संस्कारो स्थापवा
शुभक्रियानो वारंवार अभ्यास करवो एम शास्त्रो उप-
देशे हो. अतएव 'प्रणिधान' आदि भावोनो अभ्यास
करवायी तेनी दृढ़ता थाय अने तेथी अनुवंश प्राप्त थाय हो.
पछी तेनी अविच्छिन्न परंपरा चाले जेथी अतःकरणनी तीव्र-
शुद्धि शीघ्र दीर्घकालना विलंब वगर पमाय हो. अन्तमां आ
जन्म आधवा अन्य जन्ममां तीव्रशुद्धि थवायी अधिक कर्मक्षय
आत्मा करे हो. अर्हीं आ भाव ज धर्मतत्त्व हो के अन्य कांड

धर्मतत्त्व छे ? एना उत्तरमां ग्रंथकर्ता 'एतदिह धर्मतत्त्वं' ए पद्धथी पूर्वे कहेल पांच आशयो-भावो ए ज सत्य रीते धर्मतुं तत्त्व छे अर्थात् भाव वगर अन्य कांइ पण धर्मतत्त्व नस्थी; भाव विनानो धर्म उपरनी टापटीप ज कहेवाय. 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' मनना विचारो-विकल्पनो रोध करवो ते ज 'योग' कहो छे. आ योगनी प्राप्ति शुभ अनुष्ठाननो व्यापार करवाई ज वने, एठले मनने शुभध्यान, अभ्यास, हश्चरुणस्मरण आदिमां जोडवाई अन्य विकल्पे वंघ थाय छे अने परिणामे निर्विकल्प दशामय मन वने छे. अहीं उपरना आशय-भावने पामवाई चित्तनी शुद्धि ने छेवटे संपूर्ण कर्मक्षय यवाई "मोक्षेण योजनात्योगः" 'मोक्षनी साथे जे संवंघ करावी आपे ते ज वास्तविक योग कहेवाय' ए प्रमाणेनो योग-शब्दार्थ आ भावोने लागु पडवाई आ पांच भावोने ज शास्त्रकार 'परमयोग'पणे संवोधे छे; तथा आ भावमां ज विशिष्ट कर्मक्षयरूप मुक्ति आपवानी शक्ति-प्रीतिविशेष रस होवाई भाव ए ज 'विमुक्तिरसः' जाणवो. परमार्थ ए के-भाव ए ज धर्मतत्त्व, परमयोग अने विमुक्तिरस छे. आ हेतुथी प्रथम तत्त्वज्ञो उपरना आशयो प्राप्त करवा ए ज फलितार्थ अने धर्मतत्त्वनो मर्यादार्थ छे.

उपर 'पांच आशयद्वारा मननी तीव्रशुद्धि थाय' एम काणुं अने प्रथम 'शुद्धि पापना क्षयथी थाय' ए प्रमाणे कहेवायुं. हवे पाप तो अतीत-अनादि काळमां वारंवार

(१६२)

अनेकधा आत्माए सेव्युं तो पापस्वभावभूत आत्मा पापनो
त्याग करी 'पांच भावनी' ज अभिलाषा करे अने पापने
बहुमान भावथी न माने ए केम दने ? अर्थात् पूर्व कालयी
जैनी साथे गाढ संवंध—तन्मयता छे एवा पापभावने मूकी
शुभ आशयोनी प्राप्ति आत्माने क्यांथी थाय ? परमार्थ
ए के न ज याय, ए शंकाना निरसन माटे आचार्य
हरिभद्रस्त्रिजी कहे छे—

अमृतरसास्वादङ्गः

कुभक्तरसलालितोऽपि बहुकालम् ।

त्यक्त्वा तत्क्षणमेनं

वाञ्छत्युच्चैरमृतमेव ॥ ३-१४ ॥

सूलार्थः— अमृतना भोजननो स्वाद जाणनार लांवा
कालयी तुच्छ भोजनना रसथी पूष्ट ययेल होय तो पर्य
अमृत जे बखते मले ते ज क्षणे तुच्छ भोजनने त्यजी दह
केवल अमृतना भोजननी ज इच्छा राखे छे.

स्पष्टीकरण—

स्पष्टिकरण— जेम कोइ मनुष्य दरिद्र कुहंवार्म जन्म
पाएयो तेने जन्मयी ज तुच्छ मकाइ, जुवार आदिना भोजन
मले, तेनायी ज ते मोटो थयो होय; परंतु अन्य स्वादिष्ट उच्चम
भोजन देख्या पण न होय तो पछी तेणे देवताओं भोज्य
अमृतभोजन तो क्यांथी देख्यु होय ? आ मनुष्य पर कोइ

(१६३)

देवादि तुष्ट थाय अने अमृतभोजननो स्वाद, तेना गुणो, तेनुं स्वरूप अने तेनी दुर्लभता तेने बतावे, एटले तुरत ज आ पेलो मनुष्य लांवा कालनुं पोतानुं तुच्छ भोजन छोडी दइ ते ज उच्चम-दुर्लभ देवभोज्य अमृत भोजननी इच्छा करे छे, पण दीर्घ कालना कुभोजननी चाहना करतो नयी.

तथाप्रकारे—

एवं त्वपूर्वकरणात्—

सम्यक्त्वामृतरसश्च इह जीवः ।

चिरकालसेवितमपि

न जातु वहुमन्यते पापम् ॥ ३-१५ ॥

मूलार्थ— एवी रीते अपूर्वकरण नामे उच्चम अध्यवसा-यथी सम्यक्त्वरूपी अमृतरसनो ज्ञाता आत्मा अर्ही दीर्घ कालथी अनुभवेला एवा पण पापोने कदापि काले वहुमाननी दृष्टिथी मानतो नयी-इच्छा करतो नयी.

“ सपष्टीकरण ”

यथाप्रवृत्तिकरणना वलथी आत्मा शुद्ध परिणातिमय वनी ग्रंथिभेदनी भूमिका पर आवीने उभो रहे छे, एटले विशुद्धतर परिणामना वलथी ग्रंथिभेदनी किया करे छे. त्यारपछी अनादिथी अप्राप्त अने अतपव अपूर्व-नवीन एवा अपूर्वकरण नामे अध्यवसायविशेषथी शुद्ध तच्चमार्गनी सम्यक्त्वना

(१६४)

अपूर्व लाभने पाये हें, जेणी अहीं आत्मा हिसा-अहिसा, सत्य-असत्य, त्यज्य, आदेय, हेय, भोग्य-अभोग्य, याह-अयाह, देव-कुदेव, गुरु-अगुरु, धर्म-अधर्म, तत्त्व-अतत्त्व, पापकारणो-पुण्यकारणो विग्रेरे सर्वे पदाथोनै यथार्थतया निरीक्षे हें, अने पछी विवेकने आदरी अपूर्व आनंदने अतु-भवे हें एटलुं ज नहीं किन्तु क्रोधादिनो उपशम, संसार पर अप्रेय, विषयोथी कंठाळो, दीन-हीन-दुःखी पर दयालु, तत्त्वमां ज प्रेम अने अतत्त्व पर अश्रद्धा प्राप्त करी, संसारना कारणोनी असच्चि लावी एकान्त निःश्रेयसभावना कारणो प्रति आत्मा आत्माने प्रेरे हें. एटले आ-प्रकारे अपूर्वकरण अध्यवसायना बलथी सम्यक्त्वरूपी अमृततुं पान कर्या पछी, अथवा सम्यक्त्वतुं वरावर स्वरूप जाण्या पछी दीर्घि कालथी आसेवेल विपरीत मान्यता, झान, झानी, धर्म, देव आदिनी निन्दा, नाश, आशात्मारूप पापोने बहुपानभावथी कड़ापि ते आत्मा मानतो नथी.

अहीं अमृतरस ते सम्यक्त्व अने पाप ते मिथ्या रुचि अथवा प्रबचन-संघ प्रथम गणधर, द्वादशांगी विग्रेरे, तेनी निन्दा, उपवास, आशात्मना विग्रेरे. पूर्वना क्षोकमां आ विषय समजवा माटे ग्रंथकार प्रथम द्वष्टांत कही गया एटले आ द्वार्घान्तिकनुं स्वरूप अहीं जणाव्युं. पूर्वे दीर्घिकालिक जेम कुभोजनने अमृ-तनो स्वाद जाणनार इच्छतो नथी तेम अहीं कुभोजन समान दीर्घिकालिक अभ्यस्त मिथ्यात्मादि पापोने अमृतभोजन तुल्य

(१९५)

ना स्वरूपने जाणनार कदापि इष्टपणे मानतो नथी.
र्थं ए के—मिथ्यात्वादि पापोनी इच्छा ज्यां सुधी समकि-
स्वरूप यथार्थ जाण्युं नथी त्यां सुधी ज आत्मा करे छे,
समकितने ओकर्ल्या पछी करतो नथी.

‘सम्यक्त्वरूपी असृतरसने जाणनार आत्मा
पि पापने इच्छुतो नथी’ एम कहुं, तो पछी जेने कोइ
रना सामान्य विशेष ब्रतो—नियमो नथी एवो सम्यक्त्वधारी
। जगतमां पाप करे छे एम प्रत्यक्ष अनुभवाय छे तेनुं शुं ?
प्रश्नानुं समाधान कर्या पछी आचार्यश्री आ प्रकरणनी
सि करे छे.

यद्यपि कर्मनियोगात्
करोति तत्तदपि भावशून्यमलम् ।
अत एव धर्मयोगात्
चिद्रं तत् सिद्धिमाप्नोति ॥ ३-१६ ॥

सूलार्थ—जो के कर्मना संयोगथी ते ते पापकर्मों सम-
‘तधारी आत्मा करे छे, तो पण ते आत्मा ते ते पापो विजा-
वथी करतो होवाथी कालांतरे धर्मसंयोगना साधनो द्वारा
। सर्व पापोनो अल्प कालमां नाश करी सिद्धि-मोक्षने
म करे छे.

‘स्पष्टीकरण’

केवल नितान्त सम्यक्त्वधारी यदि निकाचित चारित्र-

मोहनीय कर्मना उदयथी देशथी आयवा सवथी व्रतो स्वीकारी
न शकवाथी आरंभ, समारंभ, परिग्रहादि पापोने सेवे हे, तो
पण ते सर्व पापो अकर्तव्यबुद्धिए अशक्यपणाथी ज करतो
होवाथी तेने पापकायोंमां आसक्ति-तीव्रता-गाह प्रेम न राख-
वाथी तेने विशिष्ट निकाचित पापवंघ थतो नयी; कारण के-
पापना तीव्र अगर मंद वंधनो मुख्य आधार अध्यवसाय पर ज
होय हे. एटले आसक्तिपूर्वक करनारो तीव्र वंघ करे ग्रने आस-
क्ति-भावविना करनारो मंद वंघ करे हे. कहुं हे के-
“ सम्मदिही जीवो जइ वि हु पावं समायरे
किंचि । अप्पो सि होइ वंधो जेण न निल्दंधसं
कुणह ” ॥ १ ॥ हेतु ए के-सम्यक्त्वधारीनी प्रवृत्ति ‘ तस्त-
लोहपदन्यास ’ ‘ तपेला लोहापर जेम पग स्थापन कराय
ए न्यायथी पापकायोंमां सभयपणे ज होय हे. आ कारणाथी
ते आत्मा पापने बहुमानथी मानतो नयी, जेथी हेवटे धर्मना
योगथी धर्ममां अति उत्साह धारण करी तुरतज धर्मनी
संपूर्ण सिद्धि पामे हे, अर्थात् समकिती जीव पापनो अत्य-
वंघ करे हे ने धर्मना यथार्थ फलो पामे हे. एटले तीव्र वंघ न
यवाथी संसारभ्रमण तेने दीर्घ कालपर्यंत करतुं पढतुं नयी.

अहीं ‘ समकिति जीव पाप करे हे ? ’ ए प्रश्नउं
समाधान करीने ग्रंथकर्ताए धर्मसिद्धि पापवानी योग्यता केम
पमाय ए विषयलुं विस्तृत कथन कर्या यद्यी ‘ धर्मसिद्धि ’
नामे आ अधिकारनी संपूर्णता जणावी.



(४) धर्मच्छुलिंगपोडशकम् ।

गत प्रकरणमां “ अस्य स्वलक्षणमिदं धर्मस्य ॥ ”
 ए म्लोकोथी धर्मनुं लक्षण, धर्मनुं स्वरूप त्रने तेना पांच
 आशयो तथा तेनुं स्वरूप, तेम ज धर्मसिद्धिना अधिकारी विग्रह
 जणाव्या. हवे ए रीते सिद्ध, ययेल धर्मधर्मामां के नदीं
 ते लिंग-चेष्टा, क्रिया, लक्षणो विना ओळखी शकाय नहीं,
 तेम ज ‘ धर्मसिद्धि ’ कार्यद्वारा ज जाणी गताय हे
 अतएव ‘ धर्मसिद्धि ’ नामे अधिकार कषा पछी ते ज धर्म-
 तत्त्वना विस्तारथी लिंग-चेष्टाओ. हेतुओ दर्शनिवा पांच ध्रामान
 हरिभद्रस्तूरिजी नतुर्थं पोदगरनामा प्रकृत्या फटे कुः—

सिद्धस्य चास्य सम्यग्-
 लिंगान्येतानि धर्मतत्त्वस्य ।
 विहितानि तत्त्वविद्भिः
 सुखावधोधाय भव्यानाम् ॥ ४-१ ॥

मूलार्थ— कगा प्रपाणे यिद्ध गमेन धर्मतत्त्वने लक्षण
 माटे यांच्य पुरुषो नुवर्धा यमजी धर्ते ते तेनुर्धी इति शर्मतत्त्वना

(१६८)

अविपरीत यथार्थ लिंगो-लक्षणो तत्त्वपुरुषोए आ प्रमाणे
कहा छे.

“स्पष्टीकरण”

गत प्रकरणमां जे कहुं ते प्रमाणे वर्तवाथी जहर
धर्मनुं यथार्थ स्वरूपं अने तेनी सिद्धि आत्मा पासी शके
ए संदेह रहित छे. आ धर्मसिद्धिने योग्य पुरुषो-जेने धर्मनुं
तत्त्व अने तेनी सिद्धि करवानी अपेक्षा होय एवा जनो-अल
प्रथलथी केम जाणी शके एवा उद्देशथी धर्मतत्त्वना लिंगो-ल-
क्षणो तत्त्वदर्शी जनोए कहा छे, जे लिंगो अहीं वतावाणे
लक्षणोथी ‘धर्मसिद्धि’ जाणी शकाय तेमज ‘धर्मसिद्धि’ना
अर्थीओ लक्षण जाण्या चिना धर्मसिद्धि पासी शके नहीं
एट्टेआ अधिकारमां ते ज लक्षणो परमार्थहाता पूर्वपुरुषोए
जे प्रमाणे कहा छे ते ज लक्षणो आचार्य अहीं दशावे छे.

आ लक्षणो प्रथम ग्रंथकार स्वरूपमात्रथी शहउआत्मां
दशावे छे.

औदार्य दान्तिप्रयं

पापजुगुप्तसाथ निर्मलो बोधः ।

लिंगानि धर्मसिद्धेः

प्रायेण जनप्रियत्वं च ॥ ४-२ ॥

मूलार्थ—उदारता १, दक्षिण्यता २, पापनी निंदा ३,

(१९९)

सुंदरबोध ४ अने बहुलताए लोकप्रिये ५ ऐ प्रमाणोऽग्ना पांच
लक्षणो 'धर्मसिद्धि' ना पूर्वपुरुषोए कंशा छे.

"स्पष्टीकरण"

ओदार्थ-विशाल चित्तनी वृत्ति, दाक्षिण्य-सर्वनै
अनुकूल वर्तन, पापजुगुप्सा-पापनो त्याग, पापनो खेद,
निर्मलबोध-यथार्थ तत्त्वज्ञान, जनप्रियत्व-लोकोनो प्यार.
आ पांचे धर्मसिद्धिना चिन्हो-लक्षणो जाणावा. आथी
धर्मनी सिद्धि बराबर जाणी शकाय छे, पूर्वोक्त प्रत्येक लक्ष-
णांनुं स्वरूप ग्रंथकार पोते ज आगल दर्शवि छे एटले अर्ही
तेनो विस्तार कर्वो अनुचित जणाय छे. अर्हीं लोकोनो
प्यार गमे तेटला सुंदर सद्वर्तनथी सर्वथा प्राप्त कर्वो अशक्य
छे, कारण के दुर्जनस्वभाव कोइथी जीताय तेवो नर्थी एटले
सर्वज्ञो पण सर्वना प्रेमने पापवा असर्मर्थ वन्या छे, तो सामान्य
सज्जनप्रकृति कैप सर्वथा लोकप्यार पामी शके ? अतएव
ग्रंथकर्ताए मूलमां 'प्रायेण' ए वाक्यथी वहुधा लोकप्रियता
ए गुण दर्शाव्यो.

" ओदार्थ ' नामे प्रथम लक्षणांनुं विस्तारथी स्वरूप
दर्शवि छे. "

ओदार्थ कार्पण्यत्यागा-
द्विजेयमाशयमहत्वम् ।

(२००)

गुरुदीनादिष्वौचित्य— वृत्ति कार्ये तदत्यन्तम् ॥ ४-३ ॥

मूलार्थ—‘ओदार्थ’ ए गुण कृपणभावना त्यागथी-
तुच्छ स्वभाव छोडवायी हृदयनी जे विशालता प्रगटे तेलुं नाम
छे, तथा गुर्वादिको अने अनाधारवंत लोको पर औचित्यता-
उच्चम सद्भाव राखवो तेम ज विशिष्ट कार्योंमां अति उदारता
करवी ए पण उदारता ज कही छे।

“स्पष्टीकरण”

प्रथम कहेल ‘धर्मसिद्धि’ ना पांच लक्षणो
अर्थ क्रमशः एकेक म्लोकथी विस्तारथी दर्शावे छे, प्रथम
‘ओदार्थ’ नाये ए लक्षणालुं स्वरूप आ प्रमाणे छे। ‘धर्म-
चित्तप्रभवो’ चित्तनी विशुद्धि ए ज धर्म, ‘आ धर्म चि-
त्तथी प्रगटे छ्वे’ एम कही आव्या एटले चित्तनी विशुद्धि
विना वाह क्रियामात्रथी धर्म पापवो अशक्य छे, अने ज्यांसुधी
तुच्छ स्वभाव-अध्यम हृत्तिओ होय त्यां सुधी चित्तविशुद्धि
दुर्लभ कही छे। आ हेतुथी धर्मार्थीए प्रथम तुच्छ स्वभाव त्याग
करवो आवश्यकीय हो, अतएव अहीं ग्रंथकारे ‘ओदार्थ
कार्पण्यत्यागात्’ धर्मनिष्पत्तिनुं पहेलुं लक्षण-चिन्ह
‘ओदार्थ’ बताव्युँ, अहीं ओदार्थ-उदारता एटले कृपणभावनो-
कंशुसाहनो त्याग, भावार्थ ए कै-पैसानी उदारता करवी
तेलुं ज नाम क्षाक्षकार उदारता नथी बतावता, किन्तु तुच्छ-

पणानो त्याग ते ज उदारता कही छे. अन्यथा धनवान ज धर्म पापी शके, धनहीन धनना अभावे उदारता क्यांथी करी शके ? तेथी करीने कदापि धनहीन धर्म न ज पासे ए सिद्ध थयुं, ए मान्यता अनिष्ट छे. आ हेतुथी ग्रंथकार 'आौदार्य' ए पदनी विस्तृत 'व्याख्या करतां जगावे छे के—तुच्छ स्वभावना त्यागथी हृदयना आवश्यनी विपुलता एट्ले दुङ्क विचारो, हलकी दृष्टि, मारा—तारापणानो अति आग्रह, लोभबुद्धि, जडता, अविनयपणुं—आ सर्व दुर्गुणो कंजुसाइना आधारे रहे छे, कंजुसाइ क्षुटवाथी ते दुर्गुणोनो पण नाश याय अने विपुल विचारद्विष्टि जागवाथी आौचितबुद्धि—विवेकमति धर्मकर्मां, दीर्घबुद्धि प्राप्त याय छे ने छेवटे तेनाथी धर्मने ज आदेयपणे तथा व्यवहारने गौण मानी स्वबुद्धि, धन, विचारवक्ति विगेरेनो धर्मना पाटे होम करी शके छे अने गमे ते कायोंमां तुच्छताने मूकी गंभीरबुद्धिवाळो वने छे ते ज उदारता साची उदारता अर्ही आपेक्षिक छे. तथा मानयोग्य जनो साथे उचित वृत्ति एट्ले उचित आचरण—अनुकूल वर्तन राख्युं. अर्ही मानयोग्य जनो “माता पिता कलाचार्य एतेषां ज्ञातयस्तथा । वृद्धा धर्मोपदेष्टारो गुरुवर्गः सतां मतः ” ॥ १ ॥ ‘माता, पिता, कलाचार्य—उपाध्याय, तथा ज्ञाति स्वजनो, वृद्धो अने धर्मोपदेशको ए सर्वे सज्जनोनो गुरुवर्ग कहो छे.’ तेमंज दीनजनो, आधार विनाना दुःखी लोको तेने विषे पण उचितता—उदारता धारण करवी, अने कार्यविशेष दानादिमां उचित बुद्धि अतिशय राखवी ए सर्वे

उदारतानोः कार्यौ जाग्रता. परमार्थ ए के—‘मानयोग्य’ जनो अने दीन, दुर्लभी, अपंग, अंध, कृपण जनो साथे। उचित सद्भावं राखवो, हृदयनी विशाल भावना धारण करवी, कंजुसाइने मूकी सर्वे धर्मकार्योमां अति उचित बुद्धि, गंभीर अंतःकरण घोरबुं आङुं नाम ‘आदार्य’ नामे धर्मबुं प्रथम लंगण शाहूकारं कहे छे.

ऋग प्राप्त ‘दाक्षिण्य’ नामक गुणबुं स्वरूप दर्शावे छे.

दाक्षिण्यं परकृत्येष्वपि

योगपरः शुभाशयो ज्ञेयः ।

गंभीर्धैर्यसचिवो

मात्सर्यविघातकृत्परमः ॥ ४-४ ॥

मूलार्थ—अन्य जन संबंधी कोइ पण कार्य होय ते कार्य करी आपवापां आडंग उत्साहशी सामेल थबुं एवो जे शुभ अध्यवसाय, ते पण गंभीरता अने धैर्यतानी साथे मत्सरभावनो नाश करीने ज प्रवर्ते त्यारे परम उत्कृष्ट आ शुभ दाक्षिण्य गुण आव्यो कहेवाय.

“स्पष्टीकरण”

‘दाक्षिण्यता’ नो हुँक अर्थ एट्लो ज के—सर्वने अल्कूल पोताङुं वर्तन राखबुंः अर्थात् हीन, मध्यम अने उच एवा त्रणे वर्ग पैकीना कोइ पण मनुष्य साथे एबुं वर्तन राखबुं

के जेथी स्वनिमित्ते ते ते आत्माओने नकामो बलेश अथवा अधर्म न थाय, अथवा जे कार्यों अगर क्रियाओ करवाथी अन्यना कार्योंनी हानि थाय तेवा कार्यों बंध करवा, आही टीकाकार आ गुणनी विशिष्ट व्याख्या आपतां बहु उंडाणमां उतर्यां छे. प्रथम कहा प्रमाणे वर्तन राखनारो होय, अने विशेषतया ज्यारे अन्यजनोना कार्यों पोतानी इष्टिए देखवापां आवे त्यारे त्यारे ते लोको पोतानी सहायता याचे अथवा न याचे तो पण पोतानी शक्तिने लोप्या वगर मनसा, वाचा अने काया ए त्रणे योगथी ते कार्यों संपूर्णतया विना जुकशाने साधी आपवापां उत्साहित दिल धारबुं, आनुं नाम तात्त्विक 'दाक्षिण्यता' कही छे. 'दाक्षिण्यता' नो केटलीकवार लोको एवो अर्थ करे छे के-कोइने पण खोदुं न लगाडबुं, कोइना दिलोने न हुःखववा. आधी सर्वने राजी राखवा, जूठ, प्रपंच अने खोटी खुशामतो करवी, आनुं नाम 'दाक्षिण्यता' मानी तेबुं वर्तन पोते राखे छे अने अन्यने राखवा तेवो उपदेश पण आपे छे. यदि वीजाओ आ उपरनी मान्यता न कडूले अने न सेवे तो तेने हलको गणवो, उतारी पाढवो, पोताना दोलाथी ते ब्हार छे, दुर्गुणी अने आचारहीन छे, व्यवहारने समजती नथी इत्यादि प्रकारे निंदे छे. आधी वस्तुतः खरी 'दाक्षिण्यता' तुं स्वरूप मरी जवाथी अने आ गुणने अन्यथापणे लोको समजी जइ तेवा दोलामां सामेळ बने छे. वर्तमानमां आ [मान्यतानो आकाय मोटा जनसमूहमां

अने प्रतिष्ठित साधुसमुदायमां पण घर करी गयो छे, परंतु वस्तुतः ए 'दाक्षिण्यता' नामक गुण नथी किंतु 'दाक्षि-
ण्यता'ना बहाना नीचे मानलोलुपीपणां, पूजावानी लालसाओ
अने विना गुणे गुणीपणामां खपवानी प्रयंची तृष्णाओने
पोषवानो एक मार्ग छे. खरं दाक्षिण्यपणुं सूरजीए जे कहुं ते ज
कहेवाय अर्थात् जेओ अन्यना कायोंनी हानि कर्या वगर
पोताना प्रत्येक कायोंने साधे अने अन्यना कायोंनी वखते
ताना लाभोने पण मूकी दइ ते कायों पेला पार पहों-
चाडवाने अहर्निश कटिबद्ध रहे.

अहीं केटलीकवार केटलाको अन्यना कायों साधी आपे
छे तेना माटे अपूर्व पोताना भोगो पण आपे छे, परंतु अमुक
समये जनसमूहमां ते ते कायोंने प्रकाशमां लावी कही वतावे छे
के 'अमुक वखते अमुकनुं कार्य में कर्युं हतुं' इत्यादि अथवा
ते ते कायों करी आपी जींदगी सुधी सामानी जींदगीने
पोताना गुलाम तरीके करवानो प्रयत्न करे छे. केटलाको आ
गुणना कार्य नीचे दबाइ जइ अति दुःखने अनुभवे छे.
अतएव प्रज्ञासिन्धु आचार्य-'गांभीर्यधैर्यसचिवो' ए
पदथी विशिष्टता जणावे छे के-दाक्षिण्यताग्रिय उपकारबुद्धिए
अन्यना गमे तेवा कायों करी आपे अने गमे तेवा सामाना
गुप्तमेदो जाणे तथापि काळांतरे पोताना पर महान् विपत्तिनो
समय आवे त्यारे पण ते ते करेला उपकारो के कायोंनी
गंध सरखी अन्यना कर्य पर न लावे. एट्ले के आंतरनो भेद

खाले नहीं. आवा प्रकारनुं जे वर्तन तेनुं नाम 'गंभीरता' कहेवाय. आ गंभीरतावाळो आशय उपरोक्त गुणवंतमां जो होय तो ज सत्य दाक्षिण्यपणु प्रकटयुं कहेवाय अर्थात् गंभीर आशय विशिष्ट दाक्षिण्यपणुं राखनारना हस्ते उपर कहेला जुलमो के अनर्थों थवा पामे नहीं. गंभीर आशयनुं वर्णन अन्यत्र आ प्रमाणे कहुँ छे—“यस्य प्रभावादाकाराः क्रोधहर्षभ्यादिषु । विकारा नोपलभ्यन्ते तद्बगांभीर्यसुदाहृतं” ॥ १ ॥ “जे गुणना प्रभावथी व्यक्तिगत चेष्टाओ अने हृदयना विकारो क्रोध, हर्ष अने भय आदिना अवसरे पण न जणाय तेनुं नाम. गंभीर्यपणुं कहुँ छे.” गंभीरप्रकृतिवाळो अने परना कार्यो करवामां दाक्षिण्यतावाळो कष्ट, हुखो के लोकभय अथवा जनापवाद विगेरे आवी पडे तो अन्यना कार्यो करी आपवा माटे पोतानी पीठ घणी बखत फेरवी नांखे अथवा तो वचमांथी पडता मूके आवो अनुभव आपणाने थाय छे. अतएव मूलकर्ता भगवान् उपरोक्त गुणवाळो केवो होय तेना माटे फरीने 'धैर्यसचिव' ए पदथी धैर्यतानी साथे ज दाक्षिण्यता धारनारो अहीं जणावे छे. परमार्थ ए के—जैना हृदयनी अविचल दृच्छि एवी होय के—गमे तेवा उपद्रवो आवी पडे तो पण 'न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः' ए नियमानुसारे न्यायमार्गनुं कदापि उद्घांघन करे नहीं, तेमज आरंभेत कार्यो वचमां पडता मूके पण नहीं. ए रीते गंभीर्यता, धैर्यता ए वजे पवित्र आशयनी साथे जेमां दाक्षिण्यपणुं होय तो ज तेनुं सत्य दाक्षिण्यपणुं कहेवाय;

(२०६)

अन्यथा ते वचे आशय विनाशुं दाक्षिण्यपणुं भद्रिक आत्माने
मारनार्ह कातिल शत्रु जाणवुं आटलुं छतां जो पोताथी
अधिक गुणवंतनी प्रशंसा—कीर्ति आदिने सहन न करी शके
तो, अथवा अन्य लोकोए करेल पोतानी प्रशंसा—गुणस्तुंति
सहन न करी शके अने मदमां चडी जाय तो उपरोक्त गुण
छतां पण ते आत्माओ जगतने घणी वसत आपभूत थाय
छे, आधी ज ग्रंथकर्ता फरी—‘मात्सर्यविधातकृत्परमः’
‘चरणयो उपर कंशित गुणनी व्याख्यामां वधारो करे छे.
‘मात्सर्यः’ एले अधिक गुणनी प्रशंसा अथवा स्वगुणनी
प्रशंसा श्रवण करीने जे असहिष्णुपणुं अगर अभिमान उद्भवे
ते, आ दोषने मूलधार्थी ज उखेडी नाखी अधिक गुणी-
परनो ग्रेम अथवा पक्षपातवाली जेनी दृष्टि छे, तेमन स्वगुणनो
जेने मद न होय एवो उल्लृष्ट पवित्र सुदाक्षिण्यस्वभाव जेनो
होय तेनुं नाम ‘दाक्षिण्य’ नामे वीजो शुभाशय जाणवो.

उपरोक्त सुगुण यदि पापकार्यों प्रति वृणानी बुद्धि न
प्रगटे तो दुर्गुणपणे परिणामे, अने जेने लोको छलप्रपञ्च के
मालणीयावालो आ गुण माने छे तेवा रूपमां ज आ गुणनी
व्याख्या पर्यवसित थाय, तेम ज पापकार्यों प्रति तिरस्कारदृष्टि
विनानो उपरोक्त गुण नकारो ज गण्यो छे; पाटे क्रमप्राप्त
“पापजुगुप्ता” नामे त्रीजा गुणनुं वर्णन ग्रंथकार करे छे.

पापजुगुप्ता तु तथा

सम्यकपरिशुद्धचेतसा सततम् ।

(२७)

पापोद्ग्रेगोऽकरणं तदचिन्ता चेत्यनुक्रमतः ॥ ४-५ ॥

मूलार्थ—‘पापज्जुगुप्सा’ एट्ले पापनो त्याग अर्थात् यथार्थ शुद्धचित्तवडे निरंतर पूर्वे करेल पापकार्योंनी वारंवार निन्दा भाववी, अने वर्तमानकालमां पापो नहीं करवा तेम ज भविष्यकालना पापकार्योंनो कदापि विचार करवो नहीं, अथवा अनुक्रमे कायाथी पापो आचरवा नहीं, वचनथी करवा नहीं अने मनथी चित्तवधा नहीं ए प्रमाणे ‘पापज्जुगुप्सा’ नामे त्रीजुं धर्मतत्त्वनुं लिंग जाणावुं.

“स्पष्टीकरण”

अहीं धर्मतत्त्वना वे लिंगो कहा पछी त्रीजुं लिंग ‘पापज्जुगुप्सा’ नामे जणावे छे. ‘पापज्जुगुप्सा’ ए पदमां पाप अने ज्जुगुप्सा ए वे शब्दो छे, तेथी पाप एट्ले दुष्ट व्यापारो जेवा के-चोरी, जूठ, हिंसा, मैथुन आदि तेनी ज्जुगुप्सा एट्ले निन्दा, पश्चात्ताप, खेद, फरी नहीं करवा माटेनी वारणाओ करवी अर्थात् अतीतकालमां पोताना आत्माए जे जे पापकार्यों कर्या होय तेने याद करी वारंवार पश्चात्ताप करवो, जेथी पोतानो आत्मा भविष्यमां फरी तेवा कार्यों करवा ललचाय नहीं. आ स्थले टीकाकार ‘पापज्जुगुप्सा’ एट्ले ‘पापपरिहाररूपा’ पापनो त्याग करवो एवो अर्थ करे छे. परमार्थ ए के-करेल पापनो पश्चात्ताप एवो करवो के भविष्यमां

फरीने तेवा पापो बने नहीं, अन्यथा 'कुंभारना मिथ्यादुष्कृत' नी माफक पश्चात्ताप कर्या पछी पण ते पापो सेवाय तो ते पश्चात्ताप दंभ ज गणाय. आ पश्चात्ताप पण 'लक्ष्मणा साधवी' नी माफक अशुद्ध मनथी न करवो, किन्तु 'सम्यक्परिशुद्धचेतसा' ए पदथी अंतःकरणानी सर्वथा पवित्रवृत्तिथी ज करवो. ते पण एकाद वरवत करवामां आवे अने पछी विसरी ज्ञाय तो संपार्जन कर्या वगरुं शङ्ख जेप काट खाइ जाय तेम ते करेल पश्चात्ताप पण नकामो थाय, आ हेतुथी कर्त्ताए मूलमां 'सततम्' ए पद आप्युं छे, अर्थात्-शङ्खार्थी पोताना हयियारनी नित्य संभाल करे छे तेम पापथी बचवा माटे पूर्वना पापोनी नित्य शुद्ध मनथी गही कर्या करवी. आनुं कारण ए के—अनादिथी आत्मानी टेब विपरीत कायीं करवानी अने पोतानुं अहित करनार पदार्थोना संयोगोमां रहेवानी पडेली छे, आथी जो तेने थोढो पण अवकाश मले तो पापना परिचयमां आवता विलंब न थाय. भगवान् वर्द्धमान् प्रभुए गौतमस्वामी प्रति ए ज कारणथी 'समयं गोयम् मा पमायए' ए उपदेश कर्यो. मूलमां 'तु' अने 'तथा' ए शब्दो तथाप्रकारे पापनो निषेध वतावनार मुख अने हस्तादिनी विशिष्ट चेष्टाद्वाराए स्पष्ट जणातो एवो पापनो निषेध—त्याग करवो ए भावने ध्वनित करवा माटे आप्या छे. पापोनी गही केवी रीते करवी ? तेनो प्रकार ग्रन्थकर्ता ज श्लोकना उच्चरभागयी व्यक्त करे छे. पूर्वकाले जे जे पापो सेव्या होय तेनी गही करवी, एट्ले में पूर्वे अङ्गान-

वशपणे वहु खोटा कायों कर्या, अधन्य छे मारा ते आत्माने ! हवे हुं फरीने तेवा कायों नहीं करीश, 'मिथ्या मे दुष्कृतं भूयादपुनः क्रिययान्वितं' 'मारा करेला पापो फरीने नहीं करवापणे मिथ्या-निष्फल वनो.'

व्यवहारमां वैद्यो रोगीना रोगनी शान्ति माटे प्रथम विरेचन आदि आप्या पछी वर्तमान दर्दोनी शान्ति करवाने अन्य अन्य औषधीओ आपे छे तेमज अहीं आत्मशुद्धि विषयमां पण ज्यां सुधी पूर्वना पापोनी गर्हा-निन्दा आदि प्रकारस्थी पापनो संबंध अल्प न थाय त्यां सुधी नवा नवा पापोनो वंध पण अलगो न ज थाय. अतएव ग्रंथकर्ताए अहीं प्रथम पूर्वना पापोनो क्षय करवा माटे गर्हा करवानुं वताव्युं. त्यारपछी विशेष शुद्धि माटे हवे 'अकरण' ए पदथी वर्तमाननी शुद्धि दर्शावे छे एटले वर्तमानमां पापो सेववा नहीं. पूर्वना पापोनो संस्कार अल्प थाय त्यारे ज नवा पापो यता अटके, तेमज भविष्यना पापो वंध करवानो उपाय ए ज के—'तदचिन्ता' कोइ पण क्षणे पापकायों करवानो संकल्प मात्र पण न थवा देवो, कारण के पापदृत्ति प्रेनारा प्रथम संकल्पो—स्मरणो ज प्रगटे छे, अने पछी ज तेनो अनुराग तथा यहण करवानी तीव्र लालसाओ जन्मे छे. एटले जेनुं मूल ज कापी नाख्युं होय तेनुं दृक्ष क्यांथी वधे ? न ज वधे, ज्यां स्मरण शयुं त्यां अवश्य अनुराग उपजे अने अनुराग थया पछी लेवाने भन ललचाय

छे. “लोभमूलानि पापानि” ए नीतिवाक्य यथार्थतया सुघटित थाय छे. आ माटे ज उपमितिमां कहुँ छे “पापानां कथधाप्यलं” “पापोनी वार्ता करवाथी पण पाप बंधाय छे.” पापकार्योंमां कोइ अजब एवी जादुइ शक्ति छे के-जेम भूत-डाकणनी सामे स्त्रिघ्न दृष्टिए देखवा मात्रथी देखनारने ते चोंटे छे तेम पापो पण तेने याद करनारने बढगे छे. आ हेतुथी यंथकार कहे छे के-तेनी चिन्ता पण कोइ सप्तये करवी नहीं. ए रीते कालत्रयपणे पापोनी सामे तिरस्कारनी दृष्टिशी देखुँ अर्थात् सर्वथा पापोनी उपेक्षा करवी अथवा अन्य प्रकारे टीकाकार ‘पापजुगुप्सा’ ए पदनी व्याख्या करे छे. कायाथी पापनो त्याग करवो एट्ले कायाथी स्वर्यं पापो सेववा नहीं अने बचनथी पापो करवा नहीं, तेमज मनथी पाप करवानो विचार सरखो पण करवो नहीं, ए रीते अनुक्रमे काया, बचन तथा मन ए त्रये योगथी पापोनो त्याग करवो. आ प्रमाणे ‘पापजुगुप्सा’ नो गुण प्रगटे एट्ले प्रथमना ‘ओदार्थ’ अने ‘दाच्चिष्यता’ ए बन्हे गुणो योग्य रीते सार्थक गणाय. अहीं आगल आगलना गुणो उत्तर उत्तरना गुणो साथे निकट संबंध घरावे छे. एट्ले उत्तरना गुणो प्रगटवायी उपरना गुणोंमां बधारे ताच्चिकता आवे छे. अहीं ‘धर्मतच्चना’ ना गुण तरीके ‘पापजुगुप्सा’ नामे जे त्रीजो गुण बणव्यो छे तेनो अर्थ ‘कालत्रयपणे अथवा त्रिकयोगथी सर्वथा पापनो अभाव करवो’ एवो न करवो, किन्तु जे जे मोठा पापकार्यों

होय तेना पर अप्रेमभाव—नहीं सेवन करवानी बुद्धि ए ज
अर्थ जाणवो; अन्यथा सर्वथा पापनो अभाव तो शैलेशीकर-
णना अन्तिम समयमां ज थाय छे.

प्रथम 'पाप' आदिनुँ यथार्थ स्वरूप समजवापां न आच्युं
होय तो 'पाप' नी गर्ह केम बने ? तथा समजण विनानी
निन्दा पण घणी बार अधिक पापबंध करावनारी बने छे
तेम ज शास्त्रवचन पण 'ज्ञात्वा' आदि वाक्योथी प्रथम
तो ज्ञाननी जर्हीयात स्वीकारे छे, अतएव 'पापजुग्पसा' ए
गुणनी अधिक दृढता करनारो चतुर्थ गुण 'निर्मलबोध'
नामे शास्त्रकर्ता दशावे छे.

निर्मलबोधोऽप्येवं
शुश्रूषाभावसंभवो ज्ञेयः ।
शमगर्भशास्त्रयोगा—
च्छूतचिन्ताभावनासारः ॥ ४—६ ॥

मूलार्थ—'निर्मलबोध' एट्ले शुद्धबोध. शम—शान्ति-
सप्रधान एवा जे शास्त्रो तेने श्रवण करवानी इच्छाथी ज
आ निर्मलबोध—शुद्धबोध प्रगटे छे अर्थात् वैराग्य, प्रशम
आदि रसोनुँ पोषण करनार शास्त्रद्वाराए जे बोध प्रगट्यो
होय ते 'निर्मलबोध' नामे चोशुं धर्मतन्त्रनुँ लिंग जाण्वुं.

‘आ ‘निर्मलबोध’ श्रुतसार १, चिन्तासार २ अने भावनासार ३ एम त्रण प्रकारनो होय छे.

“ स्पष्टीकरण ”

‘निर्मलबोध’ एटले विमलबोध अर्थात् जे ज्ञानमां अज्ञाननो-विकारभावनो मल न होय, कारण के बोध वे प्रकारनो होय छे: एक तो व्यवहारिक तत्त्वनो अने वीज्ञ धार्मिक तत्त्वनो. व्यवहारिक तत्त्वनो बोध केवल उपाधि वधारनार अने समर्हंभादि वधारनार होवाथी शास्त्रकर्ताए तेने अशुद्ध बोध कहो छे. धार्मिक तत्त्वनो बोध पण वे प्रकारनो कहो छे. जेमां राग, द्वेष के अज्ञानताथी आग्रहविशिष्ट पुरुषोना वा- क्यो होय एवा शास्त्रो श्रवण के अभ्यास करवाथी जे बोध उद्भवे ते, अने वीतरागकथित केवल स्त्याग-वैराग्य प्रशपरसने ज पोषनारा शास्त्रो श्रवण तथा अभ्यास करवाथी जे ज्ञान उद्भवे ते. आ वे प्रकारना बोधमां प्रथमनो बोध आत्माने खोटा मार्ग पर लइ जनार होवाथी सर्वथा उपेक्षा योग्य छे, तथा वीजा बोधमां पण वीतरागना नामे ह्लेशादि उत्तम करनारा तथा आग्रही पुरुषोना कहेला जे जे वचनो होय ते पण उपेक्षाने ज पात्र छे. आ हेतुथी ज ग्रंथकर्ताए मूलमां सामान्य ‘बोध’ ए पद न मूकता “निर्मलबोध” ए विशिष्ट पद मूकयुं छे अने दीक्षाकारे तेनी व्याख्या ‘विमलबोध’ एवी करी छे. भावार्थ ए के-‘विगतः मलः यस्मात् स

विमलबोधः' जेमांथी मल विशेषपरणे गयो छे एबो जे बोध ते विमलबोध जाणावो. आ विमलबोधनी प्रासिनो मार्ग शास्त्रकर्ता 'शुश्रूषाभावसंभवः' ए वाक्याथी जणावे छे. 'ओतुं इच्छा शुश्रूषा' 'शास्त्रो श्रवण करवानी इच्छा' शास्त्रोनां श्रवण विना अभ्यास न थाय तेम ज बोध पण न ज वने, माटे अहीं शास्त्रश्रवणभाव 'विमलबोध' प्रासिनो मार्ग कहाहो. आ इच्छा परम अने अपरम ए वे प्रकारे वर्णवी छे. जे शास्त्रश्रवण करवापां विनय, भक्ति, आदर अने श्रद्धा होय ते परम, तथा जे कुतूहल, मान आदिनी दुष्टिथी श्रवण कराय ते अपरम इच्छा. आनुं विशिष्ट स्वरूप ग्रंथकर्ता एकादश पोदश प्रकरणामां कहेवाना छे एटले अहीं अमे विशेष नथी जणावता. 'निर्मलबोध' नामे गुण केवा शास्त्रो श्रवण करवाथी उद्भवे ते ग्रंथकर्ता जणावे छे. 'शमगर्भशास्त्र-योगात्' जे शास्त्रोमां प्रशम, वैराग तथा त्वागभावनुं स्वरूप यथार्थतया वर्णव्युं होय तेवा शास्त्रो श्रवण करवाथी श्रोताना हृदयमां 'निर्मलबोध' गुण प्रगटे छे, कारण के अन्यथा प्रकारना शास्त्रो श्रवण करवाथी मलिन वासनाओनुं अधिक पोषण थाय माटे विमलबोध इच्छकोए केवल शृंगार, वीर के हास्यरसने वतावनार शास्त्रो सांभलवा नहीं. आ 'निर्मल-बोध' श्रुतसार, चिन्तासार अने भावनासार एम त्रण प्रकारे कहो छे. आ त्रणेनुं स्वरूप अने प्रत्येकनी भिन्नता 'शास्त्र-कर्ता' ज आगल विस्तारथी दर्शावशे. नितान्त अहीं समजवानुं

(२१४)

एटलुं छे के—आ ‘निर्मलबोध’ गुणनी जागृति यथा पछी ‘पापजुगुप्सा’ नामे त्रीजा गुणजुं स्वरूप वरावर ख्यालमां आवी शके छे अने तेने प्रवृत्तिमां योग्य रीते मूळी शकाय, नितान्त ए गुण माया रहितपरे शुद्ध तास्त्रिक भावनाने पासी शके छे. अतएव ग्रन्थकर्ताए ‘पापजुगुप्सा’ नी अनंतर उपरोक्त ‘निर्मलबोध’ नामे चतुर्थ गुण बताव्यो.

ग्रथम दशावैल औदार्य, दाक्षिण्य, पापजुगुप्सा अने निर्मलबोध ए गुणना अभावथी ज लोकनिन्दा, अपयश, मानहानि, अपकीर्ति आदि दुर्गुणो आत्माने लागु थाय द्वे अने ते गुणो आव्या पछी आ दुर्गुणो सत्तर नाश पामे छे. परमार्थ ए के—उपरोक्त चतुर्गुणी आत्मा अवश्य आदेयवाक्य तथा जनप्रिय बने, माटे अहीं ग्रंथकर्ता उपरना चार गुणोहुं कथन कर्या पछी तेना ज फलरूप ‘जनप्रिय’ नामे पांचमुं धर्मतत्त्वजुं लिंग सातमा श्लोकमां दशावै छे.

अथवा ग्रथम कथित चतुर्गुणी आत्मा वन्या पछी पण यदि तेनी केटलीक प्रवृत्ति लोकोने रुचे तेवी न होय, अगर औचित्यता, विनय, नम्रता के समयजपणु न होय तो ग्रथयना चारे गुणो धर्मतत्त्वजुं वरावर कार्य साधवामां निष्फल बने. आ हेतुर्था पांचमुं ‘जनप्रिय’ नामे लिंग दशावै छे.

युक्तं जनप्रियत्वं
शुद्धं तत्त्वमसिद्धिफलदमलम् ।

धर्मप्रशंसनादे— बीजाधानादिभावेन ॥ ४—७ ॥

मूलार्थ— पोते आचरित धर्मनी लोको प्रशंसा करे, तेमज अन्य लोको तेनुं अनुकरण करे जेथी अनुक्रमे पुण्यानु-बंधीपुण्यरूप फल धर्मजनने प्राप्त थाय, अर्थात् आ रीते अतिशो पोते करेल धर्मसिद्धिनुं फल जेनाथी प्राप्त थाय छे एवुं शुद्ध-निर्मल अने योग्य ‘जनप्रिय’ नामे पांचमुँ धर्मतत्त्वनुं लिंग जाणवुं.

“ स्पष्टीकरण ”

अंथकर्त्ता शख्तात्मां ज ‘जनप्रिय’ नामे धर्मतत्त्वनुं लिंग वरावर उचित ज छे एम ‘युक्त’ पदथी ध्वनित करे छे, पण अनुचित नथी एवुं भार मूकीने जणावे छे; कारण के खरो ‘जनप्रिय’ ते ज होइ शके के दंभ विना धर्माचरण करतो होय तथा लोक निंदे तेबुं आचरण न करतो होय. ‘जनप्रिय’ थवाना कारणो आ प्रमाणे कहा छे. प्रथम ‘जनप्रियपणुं’ दांभिक जूठ-कपटभावथी उपजावेलुं न होबुं जोइए, केमके घणा लोको जनतामां पोतानुं सारुं देखाडवा माटे अने सर्वने प्रिय थवा सारु अनेकथा खोटी मीठाशो तथा असत्य कपटभावो आदिने सेवे छे. आ हेतुथी ज अलोकमां ‘शुद्धं’ ए विशेषण आप्युं छे. एटले जे ‘जनप्रिय’पणुं राग-द्वेष विनानुं अने दंभ रहित निर्मल होय ते ज अर्हीं आपे-

शिक छे. आवा मनुष्यो ज परिणामे स्व तथा परने अत्यंत धर्मसिद्धिना फलने अर्पण करे छे. निदान ए के-दंभ अने शुटवर्तन वगरना मनुष्यो जे कांह अल्प पण धर्म आचरे ते निर्मलभावथी सेवे छे, आथी तेओ थोडा धर्मराधनथी पण घणा ज फलने पामे छे, तथा अन्य आत्माओ तेबाओनी क्रिया देखी प्रशंसा-अनुमोदना करी अंतमां ते ते क्रियाओ तेओ स्ती-कारे छे. एटले वस्तुतः तेओ धर्म ज पामे छे, कारण के-यद्यदाचरति श्रेष्ठः, तत्त्वेवेतत्तरो जनः । स यत्प्रभाणं कुरुते, लोकस्तद्भुवर्तते ॥ १ ॥ “ प्रतिष्ठित जन जे जे कायोंने आदरे ते ते कायोंनुं अनुकरण इतर-प्राकृतजन करे, तथा तेओ जेने प्रमाणतया माने तेने ज इतरजनो अनुसरे. ” सापान्यतः अल्पहङ्गजनो पोतानाथी अधिक बुद्धिमानना कायों तरफ वधारे विश्वास राखे छे. हेतु ए छे के-तेओपाँ विशेष बुद्धि, हिम्मत अने लाभालाभनो विचार करवानी शक्ति अल्प होय छे, तथा बहुवा आवा लोकोनी दृष्टि अन्यतुं अनुकरण करवानी वधारे टेवायेती होय छे. एटले अन्यना अनुमोदनाय कायों अबलोकी आवा लोको पोतानी सरल मतिथी तेनुं अनुमोदन करी तेबा उंचा कायोंमां धर्माओनी पाढ्हल पाढ्हल थोडी थोडी गति करे ने परिणामे अल्पहङ्गजनो पण उत्तम जनोना वर्तनना आधारे पोतानुं हित परंपराए सिद्ध करे छे. अतएव उपदेशको, गुरुजनो अने प्रख्यात कीर्तिनायको माटे शास्त्रकर्ताए कथन कर्यु छे के यदि आ लोको जो थोड़

पण विपरीत आचरण करे तो तेओ अनंत दुःखना भागी बनवा साथे असंख्य लोकोने अनंत दुःखना भागी बनावे छे, माटे उपदेशक गुरुवादिकोए तेबुं वर्तन करबुं के जे स्वपरने हितावह होय. निदान ए के—उपरोक्त जनग्रियपणानी प्राप्ति अर्थे शुद्ध निर्विकारी वर्तन अने धार्मिक निर्मल क्रियाओ करवी, तथा अन्य सामान्य जनो सदाचारी धर्मीलोकोना वर्तननी प्रशंसा करी पोताना आत्माने अनुक्रमे धर्मी बनावे छे एबुं समजी गुरुवादिको पोतानी महत्तानी जोखमदारी बरावर रुयालमां लाइ पोताना चारित्रने उच्चतर बनावे, कदापि दोष लागवा दे नहीं, एटले धर्मप्रशंसा धर्मीजनो अने इतरजननी हृदयभूमिमां धर्मवीजनी उच्च शुद्ध वावणी करे छे. एम वावणी थया पछी जेम वीज उत्तम भूमिमां पछ्या पछी अनुकूल वायु अने जलटृष्णिना संयोगद्वाराए पत्र, पुष्प तथा फलादिने उपजावे छे तेम अहं धर्मप्रशंसा नामक वीज पण परिणामे स्वपरने मोक्षस्तुप फल आपनारु थाय छे. अत्रे मूलमां कहेल “धर्मप्रशंसादेः” ए पदनी टीकामां उपाध्यायजी आदि पदथी धर्म करवानी इच्छा, इच्छानो अनुवंश, धर्मना उपायो शोधवा. धर्ममां प्रवृत्ति करवी. गुरुसंयोग मेळव्यवो अने क्षेत्रे सम्यक्त्वनी प्राप्ति एटली वस्तुओ सूचवे छे. आठला पदार्थो आदि पदथी लेतां धर्मप्रशंसाने वीजनी उपमा सुषुप्तया लागु थाय छे. अन्यथा तेने वीजपणे घटाववामां कल्पनानो आभय लेवो पढे. छे, तेमन मूलकर्त्ताए आपेल आदि पद पण

सार्थक बने छे. यशोभद्रसूरिजीए आदि पदनी व्याख्याने दूंकावी नांखी छे तेलुं कारण एटलुं ज के विस्तारमां न उतरवुं.

फरी मूलना “ वीजाधानादि ” ए पदनी टीकापां आदिपदथी अंकुर, पत्र, पुष्प अने फल ए चार पदार्थो सूचित करे छे. अंकुरादिनुं स्वरूप ललितविस्तरापां आ प्रमाणे छे—“ वपनं धर्मबीजस्य, सत्प्रशंसादितद्-गतम् । तर्चिताद्यंकुरादि, स्यात्फलसिद्धिस्तु निर्वृतिः ॥१॥ चिंतासच्छुत्यनुष्ठान-देवमानुषसंपदः । क्रमेण-कुरसत्कांड-नालपुष्पसमा मताः ॥ २ ॥ “ सतपुरु-षोनी प्रशंसा ते वीज, धर्मतुं चितवन-विचार करबो ते अंकुर विगेरे अने सिद्धिनी प्राप्ति ते फल ”. अथवा—“ धर्मतुं चितवन ए अंकुरा समान, धर्मतुं अवण करवुं ए कांडा समान, धर्मतुं आचरण ए नाल समान तथा परंपराए ते धर्मसाधनथी देव, पनुष्यनी सिद्धि पापवी ए पुष्पतुल्य मानेल छे.” मोक्ष ते फलतुल्य जाणावुं. अहीं वीज बे प्रकारनुं होय छे. जेने रोप-वायी फलादि प्राप्त थाय ते अने जेने रोप्या पछी निष्फल जाय ते, तेम ‘ धर्मप्रशंसा ’ नामक वीजम् पण अदृश्यत जात्कि होवायी उच्चरोचर फल विगेरे प्राप्त थाय छे, कारण के-आ ‘ धर्मप्रशंसा ’ ने शास्त्रकर्ता पुण्यानुबंधीपुण्यनुं कारण कहे छे. “ पुण्यमनुबध्नातीत्येवं शीलमिति पुण्यानु-बंधि तत्त्वत्तुपुण्यं च पुण्यानुबंधीपुण्यं ॥ ” जे पुण्य कर्या पछी अनुक्रमे पुण्यकर्मोनो प्रवाह चाल्या करे, यावत् जे पुण्य

सर्वथा कर्मोनी निर्जरा करवाई पछ्ही ज आत्माथी अलग थाय। आ प्रमाणे पुण्यानुबंधी पुण्यपदनी व्याख्या कही छे, एट्ले धर्म अने सदाचारनी प्रशंसा करवाथी प्रशंसा करनार उत्तरोत्तर पुण्यकार्योनी परंपरा ज इस्तगत करे छे, आ ज हेतुथी स्मृतिए शुद्ध एवा 'जनप्रियत्व' नामक पांचमा गुणने धर्मसिद्धिना फल आपनार तरीके वर्णन्यो. पुण्यानुबंधीपुण्य माटे ज इरिमद्स्मृतिभरजी बदे छे के—“शुभानुबन्धयतः पुण्यं, कर्तव्यं सर्वथा नरैः । यत्प्रभावादपातिन्यो, जायते सर्वसंपदः” ॥ १ ॥ सुंदर महेलमां रहेनार अधिक सुंदर महेलमां निवासार्थे जाय तेम ज पुण्यना प्रभावथी मनुष्यो उत्तरोत्तर अधिक समृद्धिओने पामे छे, अतएव गुणानुबंधी एवुं पुण्य भविक आत्माओए सर्वथा उपार्जन करवुं उचित छे, कारण के ए ज पुण्यना प्रभावथी नाश नहीं पामनारी एवी सर्व संपत्तियो ग्रास थाय छे.” पुण्यानुबंधीपुण्यना कारणो अंथकर्त्ताए अष्टकमां आ प्रमाणे कहा छे—“दया भूतेषु वैराग्यं, विधिवदूगुरुपूजनम् । विशुद्धा शील-शृतिश्च, पुण्यं पुण्यानुबन्धयदः” ॥ २ ॥ एकेंद्रियथी पंचेंद्रिय पर्यंत जीवोपर दया, वैराग्य, विधिपूर्वक गुरुजनोनी पूजा, विशुद्ध एट्ले पवित्र सदाचारो—आ कारणोथी पुण्यानुबंधीपुण्य बंधाय छे.”

ए रीते परंपराए धर्मसिद्धि अने तैना फलो आपवाथी 'जनप्रियत्व' नामे पांचमो गुण 'धर्मतत्त्व' ना लक्षण-

(२२०)

तरीके योग्य अने सुसंबद्ध कहो। भावार्थ ए के-उपर कहेत
चारित्रवंतनी क्रियाओ प्रशंसापात्र बनवाथी सदाचारी शुद्ध-
वर्तन होवाथी लोकोने हानि न थाय तेवी प्रदृच्छा आदरवाथी
हास्य अने निंदा न बने तेकुं आचरण करवाथी पोते 'जन-
प्रिय' बनवा साथे परने अनुकरणीय चारित्रद्वारा स्वपर
उभयने धर्मसिद्धिकारक बने छे। अतएव आ लक्षणथी धर्म
पामेल धर्मी आत्मामां 'धर्मतत्त्व' नी प्राप्ति यह छे के नहीं
एकुं अनुमान सुंदर रीते करी शकाय छे।

उपर कहा प्रमाणे 'धर्मतत्त्व' ना पांच लक्षणो पांच
श्लोकथी ग्रंथकर्ताए विस्तारथी बताव्या, जे परथी तेकुं स्वरूप
समजाव्या पछी विवेकी कोइ पण आत्मा धर्मीओनी परीक्षा
करवा जरुर समर्थ थाय एमां संदेह नथी, तथापि विशिष्ट
परीक्षा माटे फरी ग्रंथकर्ता तेना धर्मी आत्मामां विशिष्ट दोषो
जेवा के विषयतृष्णा विगेरेनो जरुर अभाव होय ते समजाव्या
माटे हृष्टांतपूर्वक आदि दोषोंनु विस्तृत स्वरूप दर्शावे छे—

आरोग्ये सति यद्वद्

. व्याधिविकारा भवन्ति नो पुंसाम् ।

तद्वद्भर्मारोग्ये

पापविकारा अपि ज्ञेयाः ॥ ४-८ ॥

मूलार्थ—आरोग्यता-रोगनो अभाव थथा पछी
जेम मनुष्यने काँह पण व्याधि संबंधी विकारो उद्भवता नथी

(२२१)

तेमज धर्म संवंधी आरोग्यता मल्या पक्षी पापहृप विकारोनो
जन्म घतो नथी.

“स्पष्टीकरण”

आरोग्यता एट्ले तंदुरस्तीपणुं, रोगनो अभाव, एट्ले
तंदुरस्तीपणामां व्याधिश्चो जन्मे तो तंदुरस्तीपणुं न कहे-
वाय, कारण के तंदुरस्तीपणुं तथा व्याधियो ए वंनेने परस्पर
प्रतिबंधक प्रतिवध्यभाव हें, ते ज प्रमाणे प्रथम जणावेल पांच
लक्षण विशिष्ट ‘धर्मतच्च’ पाम्या पक्षी पापविकारो जेतुं
स्वरूप ग्रंथकर्ता नीचे जणावे हे ते कढापि उद्भवे नहीं
अर्थात् ए पापविकारोने वंध करनार उपरोक्त धर्मतच्चरूप आरो-
ग्यता जाणवी. आ श्लोकना पूर्व भागमां ग्रंथकर्तार्ए दृष्टांत
आप्युं अने उत्तरभागमां दार्ष्टान्तिकनी घटना करी हे.
परमार्थ ए के—आरोग्यतानी सामे धर्मरोग्यता अने व्याधिविका-
रोनी सामे पापविकारो ए प्रमाणे दृष्टांत दार्ष्टान्तिकनी घटना
समजवी.

धर्मतच्चना प्रभावयी जे जे पापविकारोनो नाश थाय अथवा
उद्भवे नहीं तेतुं स्वरूप ग्रंथकर्ता विस्तारथी दशावे हे.

तत्त्वास्य विषयतुष्णा

प्रभवत्युच्चैर्न दृष्टिसम्मोहः ।

अस्त्रविर्न धर्मपथ्ये

न च पापा क्रोधकंदूतिः ॥ ४-९ ॥

मूलार्थ—आ धर्मतत्त्व पामेल पनुष्यने अंतिगाह विषय-तृष्णा उद्भवती नथी तेपज हाहिसंपोह पण पराभव करी शकतो नथी, अने धर्मरूपी पृथ्य पर अखंचि आवती नर्थी, एवं पापीष्ट क्रोधनी सुजलीओ के जेनाथी धर्म-धननो नाश थाय ते पण आविर्भाव पापती नर्थी.

“ स्पष्टीकरण ”

आ श्लोकथी मूलकर्ता धर्मतत्त्व पाम्या पद्धी तेना ग्रभावथी शुभ आत्माने क्या क्या पापविकारो उद्भवता नथी तेनो केवल नामनिर्देश दशावे ह्ये, कारण के नाम-निर्देश कर्या पद्धी विशेष स्वरूप कहेवानी सुगमता थाय. उपर धर्मतत्त्वना प्रभावथी पांच विशिष्ट गुणोनो लाभ थाय एवं विधिसुखे प्रतिपादन कर्यु, हवे निषेशसुखे दोषो न उद्भवते अर्ही जगावे ह्ये. जो के गुणप्राप्ति जणाव्या पद्धी दोषाभाव यथातुं अर्थापत्तिथी ज लभ्य ह्ये, एटले फरी दोषाभावतुं स्वरूप कहेवुं काकड़ंत परीक्षा जेवुं ज गणाय; परंतु अर्ही विशिष्टता आ समजवी के ज्यां गुण अने दोषोनो परस्पर प्रतिबंधक प्रतिव्ययाव सुविटित होय त्यां ज उपरोक्त न्याय लागु थाय. हृषान्त तरीके शील अने व्यभिचार, दान तथा कृपणता विग-रेने तथापक्षारे अर्ही पण उपरोक्त पांच गुणो अने आगल कथन करातां पापविकारोने परस्पर प्रतिबंधक प्रतिव्ययाव नथी, अर्थात् उपरोक्त गुणप्राप्ति यथा पद्धी गुण आगल कथन करातां पापविकारो जागृतिने पामे ह्ये. अतएव ग्रंथकर्ताए ‘ दोषाभाव ’ स्वरूप व्याप्तिरेकमुखयी विस्तृतया भवाभिन्नपणे

स्पष्ट कथन करे छे. अन्यथा आ 'दोषाभाव' नुं भिज स्वरूप दर्शावानी जहर नथी. आ पापविकारो गाढ विषयतृष्णा १ दृष्टिसंमोह २, धर्मपथ्यमां अखचि ३ अने क्रोधकंहूति ४ जाणवा. आ चारे विकारोनुं विशेष स्वरूप ग्रंथकर्ता पोते ज विस्तारथी दर्शावशे एटले अमे अहीं नाम मात्रनुं ज सूचन कर्यु.

प्रथम विषयतृष्णानुं लक्षण जणावे छे.

गम्यागम्यविभागं

**त्यक्त्वा सर्वत्र वर्तते जन्तुः ।
विषयेष्ववित्तसात्मा**

यतो भूशं विषयतृष्णेयम् ॥ ४-१० ॥

मूलार्थ—शब्द, सर्प, रस, रूप अने गंध ए पांच विषयो छे. आ विषयोथी जेशोनो आत्मा संतोष नथी पाम्यो तेवाओ गम्य अने अगम्यनो विवेक विचार्या वगर चारे तरफ फांफां मारे छे माटे अन्य विषयवासनानी अपेक्षाए आ गाढ तृष्णा भान भूलावनार होवाथी आनुं नाम विषयतृष्णा नामे पापविकार विद्वानोए कह्यो.

" स्पष्टीकरण "

विषयतृष्णा नामे प्रथम पापविकारनुं स्वरूप अहीं जणावे छे तेपां संसाराने अंगे विषयेच्छानो सर्वथा अभाव मानवो अकल्पनीय छे. अनादिनी चदयगत विषयेच्छा पूर्ण करवाने ज संसार संसारीओ रचे छे, आयी अहीं

विषयतृष्णाने वे विभागपां वहेची शकायः एक साधारण विषय-
तृष्णा अने बीजी असाधारण अतिविषयतृष्णा. अद्यपि वहे
विषयेच्छाओने पाप ज मानी क्षे तथा जे विषयेच्छानी पूर्णता
करवाने आत्मा पोतानो विवेक अने मर्यादा तोडवापर्यंत नीची
दशापां उतरे नहीं तेप्रभ इहलोक परलोकना अकार्योथी समय-
पर्ये प्रवृत्ति आदरे तेने साधारण विषयतृष्णा जगावी पापवि-
कारना लक्षणथी वहिर्भूत मानी ह्ये, कारण के आ विषयेच्छा
ब्रतधारी जैनो तथा सम्यक्त्वधारी आत्माओ पर्ण एकाएक
त्यागी शकता नथी अने परिणामे स्वहित साधवाने समर्थ
थाय ह्ये. सम्यक्त्व पाम्या पछी भरतचक्रवर्ती चोसठ हजार
राणीयो साथे भोगविलास करता हता. चेदाराजा, उदायी महा-
राज, कृष्णवासुदेव अने श्रेणिकराजा विग्रेना द्वष्टांतो शास्त्रमा
प्रसिद्ध ह्ये. परमार्थ ए के-धर्म अने आत्महितनुं साध्य भ्रष्ट
न थवुं जोइए. आ विषयेच्छा पर्ण आसक्ति अने अनासक्ति
भेदोथी वे प्रकारनी जाणवी. तीर्थंकर विग्रेना जीवो मति-शुद्ध-
आवधिज्ञानवंत ह्यतां जे अमुक वर्षों पर्यंत गृहवासपां रही राज-
भोग, भोगविलासो सेवता हता ते मात्र उदयगत कर्मोना फलोनी
विचित्रता जाणीने तेना अनुभवार्थे ज भोगवता अर्थात् अना-
सक्तिपर्णे रहा हता. अने ज्यारे कर्मोदय शांत थयो एट्ले
तुरतज्ज वस्त्रांचले लागेल तृणानी पाफक सर्व भोगनो त्याग
करता. तेप्रभ नेमनाय प्रभुए कर्मोदय न होवायी गृहवास सेव्यो
. नहीं, ए ज अनासक्ति विषयेच्छानी अवधि जाणवी. वासुदेव,

चक्रवर्ती अने राजाओ विग्रेरे धर्मस्वरूप जाण्या पछी, ब्रत अने समकित पाम्या पछी जे विलासादि सेवता ते अनासक्ति नहीं किन्तु आसक्ति ज हती. आ परथी समजवानुं के जेओ निश्चयनी वातो करी, अध्यात्मनो डोळ घाली, तिथि के अतिथि, रात्रि के दिवस, खाद्य के अखाद्य, गम्य के अगम्यनो विचार वाजु पर मूकी विषयेच्छाओ—तृष्णाओ पूर्ण करवामां ज लीन वनी, अन्यने अमने आसक्ति नथी, मात्र कर्मदयना लीधे ज आ अमारी प्रवृत्तिओ चालु छे, जो आसक्तिपूर्वक चेष्टा होय तो ज पुनः कर्मनो वंध थाय अतएव जिनेभरोए शाह्नमां अध्यवसाए वन्ध मान्यो छे ए प्रमाणे समजावे छे तेओ प्रति अहीं अमे विशेष नथी कहेवा मागता; पण आ लोकोए उपरना भेदो विचारवा तेमन पोतानी चेष्टाओ अनासक्तिपणानी छे (!) ए वात उपर दर्शित स्वरूपनी साथे विचारवी जेथी वेवढा पापवंथी पोताना आत्माने वचावी लेवाय.

अत्रे चालु अल्लोकमां केवल अतिविषयतृष्णानुं स्वरूप ग्रंथकर्ता जणावे छे, जे विषयेच्छाना वलथी कोइ पण आत्मा मृढ अने विवेकमर्यादा रहित थाय. “कामान्धा न पद्धयन्ति” ए न्याये कामीजनो कांइ पण जोइ शके नहीं, एवं परिणीत, अपरिणीत, वालविधवा, कन्या, रंडा तथा वेश्या गमे त्यां गमन करे, स्वजाति तथा परजातिनो पण विचार जे करे नहीं, रात्रि-दिवसनो विभाग, तिथि-अतिथिनो विभाग पण जे जाळवे नहीं, नितान्त

भानहृतिए विषयान्व वनी विपयेच्छापूरक शब्द, सर्प, रस, रूप अने गंधादि पदार्थोंनी प्राप्ति अर्थे अति तृष्णाथी चेष्टाओ करे छे. अतएव आ तृष्णाने शास्त्रकर्ताए प्रथमनी तृष्णायी अलग पाढी अतिविषयतृष्णा पर्वुं नाम आप्युं, कारण के आ तृष्णाना उदयथी आत्मा पोतालुं हित अने इहलोक-परलोकनुं कल्याण विचारी शकतो नथी, एवं धर्म पण करी शकतो नथी. एक कविए वरावरज कहुं छे के:—“दिवा पश्यति नो घूकः, काको नक्तं न पश्यति । अपूर्वः कोऽपि कामान्धो, दिवा नक्तं न पश्यति ” ॥१॥ “ दुष्कृद दिवसे देखतुं नथी अने कागडो रात्रीए देखतो नथी त्यारे कामान्ध दिवस अने रात्रिए पण देखतो नथी.” तेमज—“हृशं वस्तु परं न पश्यति जगत्यन्धः पुरोऽवस्थितं, कामान्धस्तु यदस्ति तत्परिहरन् यज्ञास्ति तत्पश्यति । कुन्देन्दीदिरपूर्णचन्द्रकलसश्रीमङ्गतापङ्गवा-नारोप्या-शुचिराशिषु प्रियतमागात्रेषु यन्मोदते ” ॥२॥ “ जगत्मां अन्ध मनुष्य समीपे रहेल दृश्य पदार्थो देखतो नथी ए वात काँइ आश्वर्य करे तेवी नथी, पण कामान्ध जन तो पासे रहेल होय अने दृश्य होय तेनो त्याग करी जे समीपे अने दृश्य पण न होय तेवा पदार्थोंने देखे छे, कारण के स्त्रीओना प्रत्येक अवयवो अशुचि तथा वीभत्स छतां नेत्रमां कमलानो, मुखमां पूर्णचन्द्रनो, स्तनमां कलशनो, भुजामां लतानो आरोप करी स्त्रीना अवयवो देखी प्रसन्न थाय छे.” आवी स्थितिए पहों-

चेल मनुष्यने धर्मना साधनो तथा धर्म क्यांथी उपलब्ध थाय ?
हेतु एके—तेने स्वमे पण स्वहितनो विचार आवबो अशक्य छे.

आ स्थले रावणनुं चरित्र हितार्थीने मनन करवा जेबुँ छे.
रावण एक समर्थ राजाधिराजनुं पद धारवा साथे विद्याताने
पण टकोर करनार महाप्रजाशाली हतो. जेनां बुद्धि-चार्तुर्य
आगल ब्रहस्पति सरीखाओ पण सेवक समान मनाया हता,
जेनी दक्षता अने बलिष्ठता पासे दैत्यो तथा राक्षसो थरयर
कंपित थता हता, जे नीतिशाली होइ प्रजानुं वात्सल्यभावर्थी
पालन करतो हतो, आबो समर्थ अने चतुर छतां ज्यारं
सीता प्रति तेबुँ मन ललचायुं त्यारे ते सर्व भान भूली गयो,
खाही के परखी, कार्य के अकार्यनो विचार ख्यो नहीं, निता-
न्त तेना ज ध्यानमां दुर्बल थवा लाय्यो. छेवटे पापनो, अनी-
तिनो, लोकलज्ञानो, अपकीर्ति विगेरेनो भय त्याग करी
सीताने पोताने त्यां उठावी लाव्यो अने तेनी साथे पोतानी
वासना तृप्त करवाने घणाये गोया खाधा. अंतमां वासना पूरी
यह नहीं, कोइनुं मान्युं नहीं, सर्वथा भ्रष्ट थयो अने पोतानी
पाढ्यल जगत पर सदाने माटे अपकीर्तिनो पुंज राखी गयो.

आ सर्व स्थितियो उपर कहेल अतिविषयतृष्णानुं ज
कार्य समजबुँ. अतएव ग्रंथकार आ तृष्णाने ‘पापविकार’
गणी धर्मी आत्मामां आनो अभाव जणावे छे, तेप ज खास
म्लोकमां जणाव्युं छे के—‘विषयेष्ववित्रसात्मा’ आ

तृष्णाना उद्ययी समर्थ आत्मा पण सर्वदा विषयोमां अवृत्त ज
रहे छे, एट्ले गमे तेवा सुंदर अग्राप्य अने अलौकिक भोग्य
पदार्थों उपलब्ध थाय तो पण अन्य अन्य विषयो मेळवाने
अभिलाषा ज रहे छे. आ हेतुथी न आ तृष्णा त्याज्य गणी
अने आ तृष्णाना उद्यमां उपरोक्त 'धर्मतत्त्व' पापां
दुर्लभ बताव्यो.

हवे दृष्टिसंमोह नामे वीजा पापविकारनुं स्वरूप प्रगट करे छे.

गुणतस्तुल्ये तत्त्वे

संज्ञाभेदागमान्यथाद्वाष्टः ।

भवति यतोऽसावधमो—

दोषः खलु दृष्टिसंमोहः ॥ ४—११ ॥

मूलार्थ—जेतुं फल एक सरखुं होय एवा वे तात्त्विक
पदार्थों छे, छतां वचे पदार्थोंने नामयेद्यी अथवा पोतपोताना
आगममां बतावेल प्रकारथी अन्यथापणे माने एवा प्रकारनो
दोष जेना बलयी प्रगटे देने निश्चयतया विद्वानो 'दृष्टिसंमोह'
नामे वीजो पापविकार माने छे.

“ स्पष्टीकरण ”

प्रथम पापविकार 'विषयतृष्णा' जणावी. हवे 'दृष्टिसं-
मोह' नामे पापविकार जणावे छे. अर्हो 'विषयतृष्णा' ना
स्वरूप पछी 'दृष्टिसंमोह' नुं स्वरूप कयन कर्युं पण प्रथम

‘ दृष्टिसंभोह’ तुं अने त्यारवाद विषयतृष्णातुं स्वरूप एवो
अनुक्रम केम न जणाव्यो १ ए प्रश्न सहजतया पैदा थाय छे.
उत्तरमां समजवालुं के-जे अर्हीं चार पापविकारो जणाव्या
तेमां उत्पत्तिक्रमनी अपेक्षाए विचार करीए तो प्रथम क्रोधकं-
द्वृति, बीजो धर्मपथ्यमां अस्त्वचि, बीजो दृष्टिसंभोह अने चतुर्थ
विषयतृष्णा ए प्रमाणे पापविकारो उपजे छे. क्रोधथी धर्ममां
अस्त्वचि, अस्त्वचिथी दृष्टिनो मोह अने दृष्टिमोह यथा पछी
विषयेच्छा प्रगटे—आ क्रम छतां ग्रंथकर्ताए यथाप्राधान्य न्याये
एट्ले सर्वथी प्रधान पदार्थोनो प्रथम न्यास करवो अने पछी
प्रधान प्रधाननो अनुक्रमे न्यास करवो ए रीति स्वीकारी छे.

मूलना ‘दृष्टिसंभोह’ नामे पदनी टीकामां—“ दृष्टिः
दर्शनं—आगमः जिनमतं तत्र संभोहः संमृढता
अन्यथोक्तस्यान्यथा प्रतिपत्तिः दर्शनसंभोहः ”
“ दर्शन एट्ले आगम—जिनमत तेमां मृढता अर्थात् आगममां
कहेल वस्तुने अन्यथापणे स्वीकारवी तेनुं नाम दर्शनसंभोह
जाणावुं ” ए प्रमाणे कहुँ छे. आथी दृष्टि एट्ले मान्यता—
वस्तुप्रतिपत्ति तेमां पतिनी व्याकूलता ते ज दृष्टिमोहानुं खरूं
स्वरूप समजबुं. अर्हीं दृष्टिमोह वस्तुबोधमां मुङ्गवण करावी
वस्तु—स्वीकारना रागमां खेची जाय छे, अने दृष्टिराग अमुक
व्यक्तिमां राग उपजावी व्यक्तिप्रेम तरफ खेची जाय छे. आथी
जे प्रेम बन्या पछी अनेक अनर्थों तथा आत्मअहित वेठवा
छतां आ रागने समजु पञ्चय पण छोडी शकतो नथी.

“ हृषिरागस्तु पापीयान्दुरुच्छेदः सतामपि ” अतएव
आ वज्रे दुर्गुणो अलग अलग समजवा, पण वज्रनी ऐक्यता
करवानी उत्तावल करवी नहीं। आ हृषिमोह पोताना उपजवा
पछी आभिनिवेशिक नामे मिथ्यात्वभावने अवश्य उपजवे
छे अर्थात् आभिनिवेशिक मिथ्यात्व विना केवल हृषिमोह
रही शकतो नथी, माटे हृषिमोह आभिनिवेशिक मिथ्यात्वतुं
खास उपादान कारण मान्युं छे। अतएव मूलकारे अर्हीं मूलमां
‘अधमो दोषः’ ए पदथी आ दोष अधम-निकृष्ट छे एम
कहुं, आठलुं ज नहीं पण ‘खलु’ ए पद खास वधारे भार
मूकवाने आप्युं छे अर्थात्-आ दोष खरेखर अधम ज हो,
आत्मानो घातक नितान्त आ दोष हो। हवे झ्लोकना पूर्वार्धथी
आ दोषतुं स्वरूप समजावे छे। ‘गुणतस्तुल्ये तत्त्वे सं-
ज्ञाभेदागमान्यथाहृषिः’ गुणनो अर्थ उपकारफल तेने
आश्रीने तुल्य एट्ले समान अने तत्त्वनो अर्थ पदार्थ। ‘तत्त्वे’
अर्हीं द्विचक्षन होवाथी दे पदार्थों लेवा। परमार्थ ए के-दे
पदार्थों एवा होय के जेनुं फल बराबर एक सरखुं ज होय,
छातां पात्र वज्रना नामो भिन्न भिन्न होय तेथी अने पोतपोताना
मानेल आगमोमां भिन्न प्रकार वताच्यो होय तेथी आ वज्रे
कारणोथी ते वज्रे पदार्थोंने वस्तुतः एक छातां भिन्नरूपे मानवा।
जेमके-‘ मा हिंस्यात् सर्वभूतानि ’ ए वाक्यथी भूताहिं-
सामां पाप मान्युं तो पण अमुक जीवनो कोइ पाण्यस मांसना
लोभयी अथवा अन्य कारणाथी वध करे एट्ले आ वध करवामां

जेम पाप मान्युं तेम वैदिको वेदवाक्यथी यज्ञना माटे अमुक जीवोने वध करे आ वधमां पाप नथी मान्युं. हवे अहीं पोताना स्वार्थ निमित्ते करेल वधमां दुष्टचित्त मारवाना क्लिष्ट परिणामो अने स्वार्थनी तृप्ति तेमज मांसास्वाद आदि फलो वधकर्ता अनुभवे छे आ हेतुथी प्राणीवधमां पाप मान्युं. ते ज रीते यज्ञ माटे जे हिंसा थाय त्यां पण द्विसाकर्त्तामां दुष्टचित्त मारवानी बुद्धि, स्वार्थलोभ अने यज्ञशेषानो भोग विग्रेनो शब्दय सदू-भाव छे, तथापि आ हिंसामां वेदवचनथी दोष न मानवो आनुं ज नाम शास्त्रकर्ता दृष्टिसंमोह जणावे छे, कारण के उपरोक्त बजे हिंसाओ परमार्थथी हिंसा ज छे, बचेनुं फल पण एक सरखुं छे; किन्तु यज्ञहिंसा वेदमां कर्तव्य तरीके जणावी एटले तेने वैदिकोए हिंसा न मानी अने वीजी हिंसामां अघर्ष मान्यो. ए ज रीते अमुक संप्रदायमां आचार्य गृहवासी अने शिष्यसमु-दाय त्यागी तथा ब्रह्मचारी आचार्यनी पालत्वी वहन करे, चापर ढाले, जे गृहसंसार अन्यने माटे पापरूप मान्यो त्यारे आचार्य प्रभुनो अवतार मनावी भोगविलासो करे अने तेमां पापनो अंश मात्र नथी परंतु ए तो इश्वरनी लीला छे एम वदे, तेम ज गुंसाइओ पण कृष्णावतार मनावी भोगविलासो करे तथा पाप न माने, जैनमतमां पण केटलाक शुष्क अध्यात्मवा-दीओ अमुक अमुक पापोनुं सेवन करे छतां ‘ए तो शरीरनी प्रवृत्ति छे’ एम कही पाप नथी मानता ए सर्व चेष्टाओ दृष्टिसंमोह नामे दुर्गुणनी उपजावेली समजवी के जे दुर्गुणना

उदयथी ते ते आत्माओ पापने पापरूप न मानता कर्तव्यर्थम
माने हो. आ ज दोषना वलथी उंच भूमिकाए पहोंचेल आत्माओ
उंधे मुखे पडी अधोमार्गगामी बन्धा हो. जमाली महाबीर
प्रभुथी उलटो थयो, त्रैराशिकमत प्ररूपक संघ आचार्य अने
भगवंतना सिद्धान्तथी उलटो चालयो विगेरे 'दृष्टिसंमोहना'
साम्राज्यनो ज प्रभाव कहो हो.

अथवा प्रकारांतरे दृष्टिसंहनुं स्वरूप जाणबुं. ' शुणतः '
ए पदनो भाव अध्यवसाय ए अर्थ लेवो, अर्थात् ए क्रियाओ
तुल्य होय, तेना कर्ताओ वज्जे जण एकसरखा परिणामवाला
होय अगर वज्जे क्रियाओ समान भाववाली होय छतां तेमाँ
नामभेदथी अथवा आगमवचनथी पूर्वे कहेल वैदिकोनी यह-
हिंसानी माफक एकने पापरूप मानवी अने अन्यने कर्तव्य-
कर्म तरीके मानवी आ लक्षण जे प्रवृत्तिमां सुघटित थाय ते
दृष्टिसंमोह जाणावो. अने जे क्रिया उपलक दृष्टिये सरखी होय,
तेमाँ प्रवर्तन करनार पण उपलक दृष्टिये पाप आचरण करतो
देखाय छतां परिणामनी धारा भिज ज-अलिस होय, ते क्रियामाँ
पोतानो यत्किञ्चित् स्वार्थ न होय तेमज क्रियान्य फलनी इच्छा
पोताना माटे रातवतो न होय किन्तु धर्मसंरक्षण बुद्धि ज होय
तो ते क्रिया पापरूप देखावा छतां तेना कर्ताने नितान्त कर्म-
निर्वरा अने शुभवंध ज थाय; परंतु पाप लागे नहीं. दृष्टांत
तरीके एक माणस, कुदंब, द्वी, पुत्र अने घन आदिनी लालसाडी
व्यापार, खेती, व्याज, आमसंरक्षण आदि करतो होय, अने

एक मनुष्य केवल धर्मना माटे हाट, हवेली, व्याज, आम-संरक्षण अने सुवर्णादिनो संचय करतो होय—आ वेमां पहेलांने स्वार्थ, तुणा, लोभ अने पापहुळि होवाथी तेने आरंभ-जन्य पापबंध अवश्य थाय छे; कारण ए के स्वार्थने माटे खी आदिना मोहना लीघे आरंभादि सेवनारमां कदापि ते ते आरंभादिमां शुभ परिणाम संभवतो नथी, ज्यारे वीजामां स्वार्थ, लोभ अने दुष्ट परिणामो न होवाथी केवल धर्म तथा शासननी अपूर्व भक्ति होवाथी शुभ परिणाम संभवे छे. एट्ले तेने शुभबंध ज थाय ए ज बात शास्त्रोमां विस्तारथी ज प्रश्नोत्तर पूर्वक जणावी छे.

फरी आ विषयमां अहीं श्रीमान् यशोविजयजी उपाध्यायजी त्रीजो प्रकार दर्शविए छे.—‘ गुणतः शब्दार्थतस्तुत्ये तत्त्वे हिंसादीनां ’ गुणथी-शब्दार्थथी हिंसादिनुं स्वरूप समान होय परंतु नामभेदथी पोतपोताना शास्त्रोमां भिन्न भिन्न शब्दोथी दर्शविल होय. भावार्थ ए के—सर्व दर्शनकारोप पोतपोताना पतोमां हिंसादिनुं स्वरूप स्पष्ट जणावी तेनो निषेध दर्शाव्यो छे, एवं जैनो पण हिंसादिनुं स्वरूप स्पष्ट कर्या पछी तेना त्याग माटे महाब्रत शब्द, पातंजल अकरण शब्द, वौद्धो नियम शब्द कहे छे. एट्ले मात्र अहीं नामभेद सिवाय अन्य काँइ तत्त्व नथी. वस्तुतः महाब्रत, अकरण अने नियम ए अणेनो एक ज भाव शब्द—अयुत्पत्ति करवायी उपस्थित थाय छे, तथापि महाब्रत कथनकर्ता अमारुं जैनागम सुंदर छे; अक-

रण तथा नियम दर्शावनार अन्य शास्त्रो समीचीन नयी ए प्रकारे आग्रहविशिष्ट वस्तु स्वीकारः करवाथी उपाध्यायजी कहे छे के ते दृष्टिमोहज गणाय. निदान ए के—यद्यपि अन्य शास्त्रो समीचीन मान्या नयी तो पण जे अंशमां सर्वज्ञमतने अनुसरता होय अने नितान्त नामभेदथी ज अलग पड़ता होय ते अंशने असमीचीन अने असत्य स्थापवाथी विपरीत मान्यता ज गणी शकाय. अतएव आ दृष्टिने दृष्टिमोह जणाव्यो तेमज अन्य मतमां जे सर्वज्ञवचननुं अनुसरण देखाय छे ते सर्वज्ञमतना वाक्योना आलंबन लीधा पछी ज संभवे; अन्यथा अंश मात्र मात्र पण सत्य वस्तुवोष अन्य मतमां क्याँथी घटे ? कहुं पण छे के उपदेशपदमां प्रस्तुतः ग्रंथकर्ताए “सद्बवप्पवायमूलं बुवालसंगं जओ जिणक्खायं । इयणागरतुल्हं खलु तो सच्चं सुन्दरं तम्मि ” ॥ १ ॥ “ द्वादशांगीमांथी अमुक अमुक वचनो स्वीकार्या पछी प्रत्येक मतो उपस्थित यथा छे. आ हेतुथी आ द्वादशांगी रत्नाकर समान होवाथी सर्व मतोनुं मूल जिनकथित द्वादशांगी कही छे, एट्ले परमतना शास्त्रोंमां जे जे सुंदर होय ते ते द्वादशांगी अंतर्गतनुं जाणबुं.” दुंकाणमां एट्लुं ज समजवानुं के ज्यां नामभेद सिवाय वस्तुतः पदार्थभेद न होय, परमार्थतया एक ज होय, छतां नामभेदना लीधे आग्रहमां खेंची जह पोतानुं ते साहं अने अन्यनुं सारं छतां खोडुं मानबुं ते दृष्टिमोहनुं लक्षण छे. अर्ही एक अंश मात्र सत्य पदार्थ जणावनार अन्य मतने सुंदर मनाववानो

(२३५)

उपाध्यायजीनो आशय नथी, किन्तु नामभेद जाणी वस्तुनो विचार नहीं करवो अने नापना मोहर्यां खेंचाइ जबुं ए खोडुं छे, अहितकर्ता छे, सत्य वस्तुनी परीक्षाथी ठगावानुं छे ए ज बतावचानो मनोरथ उपाध्यायजीनो छे. आ अणे प्रकारो ‘दृष्टिमोह’ नुं स्वरूप जणावे छे अने ‘दृष्टिमोह’ मिथ्यात्म-भावजनक होवाथी ग्रंथकर्ताए तेने अधम-निकृष्ट दोष जणावी घर्मार्थी आत्माने सर्वथा ल्याग करवा योग्य छे एम मानी आ प्रमाणे विस्तृत स्वरूप कहुं.

ए रीते ‘दृष्टिसंमोह’ नुं स्वरूप जणाव्या पछी ‘घर्मपथ्यमां अरुचि’ ए त्रीजा दोषनुं स्वरूप जणावे छे.

घर्मश्रवणेऽवज्ञा

तत्त्वरसास्वादविमुखता चैव ।

धार्मिकसत्त्वासक्तिश्च

घर्मपथ्येऽरुचेलिंगम् ॥ ४-१२ ॥

मूलार्थ—घर्मव्याख्यानोनां श्रवणमां अनादर, परमार्थभूत पदार्थ संवंधी जे रस तेना स्वादमां विमुखपणुं, धर्मिष्टजनोनी संगति नहीं करवी ए सबैं घर्मपथ्यना अरुचि चिह्नो छे.

“ स्पष्टीकरण ”

घर्मपथ्यनी अरुचिना प्रकारो दर्शावे छे. घर्मजाह्नो अने घर्मव्याख्यानो ज्यां बंचाता होय त्यां तेने सांभलवानी रुचि

न थाय, प्रमाद आडो आवे अथवा निद्रा विगेरे अनेक विधो
खड़ा थाय तेमज निवृत्ति नथी, व्यवसाय वहु छे एम कही
धर्मश्रवण न करे आने शृंगाररसनी, विकथानी, हास्यनी, विला-
सोनी ज्यां कथाओ थती होय त्यां उत्साहथी जाय, निद्रा के प्रमाद
नहे नहीं, व्यवसायनो पण विचार आवे नहीं, वली नाटको,
सिंनेमोटोग्राफ आदि देखवा माटे पैसानो व्यय करी गाढ प्रेमथी
गमन करे, ज्यारे धर्मश्रवण करवाने कोइ प्रेरणा करे तो ‘एम
शुं सांभलीशुं छे ? आपणे जाणीए छीए तेमां कांइ नहुं नथी’
अथवा ‘अत्यारे धर्मश्रवणनो समयं नथी, अवस्था यथा पछी
घणुं सांभलीशुं’ इत्यादि कथन करी धर्मश्रवणमां अनादरभाव
उपजबो ते; वली रपणीरस मोजशोखमां लीनता राखवी अने
तत्त्वभूतप दाथोमां, आत्महितमां, निःश्रेयसमार्गमां जे प्यार उप-
जबो जोइए ते न उपजे किन्तु ते रसना आस्वादनभावमां
परांगमुखपणुं प्रगद्युं ते धर्मपृथ्यना अखचिना प्रकारो छे. फरी
जेनी संगति करवाथी आत्माना गुणो आविर्भूत थाय, अना
दिनी कुट्टो मठी जाय, हुंकमां जाड्यं वियो हरति सिंचति
वाचि सत्यं, मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति, सत्संगतिः
कथय किं न करोति मुंसाम् ? ॥१॥ “बुद्धिनी बढतानो
नाश करे, वाचामां सत्यरसनुं सिंचन करे, मानयोग्य उश्वत
दिशालुं दर्शन करावे, पापने दूर करे, वितनी’ प्रसन्नता करे
आने चोतरफ कीर्तिनो वधारो करे एवी सज्जनसंगति महुष्योने
शुं शुं लाभो नथी करती ?”

(२३७)

भावार्थ ए के—सत्संगति जगतना उचामां उचा सर्व लाभो
प्राप्त करावे हे. आवी सज्जनसंगतिना संसर्गमां रहेवाने चित्त
प्रेराय नहीं, किन्तु जेना संगथी दुर्गणो, पापमति, कुव्यसनो
अने निकृष्ट परिणामो मळे तेवी संगति करवाने चित्त राजी
थाय—आ लक्षणोने शास्त्रकर्ता ‘ धर्मपथ्यनी अरुचि ’ नामे
त्रीजो पापविकार गणावे हे. आ पापविकारना बलयी आत्मा
धर्मासृतलुं पान कदापि अनुभवी शकतो नथी अने तेथी
आत्महित समजवाने हतभाष्य रहे हे. आ श्लोकमां उपर कहा
प्रमाणे धर्मश्रवणमां अनादरभाव, तच्चरसास्वादमां विमुखता,
सज्जनोनी असंगति जे दर्शाव्या ते ‘ धर्मपथ्यनी अरुचि ’
विवेकीओने ओळखवा माटे आ त्रण लिंगो जगाव्या
हे, कारण के आ लिंगोने जाण्या पछी स्वआत्मा अने परमात्माना
अंगे ‘ धर्मपथ्यनी अरुचि ’ विवेकीओ वरावर विचारी शके,
तेमज तेनो विचार कर्या पछी आत्माने हितमार्गथी भ्रष्ट थतो
बचावी शके.

हे ‘ क्रोधकंडूति ’ जाणवानो उपाय जणावे हे—

सत्येतरदोषश्चुति—

भावादन्तर्बहिश्च यत्सफुरणम् ।

अविचार्य कार्यतत्त्वं

तच्चिह्नं क्रोधकंडूतेः ॥ ४—१३ ॥

मूलार्थ—सत्य अने असत्य दोषो एट्ले यथास्थित

दोष अथवा असद्भूत दोषों परमुत्तरथी श्रवण करी अंतःकरणमां जे विकार उद्भवे अने पछी बाहा आकृतिद्वारा ते विकारों प्रत्यक्ष देखाय तेपर्यं आ विकारथी परमार्थ कार्यतत्त्वनो विचार बाजु पर रहे ते माटे आ विकारने क्रोधकंदृतीलुं चिह्न कहुं छे.

“ स्पष्टीकरण ”

जे कारणोथी आत्मानी समधारण प्रकृति—प्रध्यस्थभावनो विकार थाय अने आत्मा स्वभावथी उलटो चाले के जे समये शरीरना प्रत्येक अवयवो आवेशमय जणाय ते विकारने शास्त्रकर्ता क्रोधविकार जणावे छे. आ विकार उद्भववाना अनेक गौण—मूल्य कारणो गणाव्या छे. घणी व्यक्तिओ चीडियालु स्वभावना लीधे जे बखते कोइ पण चीडियापणालुं कारण उम्हुं करे एटले चीडाइने आवेशमय सविकारी वने छे, ज्यारे धीजाओ पोतानी मानलोलुपी बुद्धिना लीधे मानप्राप्तिमां अंतराय आवतो देखे एटले सविकारी थाय छे. अन्य व्यक्तिओ अणसमजना कारणोथी क्रोधी वने छे. केटलाको हास्यस्त्रभावथी, केटलाक कौतुकपणाने लीधे एम चिचिन्त्र कारणो आवेश उद्भववाना अनुभवाय छे. अहीं क्रोधकंदृतीना जे कारणो कहेशो ते मात्र कांइक समजु अने विवेकीजनने जे कारणोथी क्रोध प्रगटे ते ज जाणवा. अविवेकी तथा अक्षल विनाना लोकोने उपरोक्त कारणोथी क्रोध उद्भवे छे, तो पण अहीं जे कारणो दर्शावे छे तेमां ते कारणोनो अंतर्भव यवाथी उपरोक्त कारणो अहीं दर्शाव्या नयी, अने अंशदर्शित

कारणो एवा क्षे के जे कारणो बाल, मध्यम अने प्राज्ञ
ए त्रणे वर्गमां घटी शके, तेमज ' छमरुक माणि ' न्याये
मध्यम गुणस्वरूप कहा पछी दोषस्वरूप अने त्यारपछी फरी
विशिष्ट गुणस्वरूप जणाव्युं होवाथी आ दोष त्रणे वर्गमां
लागु थइ शके क्षे. आथी उपरोक्त क्रोधना कारणो अर्ही केम
न जणाव्या तेनो खुलासो थइ गयो. मध्यम जनोने क्रोध
शाथी उपजे ते आ प्रकारे जाणवुं-' सत्येतरदोषअनुति-
भावादन्तर्बहिश्च यत्स्फुरण ' सद्भूत दोषो सांभलवाथी
अने आरोपित दोषो सांभलवाथी अंतरंगमां जे विकारो
उद्भवे ने तेथी बाह्याकृतिमां विकारो तरी आवे. परमार्थ ए के-
कर्मदोषथी अगर अनादि अभ्यासवलथी अथवा अमुक
संयोगोथी सुंदर ग्रवृत्ति छोडी थोडुं या वधारे जे कांइ असुंदर
आचरण कर्युं होय अथवा अन्यने तुकसान थाय तेवी क्रिया
सेवी होय, जे परथी बालजीवो, प्राकृत लोको लोकसमूहमां
अगर अमुक व्यक्ति समीपे ते ते दोषो जाहेर करे, निंदा करे,
मानहीन करे आ हेतुथी विवेकीओ पोताना दोषनो विचार
अने प्राकृत जनस्वभाव न विचारता—श्वान पोताने मारनारने न
करडता ढेफाळाने या पत्थरने करडवा दोडे तेम—प्राकृत बाल-
जीवोनी सामे मध्यस्थभाव मूकी उग्रतालुं रूप हृदयमां धारण
करे. पछी असद्भूत वर्तन, आवेशनी नजर, शरीरना
प्रत्येक अवयवोमां तेजस्वीपाणुं अंगीकार करे तेमज पोतानामां
कोइ विरुद्ध दोष न होय, मिथ्या आचरण थयुं न होय तेमज

अन्यने नुकशान थाय तेवी क्रिया तेओए आचरी न होय छतां पण समजणनी खामीना कारणथी, ईर्ष्याबुद्धिथी, बालस्वभाव-ने लीधे विवेकीओनी सुंदर क्रियाने पण असुंदर क्रिया पानी बधुमां खोटा दोषो आरोपी बालबीबो विवेकीओने निदे, तेओ पर ईर्ष्या करे, हलका पाडवा माटे अनेक प्रपञ्चो करे. अतएव भर्तृहरिए वैराग्यशतकमां कहुँ छे के—‘ शुणे खल्लभयं ’ सज्जनोने स्वगुणना अंगे नित्य खलजनोनो भय रहे छे, तेमज अन्यत्र पण कहुँ छे—“ न विना परवादेन, हृष्टो भवति तुर्जनः । काकः सर्वसरसान्, पीत्वा, विना मेघ्यं न तृप्यति ” ॥ १ ॥ “ दुर्जनो सज्जनोनी निदा विना प्रसन्न यता नथी, कारण के कागडो सर्व रसनुं आस्वादन कर्या पछी विष्णामज्जण विना तृप्त यतो नथी. ” आ ज हेतुओथी विवेकीओ हृदयमां खीन्न यह बाह्यआकारोपां क्रोधनुं रूप धारण करे छे अने वस्तुतत्त्वनो विचार पण भूली जाय छे. क्रोधनो ए स्वभाव ज छे के पोताना उद्यथी विवेकीओने पण भानभूल्या करे छे. परिणामे आ क्रोध वधतां सर्वथा विवेकीओ विवेकभ्रष्ट यवा साथे वस्तुतत्त्वना विचारथी विहीन थाय छे, यावत् यशोविजयजी महाराज आ उद्भूत क्रोधना चिह्नोने आत्मानुं अत्यंत अहित करनार, हुर्गतिना कहुक फलने अर्पनार अने अकायोने जन्म आपनार एवा क्रोधना दुष्प्रिकारो उपरोक्त कारणोथी शरीरना प्रत्येक भागमां मध्यमज्जनोने उपजे छे एम स्पष्ट जाहेर करे छे.

(२४१)

ए रीते अहीं मध्यम जनोने क्रोध उद्भववाना सद्भूतदोषश्रवण १, आरोपितदोष अथवा असद्भूतदोषश्रवण २ अने कार्यतत्त्वनो निर्विचार ३ ए त्रण कारणो दर्शाव्या छे, तेमां बालजीवोने जे जे कारणोयी क्रोध उद्भवे छे ते कारणो बहुधा अहीं दर्शित कार्यतत्त्वनो निर्विचार नामना त्रीजा कारणमां अंतर्गत थइ शके छे.

उपर दर्शित कारणोयी अने प्रथम दर्शित कोइ पण कारणोयी छद्मस्थभावने लीधे अथवा वस्तुबोधनी स्वामीना लीधे क्रोधविकारो जनताने उद्भवे ए साहजिक छे, तथापि क्रोधना उदयने दाववा माटे अने उद्भव यवा न पामे ते सारु तेमज पश्चात्ताप करवा अर्थे शास्त्रकर्ताए अनेक मार्गो कहा छे. आ कारणो अमे आगळ उपर पांच प्रकारनी क्षमाना स्वरूप वखते विस्तारथी कहा छे, ते विवेकीओए सास विचारवा अने तेहुं अतुकरण करवाने दत्तचित्त थबुं ए वधारे उचित छे.

ए रीते विषयतृष्णा १, हष्टिमोह २, धर्मपथ्यमां अरुचि ३ अने क्रोधकंहूति ४ ए चार पापविकारोहुं विस्तृत स्वरूप कही धर्मी आत्मामां आ विकारो न होय एम व्यतिरेक मुख्यी तैनो अभाव जणाव्यो. हवे अहीं उपसंहार करतां ते ज बातनो निर्देश करी फरी धर्मतत्त्व पाम्या पछी धर्मनी उच्च भूमिकाए आरुढ थयेला आत्माओने धर्मतत्त्वना प्रभावथी विशिष्ट

(२४२)

मैत्र्यादि गुणो प्राप्त थाय हे, ए वातनो सामान्य चिरेक्ष
र्थकर्ता कहे हे.

एते पापविकारा

न प्रभवत्यस्य धीमतः सततं ।
धर्मसृतप्रभावाद्

भवन्ति मैत्र्यादयश्च गुणाः ॥ ४-१४ ॥

मूलार्थ—उपर जे पापविकारो जगाव्या ते पापविकारो वर्षतत्त्व पामेल आ बुद्धिवान् आत्माने निरंतर उद्भवत नवी, तेमज धर्मसृष्टी अमृतपानना प्रभावशी मैत्री १, प्रमोद २, करुणा ३ अने मध्यस्य ४ ए चार गुणो अवश्य उत्पन्न थाय हे.

“ स्पष्टीकरण ”

विशिष्ट रसायण खाधा पछी रोगादि विकारो खानारने उत्पन्न थता नवी, एवं पूर्वे कहा प्रमाणे गुरुदिक्कना उपदेशवी अथवा यथाभ्यत्वना परिपाकयी ‘ वर्षतत्त्व ’ जे अविवर्तन चया पछी आगल जे पापविकारोनुं निस्तृत स्वरूप असे नवी गया ते अनादिना अभ्यस्त पापविकारोनुं कहुळ फक्त ज्ञे तेनुं यथास्थित स्वरूप समजवाची, तेपब तेनो ज्ञुभन-स्मरण जाणूत होवाची, अतएव माहूं अश्राप्य दुर्लभ स्तुं वर्षतत्त्व ‘फरीने विनाश न पामो’ ए रीते सभयपणे आ वर्षी आत्माओ

प्रहृति करे छे. आ कारणयीं आ मतिमान् आत्मजे ते पापनिकादो फरीने कदापि उद्भवता नथी, यावत् धर्मसुतपां नना प्रभावयी मैत्री आदि चार भावनाओ अवश्य उपजे छे. अहीं अमृत खाण पछी खानारने जन्म-प्ररग्ण करता पडता नथी तेया ‘ धर्म ’ नो पण अहीं अमृत समान गण्यो हे, कारण के ‘ धर्म ’ आत्मामां उत्तार्या पछी, अनें अत्या धर्म साथे अभेदभाव पास्या पछी जन्म-प्ररग्णादि ग्रंथाने करतो नथी माटे धर्मने शास्त्रकर्ताए अमृतस्पे जगाव्यो. एवं अमृत खानारने अनेक नूतन उत्तम गुणो पण प्राप्त थाय छे तेस धर्म पामनार पण अहीं तेना प्रश्नवयी पोतानी सुंदर मान्यताने-तत्त्वप्रतीतिने स्थिर बनावनार मैत्री आदि चार पवित्र बुद्धि-ओने प्राप्त करे छे, आज हेतुथी शास्त्रकर्ताए अमृत साथे धर्मनी तुल्यता करी यथोचित उपमालंकार बताव्यो. श्रीमान् यशोविजयजी उपाध्यायजी स्वकृत दीकामां मैत्री आदि चार मुण्डोदे धर्मचा अभ्यासगुणस्प लिंगो जणावे छे, अर्थात् विशिष्ट धर्माभ्यासद्वाराए आत्माने एकांत धर्ममय बनावनारा आ चार मुण्डो हे, निदान ए के-आ गुणो उद्भव्या पछी आत्मा कदापि धर्मच्छष्ट बनद्दे नथी. उपरोक्त दोषन्ते अभाव थवाथी धर्मतत्त्व आत्मा पास्यो एवं अनुमान बुद्धिमात्रो करी शके अने पामेला धर्मतत्त्वनी उच्चता तथा बृद्धि करवाने अवश्यमेव मैत्री आदि गुणोनो अभ्यास धर्माए करवो जोइए. आ हेतुथी आ गुणो आभ्यासिक गुणो हे एवो श्रीमान् उपाध्यायजीना

कथननो भाव हे अथवा बाल, मध्यम, बुध ए त्रण धर्मना अधिकारी वर्गो शास्त्रकर्त्ताए कहा हे. बालजीवो धर्म पास्या पछी औदार्यता आदि सद्गुणोने प्राप्त करे हे अने मध्यम जनो औदार्यतादि गुणो पासवा साथे विषयतृष्णा आदि पाप-विकारोने दूर करे हे. अर्थात् मध्यम जनो बालजीवोनी अपेक्षा ए धर्मनी उच्च भूमिकाए पहोंची गया होवाथी गुणनी श्रेष्ठी पण तेऽग्रोने वधे ज हे, ज्यारे बालजीवो धर्म पास्या पछी तेना प्रभावथी औदार्यता आदि गुणो पास्या होय पण विषयतृष्णा आदिनो नाश न ययो होय एटले तेऽग्रो अद्यापि धर्मनी भ्रष्ट भूमिकाए ज स्थिर हे; अने बुद्ध जनो वधे भूमिकाने पसार करी त्रीजी भूमिकाए पहोंची जाय हे माटे तेऽग्रो वन्नेनी अपेक्षाए विशिष्ट धर्मतत्त्व पास्या होवाथी विशिष्ट धर्मतत्त्वना लिंग तरीके मैत्री आदि उच्चतर आभ्यासिक गुणो प्राप्त करे हे. निदान ए के—जेम जेम लाइन वधती जाय तैम तैम उच्चरोत्तर गुणनी स्थिति पण एक पछी एक उच्चतर वनती जाय हे. आपकारे बाल, मध्यम अने बुध ए त्रण धर्म संबंधी धर्मतत्त्वनो विषय-विभाग पाहवाथी प्रथम सामान्य गुणो, पछी विशिष्ट दोषाभाव अने त्यारपछी प्रकृष्ट गुणो ए प्रमाणे ग्रंथकर्त्ताए जे अनुक्रम दर्शाव्यो हे तेनुं तत्त्व यथार्थतया समजाशे.

‘ मैत्री विग्रेरे चार गुणोनुं लक्षण हवे जणावे हे.

पराहितचिन्ता मैत्री

परदुःखविनाशिनी तथा करुणा ।

(२४५)

परसुखतुष्टिर्मुदिता परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ॥ ४—१५ ॥

मूलार्थ—अन्य आत्माओं पोतानुं हित के पासे एम विचारबुं ते मैत्री १, तथा अन्य आत्माओं दुःख रहित के पास याय ए विचारबुं ते कस्ता २, अन्यनुं सुख देखी प्रसक्ष यबुं ते मुदिता ३ अने अन्यना दोषो देखी तेनी उपेक्षा करवी ते उपेक्षा ४.

“ स्पष्टीकरण ”

आ श्लोकनो भाव घणो ज स्पष्ट होवायी तेमज आगल उपर आ चारे भावनानुं विशिष्ट स्वरूप कहेवामां आवशे ए कारणायी अत्रे अमे चारे भावनानुं स्वरूप विचारवामां वधु उत्तर्या नथी.

ए प्रकारे अभ्यासरूप मैत्री आदि गुणोनुं स्वरूप कहा पछी ‘ धर्मतत्त्व ’ ना लक्षणोनो उपसंहार करवानी इच्छायी ग्रंथकर्ता चतुर्थ षोडशक प्रकरणनी समाप्ति सूचन करे छे.

एतत्त्विनप्रणीतं
लिंगं खलु धर्मसिद्धिमज्जन्तोः ।
पुण्यादिसिद्धिसिद्धेः
सिद्धं सञ्चेतुभावेन ॥ ४—१६ ॥

मूलार्थ—धर्मनी यथार्थ सिद्धि जे आत्मा पास्यो होय

(रुक्षहं)

तेन श्रोत्वावनार आ “ओदार्य” आदि पूर्वे कहेत जिनप्रणीत लिंग जाणानुं, तेमज उत्तरोत्तर सुष्णना उपांयो प्राप्त करावी पृष्ठादिना निष्पत्तिसाधनमां श्रवाधित—अवध्यफलजनक प्रतिष्ठित कारण पैण आ “ओदार्यादि” ज लिगो छे.

“ स्पष्टीकरण ”

आ भेकरणनी आदिमां जे कही चूकथा के—धर्मी आत्मा अने व्यवहारथी श्रोत्वावाना खरा साधन तरीके “ओदार्य” आदि अंतःकरणमां उछलता पवित्र आशयो छे, कारण के मनुष्य मात्रनुं खहं—खोडुं स्वरूप समजवा माटे तेना व्यवहारो पर ज आधार राखी शकाय, अने व्यवहार—पवित्रता हृदयनी उच्च—नीच वासना पर अवलंबी रहे छे. अतः ग्रंथकर्ताए श्रद्धा पूर्वे जणाव्या भग्नादिग्नान् आत्मानी परीक्षा माटे “ओदार्य” आदि पांच आशयो धताव्या. आ आशयोनुं विस्तृत स्वरूप समज्या पछी गमे तेबो सामान्य जन पण पोतानी अने परनी, स्वपरना व्यवहार परथी, धर्मीपणानी कसोटी निकाली शके तेमज पोताने खोटी रीते अथवा आज्ञानताथी धर्मी मानतो होय तो ते मान्यताने वदली शके. आ हेतुथी “ओदार्य” आदि पांच श्रीशयोने धर्मनां लिंगो—चिह्नो कहा. श्रद्धा ग्रंथकर्ताए ‘जिनप्रणीतं’ ए पदथी सर्वज्ञोए आ लिंगो—चिह्नो जणाव्या छे, एम कही सर्वज्ञकथनना आधारे आ सर्व स्वरूप कह्युं छे; पण स्वमतिथी उपजावीने काँइ पण कथन कर्तु नथी ए भाव देशवी छे. फरी आ “ओदार्य” आदि भावो धर्मीप-

गाने ओळखावे छे तेम आत्माने घर्मी पण बनावे छे; कारण के—आ “ओदार्य” आदि भावोनी प्राप्ति थया पछी उत्तरो-त्तर क्रमशः पुण्यप्राप्तिना साधनो प्राप्त करावे छे, जेथी उत्तरो-त्तर पुण्यनो प्रवाह चाल्या करे छे तेमज ज्ञानयोगना साधनोनी पण अनेकवा प्राप्ति थाय छे. अतएव आ लिंग-चिह्न स्वबन्ध फलप्राप्ति कराववा माटे अवंध्य-अवाधित सत्कारणभूत छे, अर्थात् ज्ञानयोगनी अने पुण्यवंधना साधनोनी प्राप्ति “ओदार्य” आदि गुण विना सर्वथा असंभाव्य तथा अशक्य ज छे. हेतु ए के—“दया भूतेषु वैराग्यं, विधिदानं यथो-चित्तम् । विशुद्धा शीलघृत्तिश्च, पुण्योपायाः प्रकी-र्तिताः ॥ १ ॥” “सर्व भूतो पर दया, वैराग्यभाव, यथोचित विधिर्वक दान अने अकलंक शीलघृत्ति—ए चारे पुण्यप्राप्तिना उपायो कहा छे.” आ श्लोकोक्त पुण्यना साधनो एकत्र करवा माटे अवश्यमेव पूर्वे जणावेल “ओदार्य” आदि भावोनी अपेक्षा रहे छे. आथी ज पुण्यप्राप्तिनी साधनसिद्धिनुं अने ज्ञानयोग साधनप्राप्तिनुं अवंध्य कारण जिनेश्वरोए उपरोक्त लिंग दशाव्युं. पुनः ‘सिद्धं’ ए पदथी आ दर्शित चिह्न प्रति-ष्ठित षट्ले प्रमाणोपपन्न छे एम कही जेचोने स्व आत्माने घर्मी बनाववो होय तेअोए प्रथम उपर कहेल गुणो प्राप्त करवा हृद संकल्प सामे हृद प्रयत्न करवानी खास आवश्यक्ता छे, ए भाव घनित करी ते गुणो प्रति अंथकर्ता भव्य आत्मानुं खास व्यान खेंचे छे.

आ प्रमाणे ग्रन्थकर्ता ए आ चतुर्थ पोडशक प्रकरणमां धर्मना लिंगरूपे “ ओदार्य ” आदि पांच आशयोंनुं विस्तृत स्वरूप, पापविकारोंनुं कथन अने मैत्र्यादि चार भावोंनुं दर्शन करावी वाल, मध्यम तथा बुधने धर्मप्राप्ति यथा पछी उत्तरोत्तर गुणानी स्थिति जेम वधती चाले तेने दर्शावी आ अंतिम श्लोकथी आ प्रकरणनो उपसंहार कर्यो. श्लोकमां ‘ खलु ’ ए शब्द मात्र वाक्यने सुशोभित करवा माटे ज आप्यो छे, तो पण तेनो निश्चय अर्थ करी “ निश्चयेन धर्मसिद्धिमान् आत्माने ओळखावनारुं आ जिनप्रणीत लिंग-चिह्न छे ” एवो अर्थ करवामां कांइ असंगतता देखाय छे खरी ? छतां टीकाकारोप ते अर्थ केम न स्वीकार्यों तेनुं समाधान आपाराशी केम वने ? ग्रन्थकर्ता प्रकरणनी समाप्तिमां ‘ सिद्धं ’ ए पदथी संपूर्ण प्रकरणने मंगलमय जगावी उत्तर प्रकरणनी साथे आ प्रकरणनो संवंध दर्शावी छे अर्थात् प्रकरणनी समाप्तिमां जे खास वाक्य आवे ते ज वाक्यथी ग्रन्थकर्ता उत्तर प्रकरण खास प्रारंभ करे छे, आथी ग्रन्थकर्ता केवा ग्रौढ कवि हजे ते तेमनी वाक्यरचना परथी विद्वानोप समजवानुं छे.



(५) लोकोत्तरतत्त्वप्राप्तिषोडशकम्



आगला प्रकरणमां धर्मतत्त्वोना जे जे लिंगो कहा तेथी
आत्मा सामान्य प्रकारनो धर्म पास्यो एटलुं ज जाणी शकाय,
एवं सामान्य गुणो पण आत्मा पास्यो छे ए पण ओळखी
शकाय. निदान ए के—उपरना प्रकरणमां धर्मतत्त्व पास्या पछी
जे गुणो प्राप्त याय ते ज गुणसमूह नीतिथी चालनाराओ पामी
शके छे, परंतु एटला मात्रथी आ आत्माओ तात्त्विक धर्म
पास्या एवो निर्णय केम करी शकाय १ कारण के नीति अने
लौकिक धर्म पामेल आत्माओमां पण “ओदार्य” आदि
भिज्ब भिज्ब भावो घणा अंशे होय छे. एटले सामान्य हाइए
“तात्त्विक धर्म” आने “लौकिक धर्म” पामेल आत्माओनो
भेद पाढवो असाध्य छे, अतएव प्रभु हरिभद्रस्तुरिजी आ
पांचमा प्रकरणमां “तात्त्विक धर्म” पामेल आत्माओ “ता-
त्त्विक धर्म” ना प्रभावयी क्या विशिष्ट गुणो प्राप्त करे अने क्या
विशिष्ट गुणोथी आत्मा “तात्त्विक धर्म” पास्यो छे ए जाणी
शकाय एवं क्या विशिष्ट गुणो विना “तात्त्विक धर्म” नो
अभाव छे एम निर्णय करी शकाय इत्यादि भावो समजाववा
माटे विस्तारयी “लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति” हुं स्वरूप दर्शवि छे.

एवं सिद्धे धर्मे

सामान्येनेह लिंगसंयुक्ते ।

नियमेन भवति पुंसां लोकोन्तरधर्मसंप्राप्तिः ॥ ५-१ ॥

मूलार्थ—ए प्रमाणे “ओदार्यादिक” चिह्ने सहित लौकिक धर्मनी सिद्धि थया पछी अथवा सामान्य धर्म (लौकिक धर्म) पाम्या पछी ‘ अव्यात्माओने ’ निष्क्रियथी “लोकोन्तरतन्त्र ” नी प्राप्ति थाय छे.

“ हप्त्वीकरण ”

उपाध्यायजी कहे छे के—आगळना प्रकरणमां लिंग सहित सामान्य प्रकारे धर्मसिद्धि बतावी, आनुं फळ ए ज के विशेष गुणो अने विशिष्ट धर्म प्राप्त थाय. खरुं ए छे के—सामान्य गुणो अने सामान्य धर्म पाम्या पछी विशेष धर्म तथा विशेष गुणोनो लाभ थाय, ए ज वात अर्ही दशावे छे.

चोथा प्रकरणमां लौकिक धर्म अने नीतिनिष्ठेता पाम्यानो जे प्रकार दर्शाव्यो ते प्रमाणे वर्तन करवायी अवश्य आत्मा सामान्य धर्म तथा “ ओदार्य ”, “ दान्तिष्यता ” आदि लिंगो पामी शके छे, परंतु आ धर्मस्त्रिमां लौकिक अने लोकोन्तर धर्मनो विभाग न होवायी तेने शास्त्रकर्ता सामान्य धर्म दर्शावे छे. एनुं कारण एटलुं ज के आ परिणामयी आत्मतत्त्वानुं भान उपजी शकतुं नयी किन्तु लौकिक सुखनी वासनाओने जते दृप्ति करे छे, तो पण आ परिणामद्वारा आस्ते आस्ते आत्मा धर्मना उंडा स्वरूपमां उतरी शके छे. अतएव ग्रंथकर्ता आत्मा धर्मना उंडा स्वरूपमां उतरी शके छे.

‘ सामान्य धर्म ’ नी सिद्धि थया पछी “नियमेन” ए पदथी निश्चयथी “ लोकोत्तरतत्त्व ” प्राप्त थाय छे. एम भार-पूर्वक कहे छे. अर्थात् जे आत्मा अद्यापि ‘ धर्म ’ शुं छे ? एटलुं पण जाणतो नथी ते आत्मा लोकोत्तर धर्मने क्यांथी जाणे ? माटे तेबा आत्माए प्रथम लौकिक धर्म जाणवो जोइए-सिद्ध करवो जोइए एट्से काळांतरे लोकोत्तर धर्म पण पामी शंके. अंहीं “ लोकोत्तर धर्म ” ना अधिकारी कोण होइ शके ए वातने दीकाकारो स्पष्ट करे क्षे के जेओ स्वस्व धर्मग्रन्थोमां कहेल मुमुक्षुजन योग्य अनेक प्रकारना आचारो, क्रियाओ अने अत्रस्थाओनी अपेक्षाए शुद्ध होय अर्थात् तेमां रंगाया न होय तेमज परिणामनी अपेक्षाए स्वच्छपरिणामी होय तथा स्वतंत्र व्यवहारमां अपुनर्वंधकपरिणामवाला होय एवं सम्यक्तवशाळी दृष्टिवंत होय एवो हरकोइ आत्मा ते “ लोकोत्तरतत्त्व ” नी प्राप्ति करवा भाग्यशाळी थाय छे. सामान्य लोको जे तत्त्वना पंरमार्थने जाणी शकता नथी—विचारी शकता नथी अने दृष्टिनी वहार छे एवा तत्त्वने शास्त्रकर्ताओ “ लोकोत्तरतत्त्व ” कहे छे. भावार्थ ए के-परमार्थ धर्मने 'पामवाने उपरोक्त अधिकारी आत्माओ ज योग्य छे.

आ “लोकोत्तरतत्त्व”नी प्राप्ति जे स्वरूपमां थाय ते अने क्या कालमां थाय ते वातने ग्रंथकर्ता दर्शावे छे.

**आद्यं भावारोग्यं
बीजं चैषा परस्य तस्यैव ।**

अधिकारिणो नियोगा-

चरम इयं पुद्गलावर्ते ॥ ५-२ ॥

मूलार्थ—शुद्ध धर्मना लाभ पहलां अनादिथी अप्राप्त आशय-पवित्रताख्य प्रारोग्यतानो जे लाभ थाय अर्थात् सम-कितनो लाभ थाय तेने “लोकोचरतत्त्व” प्राप्ति कही छे. आ “लोकोचरतत्त्व” प्राप्ति परम मोक्षख्य प्रारोग्यतानुं बीज छे, अने आ बीज (समकित) नो लाभ क्षीणप्रायः संसारी एवा भवी आत्माने निश्चयथी अंत्य पुद्गलपरावर्त कालमां ज आय छे.

“ स्पष्टीकरण ”

व्याधिविकारो शान्त थया विना आरोग्यता दुर्लभ होय छे, एवं अनादिथी आत्माने लागेला पापविकारो शान्त न थाय त्यां सुधी आशयनी आरोग्यता क्यांथी थाय? अतपव ग्रंथकर्ता “आदौ भावारोग्यं” ए पद्धती “लोकोचरतत्त्व” नो लाभ देखाउ छे, पूर्वे अनादि कालमां नहीं थयेल माटे आदि एट्ले शर्वआत्मां जे अंतःकरणनी पवित्रता थाय के जेना बलथी तीव्र पापविकारो शान्त थाय आहुं नाम “भाव-आरोग्य” जाणुं, बीजा शब्दमां “समकित” कहुं छे. भावार्थं ए के-लौकिक धर्मपां समकित नथी होहुं अने तेथी ते धर्म तात्त्विक धर्म न कहेवाय. एट्ले देशन्यून ओगणोचेर कोटाकोटी साग-रोप्य प्रमाणे मोहनीयकर्मनी स्थितिनो द्वास थया पक्की ज आ

भाव आरोग्यता—समकितनो लाभ आत्माने थाय छे. अने सम-
कितनो जे लाभ तेने ज शास्त्रकर्ता लोकोचरतत्त्व प्राप्ति कहे छे.
एवं प्रधानतर भाव—आरोग्यतालुं मुख्य बीज आ “लोकोचर तत्त्व”
समकितप्राप्ति सिवाय बीजुं कहइ नर्थी. भावार्थ ए के—आदि
भाव—आरोग्यता, समकितप्राप्ति अने परम आरोग्यता तै सकलक-
र्मक्षयरूप मोक्ष हे अने मोक्षप्राप्ति समकित सिवाय असाध्य
छे. आथी समकितने बीजकारणनी गणनामां गण्युं छे तो
बैम तीव्र पापविकारोनी शांति पछी आदि भाव—आरोग्यता
उपलब्ध थाय तेम संपूर्ण आरोग्यनी प्राप्ति फेलां राग, द्वेष,
मोह अने तेना कारणभूत जन्म—जरा—परणादिरूप भावरोगोनी
सर्वथा शांति—क्षय करवानी परम आवश्यकता छे, अर्थात् आ
भावरोगोनी शांति तेहुं नाम निःश्रेयस—मोक्ष कहुं छे. हवे आ
आदि भाव आरोग्यता—समकितना अधिकार अने तेनी प्राप्तिनो
समय उत्तरार्द्धयी ग्रंथकर्ता दर्शावे छे. जेओनो संसार घणा
माने क्षीण ययो छे अने मात्र अन्तिम पुद्गलपरावर्तकाल
संसारमां रही मोक्ष पामवाना होय तेओ ज आ समकितने
निश्चयथी पामी शके, अने अधिक काल जेओ संसारमां रहे-
वाना होय तेओ कदापि आदि भाव—आरोग्यता पामी शके
नहीं, एटलुं ज नहीं पण उपाध्यायजी आगळ वधीने त्यां सुधी
पण कहे छे के—सर्व दर्शन संबंधी अपुनवंशक्रिया एटले शान्त,
दान्त, जिज्ञासु, मुमुक्षु आदि भावो पाम्या पछी आत्मा अपुन-
वंशपणाने पामे ते कियाओ पण अन्त्य पुद्गलपरावर्तकाल
सिवाय अन्य पुद्गलपरावर्तकालमां पामी शकाय नहीं, यावत्

“ मोक्खासओ वि न तत्थ० ” इथादि श्लोकथी पण जगाववामां आवे छे के—“ मोक्ष पापदानी जिज्ञासा पण अन्य काळमां होय नहीं।” ज्यारे मोक्षनी जिज्ञासा न होय तो पछी मोक्षना बीजभूत समकितप्राप्ति त्यां क्यांथी संभवे ? अतएव ग्रंथकर्ताए तेजो निषेध कर्यैः अन्त्य पुद्गलपरावर्तकाहु शाथी थाय ? आ पश्चनां समाधानः अर्थे ग्रंथकार आ प्राप्त्ये अहीं जगावे छे.

स भवति कालादेव
प्राधान्येन सुकृतादिभावेऽपि ।

ज्वरश्चमनौषधसमयव-

दिति समयविदो विदुर्निषुणम् ॥५-३८

मूलार्थ—जैप औषध ज्वरनो नाश करनार छतां पण समयपरत्वे ज ज्वर शान्त थाय छे एवं कर्म पुरुषकारु नियति विगोरे कारणो छतां पण आ अंत्य पुद्गलपरावर्त प्रधानतया कालपरिपक्ष्यथी ज स्वरूपतः बने छे, एम समयज्ञो निषुणतया जाणे छे.

“ स्पष्टिकरण ”

“ मोक्ष प्रति इच्छा पण अंत्य पुद्गलपरावर्तकात् सिवम्य न थाय ” एम प्रथम कही गया एट्ले आत्माने संसारकां अनादिथी पर्यक्त करतां ज्यारे अंतिम-एक ज पुद्गलपरावर्त काल वाकी रहे त्यारे ज तेने मोक्षनी अभिलक्ष्य जागे अर्वत्

तदुपरांत काल होय तो आ अभिलाषा न थाय, आशी व्यारे आ अभिलाषा थाय। त्यारे चरम पुद्गलावर्तकाल छे एवो निर्णय थाय, अने चरम पुद्गलपरावर्तकाल होय त्यारे आ अभिलाषा बने एवो निर्णय करी शकाय। अतएव अहीं शिध्य प्रक्ष करे छे के—मोक्षनी अभिलाषा चरम पुद्गलावर्तकालमां ज थाय। अने अन्य काले न थाय, तेमब चरम पुद्गलपरावर्तकाल शाश्वी थाय । आज्ञो उत्तर ग्रंथकर्ता आपे छे के—जेम कोइ मायासने ज्वर आवतो होय, तेनी शांति माटे औषध आप्युँ होय तो पण प्रारंभमां तो ते औषध उलडुं ज पडे छे, पण ज्वरनो समय पाक्या पछ्ची ज्वर शांत थाय छे अने औषध लाभदायक बने छे परंतु समय पाक्या पहेलां ते औषध कांइ पण गुण उत्पन्न करतुं नथी, एवं आत्मा पण संसारमां आश-डता आश्वदता दुःख, क्लेश, तापथी कंटाळे अने सुखनो अभिलाषी बने एटले स्वभावतः काले करीने तेनी स्थिति परिपक्व यह जाय। आ समये आत्माने मोक्ष अभिलाषा जागे एटले तीव्र पापोनो नाश यक्षाशी अधिक काल पर्यंत संसारमां आश्वदवानुं बंध यह जाय छे। अतएव आ समयने महर्षिओ अंतिम पुद्गलपरावर्त भवस्थितिकाल एवं उपनाम आपे छे। परमार्थ ए के—आंबाओ वर्षमां अमृक समये ज पाके, खीओ अमृक काले ज पुत्र पेदा करे तेमां हेतु शो ? आनुं समाधान समय—परिपाक सिवाय बीजुं शुं होइ शके ? ते ज प्रमाणे अहीं पण समय—परिपाक सिवाय बीजुं कांइ पण कारण नथी, आसी ज ग्रंथकार

“सुकृतादिभावेऽपि” ए पदयी सुकृत-दुष्कृतकर्म, प्रयत्न, नियति आदि कारणो विद्यमान छतां ज्यां सुधी काल न पाके त्यां सुधी अंतिम पुद्गलपरावर्तपणुं आत्माने अग्राप्य होय छे, एवं मोक्ष अभिलाषा पण दुर्लभतर होय छे. अर्थात् अंतिम पुद्गलपरावर्तपणामां काल ए मुख्य कारण छे अने कर्म, प्रयत्न, नियति आदि गौण कारणो मान्या छे. आ ज हेतुधी उच्चम धर्मरूपी छौषध पण अंतिम पुद्गलपरावर्तकालप्राप्त आत्माने आप्युं होय तो ते गुणकारक थाय अने अन्यने आप्युं होय तो नितान्त दोषकारक ज थाय छे, आ प्रमाणे सिद्धान्तवेत्ताओ भार दइने कहे छे अने निपुणतया जाणे छे. अहीं आर्थात् ‘सुकृतादिभावेऽपि’ ए पदना.वदले ‘कर्मादिभावेऽपि’ एवं पाठान्तर छे, पण आ पाठान्तर मूकवाथी छंदभंग याय छे. वाकी अर्थात् काँइ दोष जणातो नथी तैम ज ‘निपुणं’. ए क्रियाविशेषण पद होवाथी ‘जैम निपुण होय तैम.जाणे छे.’

हवे ‘लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति’ समकितना लाभमां अंतिम पुद्गलपरावर्तनकाल ज ग्रथानतया कारण छे, अने अन्य साधनो प्रधानतया कारणभूत नथी एनुं शुं कारण ? ए वात अहीं स्पष्ट करे छे.

नागमवचनं तदधः
सम्यक्परिणमति नियम षष्ठोऽन्न ।

शमनीयमिवाभिनवे

ज्वरोदये काल इति कृत्वा ॥ ५-४ ॥

मूलार्थ—तुरत प्रगट येला अभिनव ज्वरमां औषध गुणकारी यत्तु नथी कारण के समय पाक्यो नथी। ए प्रमाणे शास्त्रोना पञ्च वचनो पण अंतिम पुद्गलपरावर्त्ती अधिक संसारीने सम्बूपणे कदापि परिणामता नथी—हितकारी बनता नथी ए खास अर्ही नियम हे.

“ स्पष्टीकरण ”

त्रीजा श्लोकना विवरणमां ‘ समकित ’ प्राप्ति अंतिम पुद्गलपरावर्तमां ज याय तेतुं कारण स्पष्टुपणे विस्तारथी जणाव्युं, ए ज वात अर्ही अधिक स्पष्ट करे हे. अभिनव ज्वरोदयमां औषध आप्युं होय छतां ज्वर पाक्या विना ते पोतातुं कार्य करी शक्तुं नथी, किन्तु ज्वरनो काल पाके त्यारे ज सफल याय हे, एवं शास्त्रवचन पण अधिक संसारीने कदापि सदूभावने—मोक्ष-इच्छाने उपजावी शक्तुं नथी. अर्थात् ग्राहक, श्रोता, अभ्यासी आत्मा कांइक सरल परिणामी, पुण्यरूचि, सन्मार्ग इच्छक बने त्यारे ज शास्त्रवचनो हृदयमां उच्चमाव पेदा करी शके, अन्यथा ते ज शास्त्रवचनो विकारभाव उपजावनार बने हे एबो दृढ नियम अर्ही वांछ्यो हे; माटे ज अंतिम पुद्गल-परावर्त्तकालमां समकितनो लाभ याय अने मोक्ष-अभिलाषा प्रगट याय हे, परंतु ते पहेला याय ज नहीं.

“ अंतिम पुद्गलपरावर्त ” पहेलां शास्त्रवचन न परिणमे
एटलुं ज नहीं पण शास्त्रवचन अधिक संसारीने विषयीतपणे ज
परिणमे क्षे.

आगमदीपेऽध्यारोप-

मंडलं तत्त्वतोऽसदेव तथा ।

पश्यन्त्यपवादात्मकम्-

विषय इह मन्दधीनयनाः ॥ ५-५ ॥

मूलार्थ—अर्हीया लोकने विषे मंदबुद्धि चक्रुवाळा
लोको परमार्थथी सिद्धांतरूप दीपकमां नितान्त खोडुं भ्रांति-
रूप मंडल धारीने तिमिर-रोगीनी माफक ज्यां अपवाद पदनो
मार्ग न होय तेवा स्थळपां अपवाद स्थानने ज देखे क्षे अर्थात्
हलकी दृष्टिथी पदाथौने निहाळे क्षे.

“ स्पष्टीकरण ”

तिमिर नामनो नेत्रमां एक प्रकारनो रोग थाय क्षे. आरोग
थया पछी रोगी नित्य दीपकने मायूरचंद्रकाकारं, नी-
ललोहितभासुरम् । प्रपश्यन्ति प्रदीपादे-मंडलं
मन्दचक्षुषः ॥ १ ॥ “ मंद तेजोमय चक्रुवाळा आत्माओ
दीपकना मंडलने मायूरपिञ्च चंद्राकारे नील, लाल अने
भास्वर इत्यादि विविध रंगमय देखे क्षे. ” ए श्लोकना भावा-
र्थथी चंद्राकारे जुवे क्षे अर्थात् दीपकना प्रकाशमां पण रोगना

(२५९)

कारणयी चंद्रभ्रांति उत्पन्न थाय छे. एवं अहीं पश्च दीर्घ संसारीनी परिणति यथास्थित न होवाथी तेपज मिथ्यात्म-वासित विच होवाथी तात्त्विक पदार्थोंनो प्रकाश करवामां समर्थ अने आज्ञान अंथकारनो नाश करनार सिद्धांतरूप दीप-कमां भ्रान्तिनो आरोप करी विपरीतरूपे देखे छे. भावार्थ ए के-सिद्धान्तना बचनोना विपरीत अर्थों करी स्वप्नान्यतामां जोडी दे छे, अने तेथी करी परमार्थाथी सत् पदार्थों होय तेने पण असत्पणे ज घारे छे, शङ्खे छे अने माने छे. आथी छेवटे आ आत्माओ ड्यां अपवाद मार्गनो विषय न होय, केशल उत्सर्ग मार्ग ज मान्य होय तेवा स्थलमां अपवाद मार्गनो अध्य-रोप करी अपकृष्टवादने ज स्वीकारे छे; अर्थात् मंदबुद्धिवाला ते आत्माओ वस्तुतः असद् मान्यताने ज मतिविकारयी अंगीकार करे छे.

मति-मालिन्यताथी 'आगम-दीपक' ने भ्रान्ति-मंडलरूपे मिथ्यात्मी आत्माओ देखे छे एटले विपरीत मान्यता स्वीकारे छे. आथी छेवटे आ आत्माओनो केटलो अघःपात थाय छे ते अविकल्पा स्थृत करे छे.

तत् एवाविधिसेवा-

दानादौ तत्प्रसिद्धफल एव ।
तत्तत्त्वदृशामेषा

पापा कथमन्यथा भवति ॥ ५-६ ॥

मूलार्थ—आगम—दीपकमां भ्रान्तिनो आरोप करवायी
विधिमार्गमां विषयास भाव याय हे, अने जे आगममां दानादि
भावोलुं फल स्पष्ट कर्णु हे एवा दानादि भावोने अविधिभावे
सेवे हे. आ पापिष्ठ एवी अविधिसेवा आगमतत्त्वने यथार्थपणे
देखनाराओने भ्रांतिमंडल विना क्यांथी संभवे ? अर्थात्
सम्यग्दृष्टिश्चोने आ अविधिसेवा कदापि होय ज नहीं.

“ स्पष्टीकरण ”

भ्रान्तहृद यीने आगमवचन अन्यथा परिलाभे हे अने
त्यारबाद सत्य तत्त्वने असत्य तरीके अने विधिने अविधिरूपे,
मार्गने कुमार्ग तरीके आदरे हे, जेथी दरेक कियाओ आ
आत्मा अविधिभावे सेवे हे; कारण के आन्तदृष्टि तेने सर्वत्र
अन्यथा ज भान करावे हे. अतएव अर्ही ग्रंथकर्ताए ‘तत एव’
पदथी भ्रान्तभाव पामवायी ज आ अन्यथा मति आत्मा दान,
शील, तप अने भाव विग्रेरे धर्मो अविधिभावे सेवे हे एम
जणाव्युं. आ धर्मो आदरवालुं फल शास्त्रोमां कर्मनिर्बरा अने
ते द्वाराए मोक्षग्रासि कही हे. सुपात्रदान, अभयदान अने
अनुकंपादान पवित्र आशयपूर्वक होवायी तेलुं फल कर्मनि-
र्जरा अने शुभवंध जणाव्युं हे. ‘तबो बोद्धाणफले’ तपनुं
फल एकान्त कर्मनिर्बरा, शीलतुं फल आत्मस्वरूपनी निर्मलता
अने भावतुं फल हृदयना मलनो नाश अने त्यारपछी आ
धर्मोयी सर्वथा आत्मानी कर्मोयी मुक्ति कही हे. मावार्थ ए
के—देवर्द्धि, राजर्द्धि के संपत्ति अथवा भोगमासि ए आ धर्मोलुं

(२६१)

मुख्य फल नथी तेमन तेना पाटे ते धर्मो आदरवा ते ज विप-
रीत मान्यता जणावी छे. हवे आन्तहृदयी आ धर्मेनुं मुख्य
फल देवर्द्धि, राजर्द्धि, संपत्ति आदि ज माने छे अने तेनी
प्राप्ति पाटे तेमां प्रवर्त्ते छे पण मोक्षफलने मानतो नथी. आथी
ज अहीं ग्रंथकर्चाए कहुं के—आगमां आ धर्मेनुं फल स्पष्टपणे
प्रगटया कहुं छे, छतां तेने ते मानतो नथी—स्वीकारतो
नथी अने आदरतो पण नथी. निदान ए के—आ ज कारणथी
आ अविधिसेवाने पापिष्ठा कही, पण जेओने समकित
प्रगट थयुं छे, आदि भाव-आरोग्यता प्राप्त थइ छे
अने चरण पुद्गलपरार्थत कालमां जेओ दाखल थया छे
तेओना तीव्र पापविकारो सर्वथा शान्त थवाथी तेओने आग-
मवचनमां अखृचि, अब्रह्मा अथवा खोटी मान्यता कदापि उद्भ-
भवती नथी. अर्थात् आन्तिरूपी मंडल विना आ पापिष्ठा
अविधिसेवा उद्यमां आवे नहीं अने आ आत्माओने आन्ति-
समूहेनुं कारण ज पहेलाथी नष्ट थइ जाय छे, किन्तु
आन्ति-समूह उपरोक्त आत्माओ सिवाय अन्यने न ज होय.

‘ दानादि ’ धर्मो अविधिभावे सेवे तेनुं ज स्वरूप फरी
ग्रंथकार स्पष्ट करे छे.

येषामेषा तेषामागम-

वचनं न परिणतं सम्यक् ।

(२६२)

अमृतरसास्वादज्ञः

को नाम विषे प्रवर्त्तेत ॥ ५-७ ॥

मूलार्थ—जे आत्माओए अविधिसेवाने बहुमानतया स्वीकारी हैं तेओने आगमतुं वचन सम्यक्तया परिणामतुं नथी, कारण के अमृतरसना स्वादनो जाणकार मृत्यु देनार विषतुं भक्षण करवा कदापि प्रवृत्ति करे खरो १ न ज करे.

“ स्पष्टीकरण ”

शास्त्रकार इष्टां साथे उपरनी वात अहीं खुली करे हे. जेम एक बार अमृत पीधुं होय अने तेनो रस बरावर अनुभव्यो होय त्यारपछी आ अनुभवी विष मृत्युने आपनार हे, एवुं भान यथाथी तेनुं भक्षण करतो नथी. एवं जिनवचन जेओने सम्यक्तया भासणान् थयुं होय तेओने जिनवचनमां कदापि भ्रांतिज्ञान उत्पन्न थतुं नथी, अने अहीं उपरना आत्माओने भ्रांतिज्ञान थयुं होषाथी जिनवचन यथार्थरूपे परिणामतुं नथी. आथी ज समजाय हे के—आ आत्माओने जिनवचनरूपी अमृतरस—स्वादद्वनुं ज्ञान नथी थयुं अने शृङ्ग देनार विष—भक्षणपां ज लीन थाय हे. अहीं जिनवचन ते अमृतरस जाणधुं अने भ्रान्तिज्ञान ते विषभक्षण जाणधुं. उपाध्यायजी स्वटीकारां ज्ञानफल्यी वंचित एवा अपरिणामी आत्माने आ ‘ अविधिसेवा ’ नामे पापविकार होय हे एम जणावे हे. भावार्थ ए के—अधिक संसारी आत्मा ज ज्ञानफलवंचित अपरिणामी होय.

(२६३)

अत्यार सुधी विधिमुखथी अधिक संसारीने 'आगम-
वचन' नी श्रद्धानो निषेध कर्यो. हवे ग्रंथकार निषेधमुखे
स्पष्टतया आगमवचननी श्रद्धानो अभाव दर्शावे हो—

तस्माच्चरमे नियमा—

दागमवचनमिह पुद्गलावर्ते ।

परिणमति तत्त्वतः

खलु स चाधिकारी भवत्यस्याः ॥५-८॥

मूलार्थ—अतएव आगमवचननी श्रद्धा अहीं आत्माने
चरम पुद्गलपरावर्तकालमां ज परिणमे हो, अने तेथी करीने
परमार्थर्थी आ लोकोचरतत्त्वप्राप्तिनो अधिकारी चरम पुद्गल-
परावर्तकालवर्ती आत्मा ज होय हो; अर्थात् अन्य आत्मा
अधिकारी न थाय.

" स्पष्टीकरण "

उपर जे कही गया तेनो निष्कर्ष ए आव्यो के आगम-
वचनमां श्रीति चरम पुद्गलपरावर्तकालमां ज वने पण अन्य
कालमां न होय, तथा 'लोकोचरतत्त्वप्राप्ति' नी योग्यता-
अधिकारीपणुं चरम पुद्गलपरावर्तकालवासी आत्मा सिवाय
अन्यने न वने. भावार्थ ए के—आगमवचन पर श्रद्धा अने
लोकोचरतत्त्वप्राप्ति अंत्य कालमां उपलब्ध थाय. आथी ज
अधिक संसारीने आ तत्त्वना अधिकारी न गण्या.

(२६४)

आगमवचनमां एवी कह आलौकिकता रही हो के जैन
माटे अधिक संसारीने तेनी श्रद्धानो निषेध जणाव्यो, तथा
'लोकोत्तरतत्त्व' प्राप्तिना पण अनविकारी गण्या ? आ
प्रश्नना समाधान माटे आगमवचननी प्रशस्तता ग्रंथकार
जाहेर करे छे.

आगमवचनपरिणामि-

भवरोगसदौषधं पदनपार्थं ।

तदिह परः सद्बोधः

सदनुष्ठानस्य हेतुरिति ॥ ५-९ ॥

मूलार्थ—आगमवचननी परिणामि एटले यथार्थपणे
आगमोक्त पदार्थनो प्रतिभास. आ प्रतिभास अपाय-
दोष रहित संसाररूप रोगनो नाश करनाऱ्ह औषध
छे, अतएव आ यथार्थ उत्कृष्ट वोष-पदार्थज्ञान सुंदर अनुष्ठानने
जन्म आणवामां कारणभूत कहुं हो अर्पात तेथी सुंदर
अनुष्ठाननी प्राप्ति थाय छे.

“ स्पष्टीकरण ”

“ आ-मर्यादया, गम्यन्ते-पदार्थः प्राप्त्यन्ते
ज्ञायन्ते येन यस्मात् यस्मिन्निति आगमः तस्य
वचनं ” “ जेथी जेनाथी जेना विषे मर्यादापूर्वक पदार्थों
जाणी शकाय तेहुं नाप आणप, अने ते आगमतुं जे वचन तेहुं

आप आगमवचन।” भावार्थ ए के—आत्मातुं एकान्त श्रेय करनार अने हितमार्ग देखाइनार जे शास्त्रो होय तेने ज महर्षिओ आगमशास्त्र कहे छे, पण जे शास्त्रो छतां “ षद् शतानि नियुक्त्यन्ते ” इत्यादि वचनोर्थी पशुहोम, अग्निहोत्र आदि पापारंभनो उपदेश करे तेने आगमशास्त्रो केम कहेवाय? अरे शास्त्रो पण केम कही शकाय? आथी शास्त्रो अने आगम तो ते ज गणाय के जैमां लेश पण पापोपदेश न होय. आ शास्त्रो सर्वज्ञकथित अने सर्वज्ञवाक्यावलंबी एम बे प्रकारे होय छे. जे वचनो भगवंते कहा अने गणधरोए सूत्रोपणे रच्या ते सर्वज्ञकथित आगम कहेवाय छे, अने सर्वज्ञना अमुक अमुक वचननो आधार लइ आचार्योए जे शास्त्रो रच्या होय ते सामान्य शास्त्रो कहेवाय छे; परंतु आ वक्षे शास्त्रो नित्रान्ततया शुद्ध सन्मार्ग सिवाय पापोपदेश कदापि करे नहीं. आवा आगमतुं जे वचन होय ते ज आगमवचन अर्हीं पान्युं छे. आ आगमवचनर्नी परिणामि एट्ले परिणामतुं अर्थात् आगममां जे प्रकारे पदार्थस्वरूप कहुं होय ते ज प्रकारे परिणामतुं एट्ले वर्तनमां-क्रियामां मूकखुं तेतुं ज नाम खरी रीते आगमवचन-परिणामि शास्त्रकार कहे छे. ज्यां सुधी विभाव पदार्थोनो कंठाळो आत्माने न आवे, आत्मज्ञान स्फुरायमान न थाय, संसार पर अप्रेम न जागे अने सत्य सुख प्रति जिज्ञासा न वधे त्यां सुधी आगमवचन ते आत्माओने कोइ पण गुण करवा समर्थ बनतुं नथी. अने आ स्थिति चरम पुद्गलपरावर्तकालमां आव्या सिवाय पापवी महर्षिओए अशक्य जणावी छे. परमार्थ ए के—अज्ञानावरण-

कर्मनो द्रास यथा पछी सत्य उपादेय पदार्थने धारी न शके अने वालजीवोना ज्ञान जेबुं विषयगतिभास नामे जे ज्ञान तेने पण उच्छ्वसन करी ज्ञानावरणीय कर्मोना नाशयी ग्राह-उपादेय पदार्थोने विषय करनार्ह अने नितान्त आत्मस्वरूपमुख्यास भान करवनार्ह जे ज्ञान आत्मामां प्रकाशमान थाय तेने ज उपाध्यायजी ‘ आगमवचनपरिणामि ’ ‘ आगमसद्वोध ’ ‘ यथार्थज्ञान ’ ‘ सम्यग्ज्ञान ’ कहे छे. आथी ज उपाध्यायजी अन्यत्र कहे छे—“ तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः । तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिन-करकिरणाग्रतः स्थातुं ” ॥ १ ॥ “ जेना उदय पछी रागादिकनो समूह प्रकाशमान रहे तो ते ज्ञान ज न कहेवाय, कारण के स्थैर्योदय यथा पछी तेना किरणना प्रकाश सामे शुं अंधकार रही ज्ञके खरो ? ” अतएव आ ज्ञान संसारनी अनेक तरहनी विट्ठलगांगोने दूर करवाने समर्थ एबुं निर्दोष बाधा रहित सुंदर पथ्य औषध समान छे. एवं आ ज्ञान जागृत यथा पछी उपाध्यायजी महाराज जणावे छे के-ज्ञानजन्य उपादेय पदार्थोनो स्वीकार करवामां अविरिति आदि अंतराय कर्मो—प्रतिबंधको आडे आवे तो पण सत्य पदार्थनी श्रद्धामां लेश पण बाधा आवती नथी, तथा आगमवचननी परिणामि यथा पछी प्रछष्ट सद्वज्ञानावरणीय कर्मोनो नाश थाय अने शुद्ध उपादेयोने स्वीकारनार सद्वोध प्राप्त थाय छे अर्थात् ‘ तत्त्वसंबेदन ’ नामे उत्तम ज्ञान जागृत थाय छे. आ ज्ञान यवाची नित्य तत्त्व पदार्थोने ज उपादेयपणे, स्वीकार्यपणे,

हितरूपे अने स्वकल्पाणपणे माने क्षे. आवा ज्ञानजुं शुल्य फल-आचारांग टीकाकार “ज्ञानस्य फलं विरतिः” ज्ञानजुं फल हेयपदार्थनो त्यग अने पुद्गल सुखनो अयोह प्राप्त थवो ए ज कहे क्षे. आथी अर्ही पण आ ज्ञान जागृत थवाथी तेना फल-रूपे सद्गुष्ठान एटले विरतिरूप शुद्ध परिणामी आत्माने प्राप्त थाय क्षे. अतएव आ आगमपरिणामि अति प्रशस्यतर अर्ही जणावी. परमार्थ ए के-पुद्गलोनो ग्रेम अने विषयसुख प्रति उदासीनता आत्माने शुद्ध ज्ञान विना प्रगटवी दुर्लभतर होय क्षे, तो सदृ औषधथी दीर्घ कालना पण रोगो नाश पाये क्षे तेम अनादिना तीव्र राग-द्वेषादि भाव रोगो आ तत्त्वसंवेदन नाये ज्ञान-प्रकाशरूप औषधवलथी एकाएक नाश पाये क्षे, विरति परिणाम जागृत थाय क्षे पाटे आ ‘आगमपरिणामि’ चरम पुद्गलपरावर्तकालमां ज प्राप्त थाय क्षे अने ते एकान्त प्रशस्यतम महर्षिओए जणावी क्षे. आथी ज आगमवचनना अधिकारी उपरोक्त आत्मा सिवाय अन्य आत्माओनो ग्रंथ-कर्ताए निषेध कर्या.

तत्त्वबोध पापवाथी जे विरतिरूप सद्गुष्ठाननी पूर्ण-तया प्राप्ति थाय तेनो खास हेतु ग्रंथकार जणावे क्षे अथवा तत्त्वबोध पापवाथी जे सद्गुष्ठान आत्मा आदरे तेमां विशिष्टता शुं क्षे ? तेनो खुलासो अर्ही दर्शवि क्षे

दशसंज्ञाविष्कंभण—

योगे सत्यविकलं ह्यदो भवति ।

परहितनिरतस्य

सदा गंभीरोदारभावस्य ॥ ५-१० ॥

मूलार्थ—परोपकारमां आसक्त अने नित्य गंभीर्यता तथा औदर्य भाववडे करीने युक्त एवा आत्माने दश प्रकारनी संज्ञाओने यथाशक्तिए रोकवानी शक्ति प्राप्त थवाथी निश्चयेन अखंड परिपूर्ण सदनुष्ठान प्राप्त थाय छे.

“स्पष्टीकरण”

विरतिरूप सदनुष्ठाननी प्राप्ति बाह्य विषयसुख, पुढ़ाल प्रेम परत्वेनो मोह, आसक्ति लोभ अल्प न थाय अथवा नाश न पामे त्यां सुधी थाय नहीं ए वात अये पहेलां पण जणावी गया क्षीए, फरी ग्रंथकार ते ज वात शास्त्रीय शब्दोधी अहीं वधारे स्पष्ट करे छे. आ ‘सदनुष्ठान’ लाभ दश प्रकारनी संज्ञाओनो यथाशक्तिए निरोध करवाथी अगर नाश करवानो जाव्यलयमान उत्साह हृदयमां आववायी थाय छे. परमार्थ ए के—प्रत्येक आत्माने अनादिकालथी प्रत्येक गतिमां दश प्रकारनी संज्ञाओ स्वास हृदयंगत आत्मस्वरूपे विद्यमान होय छे, जेथी आत्मा अनेक तरेहना कर्मो वांधी ते संज्ञाकृत विकारोने पोतानो धर्म समझी अनंत संसारगां पर्यटन करे छे, एवं आत्मस्वरूपने ओळखवा जेटलुं सदज्ञान पण पामी शक्तो नथी तो पछी विरतिरूप सुंदर क्रिया तो क्यांथी पामी शके ? आ ज ईतुथी ग्रंथकर्ता महर्षिपूज्य प्रथम ते दश संज्ञाओनो निरोध

अने निरोध करवानो प्रखर उत्साह पापवाहुं खास जणावे छे,
अने पछी कारणसामग्री हस्तगत थवाथी कार्यसिद्धिमां
विलंब लागतो नथी तै ज न्यायथी अहीं पण सद्क्रियारूप
कार्यसिद्धि दश संज्ञानो व्यवच्छेद अने व्यवच्छेद करवानो
उत्साहरूप कागण-संयोग मलवाथी विनाविलंबे याय एमा
लेश पण शंकाने स्थान नथी.

अहीं ‘आत्माने तत् तत् वस्तुप्राप्तिनो जे उपयोग ते संज्ञा’
एम केटलाक आचार्यों संज्ञानो अर्थ जणावे छे, अथवा अष्टकर्म
पैकी वेदनीय अने मोहनीय कर्मोदयना प्रभावथी एवं ज्ञानाव-
रणीय, दर्शनावरणीय कर्मक्षयोपशमना प्रभावथी आहार विग्रेरे
पदार्थनी इच्छावाळो आत्मा आहार आदि पदार्थों स्वीका-
रवाने जे प्रयत्न-गति आदि करे तेनुं नाम पण संज्ञा महिंयो
कहे छे. आ अर्थवाली ‘संज्ञा’ आत्मानी जुदी जुदी अमि-
लाषाना कारणाथी तथा भिन्न भिन्न प्रकारना प्रयत्नमेदथी
दश प्रकारनी शास्त्रोमां जणावी छे अर्थात् आ दशे प्रकारनी
संज्ञाओ अने तेनुं विस्तृत स्वरूप ‘स्थानांगसूत्र’ ‘प्रज्ञाप-
नासूत्र’ आदिमां नीचे प्रपाणे जणाव्युं छे. “दस
संणाओं १० तं आहारसंणा, जाव परिग्रहसंणा
४, कोहसंणा जाव लोभसंणा ४, लोगसंणा ९
ओहसंणा १०, नेर्याईयाणां दसं संणाओ एवं
चेव, एवं निरंतरं जाव वेमाणियाणं (स्था० सू० ७५२)
“दश संज्ञाओ आ प्रकारे कही छे. आहारसंज्ञा १, भयसंज्ञा

२, मैथुनसंज्ञा ३, परिग्रहसंज्ञा ४, क्रोधसंज्ञा ५, मानसंज्ञा ६, पाया-
संज्ञा ७, लोभसंज्ञा ८, लोकसंज्ञा ९, अने ओघसंज्ञा १० ”
नारकीओने आ दशे संज्ञाओ होय तेमज याकृत् वैषानिकोने
पण ए दशे संज्ञाओ होय, तथा अन्य आत्माओने पण ए दशे
संज्ञाओ होय.” छुधावेदनीय कर्मनो उदय थवाथी कवल,
ओज अने लोप आहारने माटे जे संज्ञाना वलथी आहार
उडगलोने ग्रहण करवानी चेष्टा आत्मा आदरे तेनुं नाम
आहारसंज्ञा १. भावार्थ ए के-ज्यारे ज्यारे जठराग्निना जोरथी
आत्माने छुधा लागे एटले अग्निनुं जोर वधे त्यारे त्यारे तेनी
शांति माटे आहारादि लेवानी चेष्टा आ ज संज्ञावलथी
आत्मा करे छे. भयवेदनीय कर्मोदयथी आत्मा भयथी कम-
कमी उठे छे, द्रष्टि अने मुखना विकारो वदलाइ जवाथी तेना
पर दुःखनी ज छांया तरी आवे छे, एवं तेनी रोपराजीओ पण
एकाएक उभी यह जाय छे. आ वधा विकारो जे संज्ञाना
ग्रभावथी जागृत थाय तेनुं नाम महर्षिओ भयसंज्ञा कहे छे.
अहीं एक खुलासो करवानी आवश्यकता छे, ते ए के-
भय प्रकृतिने कर्मग्रंथमां नोकथाय चारिमोहनीयकर्म
ऐकी नव नोकपायांतर्गत भयमोहनीय तरीके जणावी छे,
अने आ स्थले ‘भयवेदनीयोदय’ कही ‘भय’ने वेदनीय-
कर्मप्रकृति तरीके जणावी. आनुं कारण ए सप्तजाय छे के-
ज्यारे भयना लीधे आत्मा मुग्ध वनी जइ भानभूलो थाय
त्यारे ते भयमोहनीयोदय समजवो, अने ज्यारे आ मोहना
उदयथी अशांति, दुःख के क्लेश अनुभवे छे त्यारे ते भय

(२७१)

वेदनीयपणे समजवो. अथात् मोहोदयथी व्याकुलता बने अने वेदनीयोदयथी अशांति, दुःख विग्रेरे पेदा थाय छे. पट्टे आ प्रमाणे भेद पाठवामां कांइ विघातक जेबुं जगाहुं नथी, तथा पुरुषवेदना उदयथी मैथुनक्रिया (स्त्री-पुरुषनो संयोग) माटे स्त्रीयोना गुहा भागो निरखवा, तेने देखी मुखनी प्रसन्नता, साथलो स्तंभित थवा अने शरीरमां भुजारी हृट्टवी-आ सर्व विकारो जे संज्ञावलथी थाय तेबुं नाम त्रीजी मैथुनसंज्ञा कही छे. परमार्थ ए के-त्रण वेद पैकी कोइ पण वेदना उदयथी पुरुष स्त्रीने, स्त्री पुरुषने अने नयुंसक उभयने चाहे एवं त्यारवाद पोतानी मैथुन जिज्ञासा दुःख करवाने जे कांइ विरुद्ध क्रीडा करे अथवा इच्छा मात्र करे ते सर्वने ग्रंथकर्ताओ मैथुन-संज्ञानो जे उदय माने छे. मैथुनसंज्ञानो आ अर्थ यदि न स्त्री-कार्य थाय तो एकेंद्रियो, चिकलेंद्रियो तथा नारकी अने संमूर्च्छिय जीवोमां आ संज्ञा केम घटावी शकाय ? अतएव उपरोक्त अर्थ स्त्रीकार्य छे. ‘लोभमोहनीय’ ना उदयथी संसारध्वंद्विना कारणगूण अने आसक्तिपूर्वक सजीव निर्जीव पदार्थो एकत्र करवा आत्म संबंधी जे जे व्यापारो ते परियहसंज्ञा. कोघना उदयथी दुष्ट परिणाम सहित आवेशनो जे परिणाम अने मुख, नेत्र, दांत, ओष्ठ ए सर्वेबुं जे चेष्टाथी सूकाइ जबुं ते क्रोधसंज्ञा अथवा आवेशवाल्मी अभिमान ‘हुं’ पणानी जे परिणति ते मानसंज्ञा, तथा ‘लोभ’ ना उदयथी तृष्णा सहित सजीव-निर्जीव पदार्थोंनी इच्छा करवी ते लोभसंज्ञा.

अहीं आसक्तिपूर्वक पदार्थों एकत्र करवा उद्यम करवो ते परि-
ग्रहसंज्ञा अने पदार्थों मेलबवा आसक्ति धारवी ते लोभसंज्ञा-
आ भ्रमाणे परिग्रह अने लोभसंज्ञा उभयमां भेद होवाथी ते
वज्र संज्ञाओ अलग अलग जणावी। एवं मति-शुतङ्गानना
आवरणाक्षयोपशमथी शब्द अने अर्थज्ञान-विनानो सामान्य
मान्य जे बोध प्रगटे अने ते बोधद्वारा आत्माना जे व्यापारो ते
ओघसंज्ञा। जेमके वेलदीयो लोको जे भार्ग पर चाले त्यां न
वधता पोताने पीडा न थाय ते माटे वाढ तरफ ज वधे, विक-
लंबियो आतपमांथी नीकली छांयामां आवे ए ओघसंज्ञान्य
क्रियाओ कही छे, तथा ओघसंज्ञामां जे ज्ञान प्रगटे तेना करता
विशिष्ट जे उपयोग ते लोकसंज्ञा। आ दशे प्रकारनी संज्ञाओ
पंचेदियोमां स्पष्टतर जणाय छे, ज्यारे एकेंद्रियोने कमोदयजन्य
आत्मपरिणामरूपे ज होय पण प्रत्यक्ष न होय।

अहीं जणावेल आ दशे संज्ञाओ पूर्णतया होय त्यां सुधी
आत्मा धर्मनी रुचिने पण पामी न शके, तो पछी 'तत्त्वबोध'
आगमवचनपरिणामि अने सम्यक्तत्वभाव क्यांथी पामी शके ?
माटे ज अहीं ग्रंथकारे प्रथम ' सदनुष्ठान ' पामवा अर्थे आ दशे
संज्ञानो यथाशक्तिए निरोध करवालुं दर्शाव्युं, अर्थात् आ
संज्ञानो यथाशक्तिए निरोध करवाथी तेमज निरोध करवानो
उत्साह धारवाथी आ विरति-त्यागरूप सदनुष्ठान किया प्राप्तिनी
योग्यता आत्मा पामी शके छे; कारण के आत्माने सुंदर
भावथी स्वलित करवामां मुख्य कारणभूत आ अनादिनी

दश संज्ञाओ ज हें. अतएव अर्हीं ग्रंथकारे मूलमां ‘योगे सति’ ए पद्यी ‘निरोध करवानो योग-संवंध छते ज’ एम कहुं. आम छतां एट्ले दश संज्ञाओंनुं जोर छतां कोइ आत्मा त्यागभावरूप सद्गुष्टान आदरे तो पण नंदिषेण महात्मानी माफक कालांतरे जहर मार्गयी नीचो सरी जाय एमां शंका नथी. आथी अर्हीं अविकल सद्गुष्टान प्राप्ति माटे आ संज्ञाओंनो निरोध मुख्य वताव्यो, अर्थात् आर्यामां कहेल ‘अविकलं’ ए पदनो उपरोक्त परमार्थ छे.

आटलुं छतां पण फरी क्यो आत्मा अविकल सद्गुष्टान पामे तेनी पुष्टि माटे अर्धीं आर्या ग्रंथकार जणावे छे. एट्ले जेणो दशो संज्ञानो यथाशक्तिए रोध कर्यो होय, रोध करवानो उत्साह घार्यो होय तो पण आ त्रण गुणो न होय तौ ते आत्मा अविकल सद्गुष्टान पामवानो अधिकारी नथी; किन्तु जेओ परोपकार करवानी अभिलापावंत होय अने पूर्वे कहेल गंभीर्यता, औदार्यता ए वे गुणो जेओमां होय तेओ ज आ पार्गना अधिकारी वने छे. निष्कर्ष ए क्षे के-दशो संज्ञानो यथाशक्तिए रोध कर्या पछी परोपकारी उदारदिल अने गंभीराशय प्राणी ज अविकल सद्गुष्टान पामे.

अरे ! दुलभ पण दश संज्ञानो रोध याय शाथी ? जेथी आत्मा अविकल सद्गुष्टाननो अधिकारी वने ए भावने जणावे छे.

(२७४)

सर्वज्ञवचनमागमवचनं,
 यत्परिणते ततस्तस्मिन् ॥
 नासुलभामिदं सर्वं,
 ह्युभयमलपरिक्षयात्पुस्ताम् ॥ ५—११ ॥

मूलार्थ—सर्वज्ञ भगवान्तुं जे वचन ते ज आगमवचन अहीं मान्युं छे, एट्ले आ आगमवचन परिणम्या पछी अने क्रियामल तथा भावमलनो क्षय थवाथी आत्माओने आ दश संज्ञाओनो यथाशक्तिए निरोध थावो काँइ दुर्लभतर नथी; किन्तु सुलभ ज छे.

“ स्पष्टीकरण ”

‘ सर्वं जानातीति सर्वज्ञः तस्य वचनं ’ “ निरावधपणे जगतना चर-अचर सर्वं पदार्थोने जे जाणे—देखे ते सर्वज्ञ अने तेनुं वचन ते सर्वज्ञवचन. ” सर्वज्ञ पुरुषानुं जे वचन तेने ज अहीं ‘ आगमवचन ’ तरीके स्वीकार्यु छे. जेओने सर्वज्ञ-वचन पर सद्भाव थयो होय अने सर्वज्ञानुं वचन ज सत्यमार्ग-दर्शक छे एवी श्रद्धा हृदयमां एकान्ततः परिणमी होय, तेओने आ जगतमां कोइ पण क्रियाओ प्राप्त थवी दुर्लभतर नथी; कारण के-धन्वंतरी वैद्यनुं जेओने ओढुं पल्थुं होय तेओनो रोग जवामां शुं बिलंब लागे खरो ? तथाप्रकारे अहीं पण जगतना रोगोने निर्मूल करनार अने प्रत्येक रोगना प्रतिकारो

दर्शावनार प्रभु वीतरागदेवना वचनो अखंड निरावधपणे
जेओना हृदयमां निवास करी रहा होय तेओना रोगो अने
तामसो क्यांथी स्थिर रही शके ? अर्थात् न ज रहे. कहुं पण
छे के—“पापामयमौषधं शास्त्रं, शास्त्रं पुण्यनिबंधनम् ।
चक्षुः सर्वत्रगं शास्त्रं, शास्त्रं सर्वार्थसाधनम् ” ॥१ ॥
‘पापस्त्री रोगोने निर्मूल—नाश करनार अमूल्य औषध
तुल्य शास्त्र छे, अने शास्त्र पुन्यवंध करवामां एक मुख्य साधन
छे, एवं शास्त्र सर्व पदार्थोने देखवा माटे अलौकिक अद्वितीय
नेत्र समान छे, तथा सर्व अर्थनी सिद्धि करनारं पण शास्त्र
ज छे.’ तेमज चरमकालवर्ती भवि आत्माओ प्रत्येक क्रियामां
शास्त्रनो ज आधार स्वीकारे छे अर्थात् सर्वज्ञवचनथी उलटी
रीते चालवाने तेओ चंचलचित्त थता नथी. ए ज वात
अन्यत्र पण कही छे—“परलोकविधौ शास्त्रात्, प्रायो
नान्यदपेक्षते । आसन्नभव्यो मतिमान्, अद्वाधन-
समन्वितः ” ॥१ ॥ “ परलोक संवंधी साधनभूत
क्रियामां अद्वारूपी धनवालो अने बुद्धिशाली एवो निकटभवी
आत्मा सर्वज्ञशास्त्र सिवाय अन्य आलंबन वहोलताये कदापि
स्वीकारतो नथी, अपेक्षा राखतो नथी.” उपर कहा प्रमाणे
शास्त्रवचनो जेना हृदयमां रमी रहा होय तेमज ते पर ज
जेओनी अखंड अद्वा होय तेओ अवश्य शास्त्रमां जे वात
स्वीकार्यरूपे अने हेयरूपे कही होय ते ते वातोने मतिमान्
आत्माओ यथाशक्तिए स्वीकारवानो अने त्याग करवानो

प्रयत्न जरुर करें. आथी अर्हा जणाव्युं के-'परिणते' शास्त्र-वचन यथारूपतया परिणम्या पछी एटले 'नासुलभमिदं सर्वं' आ. सर्व अनुष्टुप्नो प्राप्त करवा तथा दशे संज्ञाओनो रोध करवो कांइ दुर्लभ नथी, किन्तु सुलभतर छे. निदान ए के-शास्त्रवचननो निर्दोष राग प्रगटवाथी भवी आत्माना वे प्रकारना मलो स्वतः नाश पामे छे. एक तो जे 'क्रियामल' ना जोरथी आत्मा सुंदर वर्तन आदरवाने असर्पथ अनादि-कालथी रहेतो हतो ते मलनो नाश थाय अने दुष्ट आशयहसी मत्खिनताथी आत्मा शुद्ध वस्तुने वरावर विचारी शकतो न्होतो एवो 'भावमल' अर्थात् आशयनी अपवित्रता तेनो पण नाश थाय छे, आम यवाथी जरुर दश संज्ञानो निरोध अगर निरोध करवानो उत्साह आत्माने जागृत थाय छे, एमां अधिकोक्ति जेबुं कशुंए नथी. एवं जेओने सर्वज्ञवचन पर प्रेम जागृत थयो नथी तेओने ज आ अनुष्टुप्न प्राप्त यबुं दुर्लभतर होय. कहुं छे के—"न धस्य भक्तिरेतस्मिस्तस्य धर्मक्रियाऽपि हि । अन्धप्रेक्ष्यक्रिया तुल्या कर्मदोषादस-त्फला " ॥ १ ॥ " जेने सर्वज्ञशास्त्र उपर प्रेम के भक्तिभाव नथी तेनी धर्मक्रिया पण निश्चयथी अंघनी हाइ संवंधी क्रियानी माफक कर्मदोषना लीधे असत् फलवाली समजवी. " अर्थात् अंघने हाइ होय तो पण तेबुं फल कांइ पण न होवाथी जेम फलने नहीं देनारी होवाथी नकामी छे तेप श्रद्धा विनानी धर्मक्रिया पण फल वगरनी समजवी

(२७७)

अर्थात् मुख्य फल आत्म-निर्मलताने आपती नथी. ” ‘आगम-चचन’ मां जेओने भ्रांतभाव प्रगट यथो होय तेओ ज दानादि सर्व धर्मों अविधिभावयी सेवे. आ वात प्रथम आपणे तपासी गया, परंतु जेओने आगमचचन पर एकान्त अद्भा होय तेओ दानादि धर्मों क्या श्रकारे स्वीकारे ते वातनो खुलासो ग्रंथ-कार करे छे.

विविसेवा दानादै,
सूत्रानुगता तु सा नियोगेन ॥
गुरुपारतंश्ययोगा—
दौचित्याच्चैव सर्वत्र ॥ ५—१२ ॥

मूलार्थ—सर्वांगशुद्धिपूर्वक दानादि कार्योमां प्रवृत्ति करवी तेबुं नाम विधिसेवा. सिद्धान्तमां वतावेल विधिसेवानी प्राप्ति तो निश्चययथी गुरुआङ्गाने आघीन रहेनारने ज थाय छे, अने ते विधिसेवावान् दीन आदिमां सर्वत्र औचित्यतापूर्वक ज प्रवृत्ति करे छे.

“ स्पष्टीकरण ”

जिन भगवानना वचन पर श्रद्धा राखनार जे काँइ दान, शूला आदि कार्यो करे ते जिन भगवंते जे प्रकारे करवाउं कह्युं होय ते प्रथाणे विधिपूर्वक करे, अथवा जेओ विधियी करता होय तेओने आधारे करे, तेमज विधियी करवानी हड इच्छा राख्ये; किंतु स्वतंत्र-स्वशुद्धिना आधारे न करे, एट्ले

आ पञ्चव्य दानादि कार्यो अविधि भावथी करे नहीं. विधि पूले शास्त्रमां जे न्याय दर्शाव्यो होय ते न्यायथी सेवा-आचरण ते विधिसेवा. परमार्थ ए के—न्यायोपार्जित धनथी आवेल पदार्थतुं सत्यात्रमां दान करतुं तेमज जिनपूजा विग्रेरे कार्यो करवा एम आगममां कहुं छे. “ नायागयाणं कर्प-णिष्ठाणं अक्षपाणाहृदव्याणं पराए भत्तीए आयाण-गाहृद्वद्वीए संजयाणं दाणं अतिहिसंविभागो मु-क्षफलो ” “ न्यायथी आवेल अने साधुने उपयोगमां आवे तेवा अनाज पाणी आदि पदार्थो उत्कृष्ट भक्तिथी अने स्व-आत्मानो उद्धार करवानी बुद्धिवडे साधुओने आणवा अथवा अतिधिसंविभाग करवो ते मोक्षफल आपनार शाय. ” आर्थी विद्ध प्रवृत्ति करनार दानादि कार्यो करे तो पर्ण तेनाथी मोक्षफल न प्राप्ते, किन्तु “ दानेन भोगानामोति ” ए वाक्यथी भोग्य पदार्थे जन्मातरमां प्राप्त करे. धनासार्थवाहे अने आमना ठाकुरे मुनियोने शुद्ध दान आयुं तेथी ते ज जन्ममां तेजो समकित पास्या तथा तीर्थकरणोत्र वांध्युं. ए दान परम शुद्ध अने शास्त्रोक्त विधिवालुं कहुं छे. ज्यारे शालिभद्र तथा धनाकुमारना जीवे पूर्वे भवमां मुनियोने जे दान आयुं ते उपयोगी भक्तिपूर्वक आयुं खरूं, परंतु स्वा-त्मोद्धार हाणि वारतुं अने न्यायागत न होवाथी आ दान तुर-तपां भोग्य पदार्थ देनारुं ययुं, पण ते जन्ममां समकित आपनारुं न ययुं. आर्थी ज शास्त्रोमां अल्प पण दानादि कार्यो न्यायो-पार्जित वित्तवडे ज शुद्ध कहा, पण अन्यायी द्रव्यथी नघु पण

(२७९)

दानादि कार्यो अशुद्ध ज छे एम स्पष्ट कहुं छे.

न्यायनुं स्वरूप आ प्रमाणे शास्त्रमां दर्शव्युं छे—“स्वार्मी-
द्रोह, मित्रद्रोह, विश्वासुने छलबो, चोरी आदि
निन्दनीय कार्योंथी जे धन पेदा करतुं तेने छोडी
अन्य व्यापारद्वारा धन पेदा करवाना पोतपोताना
कुलने उचित जे आवारो तेनुं नाम न्याय अने
तेवी प्रवृत्तिथी जे धन प्राप्त थाय ते न्यायोपार्जित
धन समजबुं.” आ रीतथी आवेल धन पवित्र बुद्धिवालुं
अने ग्रही पापकर्म रहित होवाथी तेनो भोग अने सत्यात्रमां
दान सुष्टु फल आपनार वने छे. शास्त्रो कहे छे के—न्यायो-
पार्जित धननो सत्यात्रमां उपयोग करवाथी पुण्यालुवंधी पुण्य
वंधाय छे. उपर कहा प्रमाणे न्यायथी द्रव्य उपार्जी तेनाथी
प्राप्त थयेल द्रव्यनो सत्यात्रमां एट्ले मोक्षसाधक सन्मुनियोने
दान देवामां उपयोग करवो तेम ज जिनपूजन पण न्यायो-
पार्जित धनथी ग्राप्य पुण्य—फलादिवडे करवी. एट्ले जिन-
वचन पर श्रद्धा राखनार उपरोक्त विधिसेवा दानादि कार्योंमां
प्राप्त करे छे, परंतु आ विधिसेवा एट्ले शास्त्रमां जे विधि
अनुष्टुन दर्शविल छे तेनी प्राप्ति तो “ गुरुपारतंत्रययो-
गात् ” गुरुदिनी आज्ञामां वर्तवाथी ज थाय किंतु स्वतंत्र
वर्तवाथी कदापि थाय नहीं; कारण के जिनवचननुं मुख्य
रहस्य केवल महर्षि गुरुओने आधीन होय छे. अने जे गुरुथी
निरपेक्ष थाय तथा स्ववृद्धिने ज प्रत्येक कार्यमां आगल करे ते

मनुष्य जिनवचनना अर्थों तथा भावो स्वकल्पनाथी ज चमा करे, एटले जिनवचननो अमूल्य भाव पार्मी शके नहीं तेपन जिनवचननी पण ते दरकार करे नहीं. अतएव गुरुवचननारावक जिनवचनना परमार्थने पासे अने तेथी दानादि कायोंनी विधिसेवा पण आ ज मनुष्य पासे एम आचार्ये कहुं. फरी विधिसेवापास मनुष्य दान आदि कायों ओचित्यतापूर्वक ज करे अर्थात् अनौचित्य व्यवहारने वाजु पर करी दीन, अनाय, अपांग, मुनियो विग्रेने जे विधिथी, वेवा सत्कारथी अने जेवा आदरभाव तथा भक्तिर्थी दान आपवृं लोइए ते प्रमाणे वर्तन करे छे. निदान ए के-सर्वत्र विवेकपूर्वक दानादि कायों करे छे. ए प्रमाणे आगमवचनमां अभ्रान्तपति गुरुआजानुसारी विधिपूर्वक दानादि कायों आराधे एम आचार्ये आ स्लोकमां स्पष्ट प्रतिपादन कर्युं. एटले विधिना अर्थाए अहीं आगमवोधनी अथवा गुरुआज्ञा आराधनानी निवित आवश्यकता छे ए भाव जणाव्यो.

दानादि कायोंमां विधिसेवानी आवश्यकता जणावी, इवे तेमां महादान तथा दान ए वेमां क्यो तफावत छे ते वात अहीं दक्षावं छे.

न्यायात्म स्वल्पमपि हि;
भूत्यानुपरोधतो महादानम् ॥

दीनतपस्त्वयादौ गुर्व— नुज्ञया दानमन्यन्तु ॥ ५—१३ ॥

मूलार्थ—न्यायोपार्जित धननो सेवकर्गने अनुपरोध-पणे दीन, तपस्ची, अतिथि आदि वर्गमां थोडो पण मातापिता आदिनी आज्ञाथी उपयोग करवो तेहुं नाम ते महादान, अने आ रीतथी उलटी रीते जे उपयोग करवो ते दान कहुं छे.

“ उपष्ट्रीकरण ”

शास्त्रमां मार्गानुसारीना गुण वर्णन करतां आचार्य प्रथम गुण ‘न्यायसंपत्तविभवः’ दशावे छे, एट्ले धर्मसन्मुख स्थित आत्मा जस्त न्यायथी ज आजीविका, कुदुंब रक्षण आदि कायों करे तो ज ते मार्गानुसारी कहेवाय, अन्यथा ते मार्ग-वाश कहेवाय, आथी धर्मप्राप्त अने प्रथम जणावी गयेछ धर्मना लक्षणो जेमां होय ते तेपन दश संज्ञानो निरोधक आगमवचन पर अद्वालु जन तो अवश्य न्यायथी ज वृत्ति चलावे एमां आश्र्य जेबुं नथी. महादान अने दाननो भेद आचार्य अहं दशावे छे तेमां ‘न्यायवर्तन’ ए मुख्य अने महादान तथा दाननो विभाजक गुण मान्यो छे. अर्थात् न्यायसंपत्ता सिवाय महादानत्व नामक परम गुण कोइ पण आत्मा पामी शके नहीं. अतएव ग्रंथकर्ता आदिमां ज ‘न्यायात्’ ए पद-मूके छे, एट्ले वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण अने शूद्र ए चार मुख्य आर्य जातिश्चो शास्त्रोमां कही छे, किंतु कालक्रमे

जात्यंतर पेटाजातिओ आदि अनेक भेदो—उपभेदो थइ गया; पण आ सर्व जातिओना पोतपोताना कूलानुसूप जे उचित व्यवहारो शास्त्रोमां दशाविल छे ते प्रमाणे व्यवहार करबो, आजीविका चलावधी, व्यापार करबो, कुदुंवरक्षण कर्खुं ते ते लोको माटे न्याय गणाय अने ए प्रमाणे जे धन प्राप्त थाय ते न्यायसंपन्न धन कही शकाय. जेमके—वैश्योए व्यापार, व्याज, धीरघार आदि, क्षत्रियोए प्रजासंरक्षण, अनिति प्रचारनो नाश, शब्दना भयथी बचाव, दुष्टोलुं दमन आदि, ब्राह्मणोए पठन—पाठन, उपदेश, धर्महृदि, धर्मसंरक्षण, देवपूजा, मंत्रस्मरण, ध्यान आदि, अने शूद्रोए सेवा, कृषि आदि कार्योद्धारा धन प्राप्त करी देनाथी आजीविका अने कुदुंवसंरक्षण कर्खुं; पण उपरोक्त चारे वर्णो तथा पेटाजातिओ ए प्रमाणे वर्तन करता छलप्रपञ्च, चोरी, विश्वासघात आदि निन्दक कार्यो न सेवे अने पोताना जातीय नियम प्रमाणे वर्तन करे तो ज ते न्यायी वर्तन कही शकाय.

आम छतां पण आचार्य कहे छे के न्यायथी धन उपार्जी ते धननो अमुक भाग व्यवहारसंरक्षणमां, अमुक भाग व्यापारमां, अमुक भाग कुदुंवपालनमां, अमुक भाग नोकर—चाकर—सेवकोने संतुष्ट राखवामां अने अमुक भाग धर्मगार्गमां खर्च करे तेम ज अमुक भाग नियानस्थ करे, आ प्रमाणे वर्तनार भविष्यमां स्वर्जीदंगीने भयमां नाखतो नयी, किंतु आय करता व्यय ब्यविक करे, वैश्रमण जेवी स्थिति राखे, कुदुंव

अने सेवकोने संभाळे नहीं, धर्मनी उपेक्षा करे तेओ ज परिणामे जोखममां आवी पडे छे ए ज बात आचार्य धर्मबिदुमां स्पष्ट करीने समजावे छे. “ पादमायाश्चिर्धि कुर्यात् , व्यापारादि द्वाराए प्राप्त थयेल पैसानो चोथो भाग निविपणे स्थापन कर्वो. ”

एट्ले अहीं आचार्यश्री ध्वनित करे छे के-न्यायथी धन आवेल होय छतां जो नोकर-चाकरोने नाराज करी तेनो धर्मकार्यमां व्यय थाय तो ते व्यय सुष्टु धर्मफलने आपी शके नहीं किंतु ए तो उपांगहीन धर्म कहेवाय; माटे धर्ममां व्यय करनारे, दानादि करनारे, ‘भृत्यानुपरोधतो’ सेवक-नोकरोने संताप, खेद, असंतोष न थाय तेम करी पछ्ही ज, तेमज मातापिताने पण संतोषी, तेओनी आज्ञामां वर्ती धर्म साधन करे. आथी जेओ जीदगीभर दानादि उत्तम कार्यो करे अने मातापितानी उपेक्षा करे, अपमानित करे, संतापे, तेओनी सारसंभाळ ले नहीं, आज्ञा माने नहीं तेओ जैनशास्त्र दृष्टिए सर्वांगपूर्ण धर्माराधक न गणाय; पण उपांगहीन धर्म आराधक ज गणाय छे. एथी तेओने योग्य फल पापवाने अधिकारी नथी मान्या, कारण के धर्मनो प्राथमिक सदाचार शास्त्रो “ मातापितृसंपूजकः ” ए वाक्यथी ‘ मातापितानी पूजा करनार ’ एम वर्णवे छे. खहुँ छे के-जेओ परमोपकारी मातापितानो अनादर करे तेओ धर्म अने धर्मोपदेशकोनो अनादर केम न करे ? कारण के जेओ लाखोनी चोरी करे तेओने

सेकडोनी चोरी करता काँइ भय लागे नहीं। आटलुं जणाव्या पछी हवे पूर्णांग सहित थोडो पण ते न्यायप्राप्त धननो उपयोग क्यां करवो ? ते आचार्य कहे छे. “दीनतपस्त्यादौ” उपर कथित रीतशी ते न्यायप्राप्त धन जेओ निराधार होय, अशक्त अने विशिष्ट पापकर्मे सेवनमां असर्प्य होय तेवाओने अने त्यागी, मुषुक्षु, महाब्रतधारी तपस्त्रीओने आहार, वस्त्र, पात्र, वसति, उस्तक आदि आपवामां अने अन्य जिनपूजा, सहधर्मसेवा आदि अनेक पवित्र कार्यांमां उपयोग करवो—खर्च करवो. आ रीतशी विवेकदृष्टिए करेलो थोडो पण खर्च महान् फलने—पुण्यानुबंधी पुण्यने—श्रीष्टनार थाय छे. अतएव आचार्य भगवंत आ व्ययने—खर्चने महादान एवी संज्ञा आपे छे अर्थात् आ खर्चनी आगल अन्य लाखो तथा क्रोडो खर्ची दान कर्यु होय, जिनमंदिरो, जिनप्रतिमाओ वनावी होय, म्होटी दानशालाओ उभी करी होय, असंख्य अतिथिने सत्कार्या होय, म्होटा संघो अने लाखो सहधर्मीयोनी सेवा करी होय तथापि ते दान ज कहेवाय एटले महादानमां जे लाभ थाय ते आ कार्ये करवा छतां लाभ थाय नहीं. आ ज हेतुशी ग्रंथकार महर्षिए ‘दानमन्यत्तु’ उपरोक्त विधान-वियुक्त दानो ते दान कहेवाय एम कहुं. परमार्थ ए के-धर्मां खर्च करनारे आशय, पदार्थ, पात्र अने कालनी पवित्रता तरफ एकान्त लक्ष्य राखवूं जोइए तो ज खर्च इष्टसाधक वने.

ए रीते उपर 'महादान तथा दान'नुं स्वरूप कहुं, हवे
जिनपूजानुं स्वरूप दर्शने हो.

देवगुणपरिज्ञानात्—

द्विभावानुगतसुत्तमं विधिना ॥

स्यादादरादियुक्तं,

यत्तदेवार्चनं चेष्टम् ॥ ५—१४ ॥

मूलार्थ—विधिथी आदर ग्रीति श्रद्धापूर्वक वीतराग
देवना जे जे वीतरागत्व गुणो होय तेनाज्ञान साथे अने तेमां ज
लीनता तथा उत्तम भाव सहित जे अष्टद्वय आदिथी भगवंतनी
पूजा तेनुं नाम वास्तविक अने इष्ट पूजा समजवी.

“ स्पष्टीकरण ”

परमनिवृत्तिरूप जे फलोदेशथी आपणे जेने पूजीए ते
देवनुं देवत्व शुं हो । पूजाने ते अविरोधपणे योग्य हो के नहीं ।
तेनो सुष्ठु विचार करवो जोइये; कारण के तो ज ते समिचीन
पूजा कहेवाय अने पूजानुं इष्टफल प्राप्त थाय; अन्यथा ते पूजा
मात्र ज कहेवाय. जैन शास्त्रो संबोधे हो के तमे इश्वरनी लीला
या चमत्कारो देखी अथवा गाढ़रीया प्रवाहथी तणाइने तेमज
कोइनी प्रेरणा मात्रथी अगर अपारा पर विश्वास राखी देवनी
पूजा या मान्यतामां पतंगनी माफक अग्निमां झंपलावशो नहीं,
किंतु प्रथम तेनी तमे कांचननी जैम परीज्ञा करी इश्वरनुं नि-
दोष-निष्कलंक स्वरूप विचारी-तपासी पछी ज तेने मानवाने,

पूजवाने ललचाशो. यदि आटली तमारामां सन्मति न होय तो पछी त्यागी अस्वार्थी शुद्धोपदेशक तच्चदर्शी महर्षियो जे कहे ते च्यानामां राखी ते प्रमाणे वर्तन करशो तो ज तमे तमारं हित साधी शकशो. हरिभद्रसूरिजो तो कहे छे के—“ पच्च-पातो न मे बीते, न द्वेष कापिलादिषु । युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ” ॥ १ ॥ “ महावीर परत्वे मने राग नथी ने कपिलादिको प्रति मने द्वेषभाव नथी; परंतु जेओनुं वचन युक्ति अने प्रमाणादिथी वाधित नथी थतुं तेओनुं ज वचन स्त्रीकारबुं योग्य छे. ” शास्त्रोमां देवना ईश्वर, परमात्मा, परमेश्वर, अचित्यशक्ति, अखिलगुणाधीश, सर्व-दोषातीत, सर्वज्ञ, वीतराग, जिनेश्वर, तीर्थ्यकर, सच्चिदानन्द-मय विगेरे सहस्रशः नामो प्रसिद्ध छे, एटले आ सर्व नामोनो समन्वय देवमां अवश्य थबो जोइए, अन्यथा ते खाली नामो गोवालना छोकरानुं इन्द्र नामनी जेम हास्थपत्र गणाय. एक बाजु ईश्वरपणानी प्रख्याती अने बीजी बाजु तेवा गुणो न होय तो ते हास्यजनक केम न गणाय ? अने आबुं ईश्वरपणुं प्राप्त करी कोने पूजवानुं मन न ललचाय ? अतएव प्रथम तो ईश्वर देवाधिदेवमां जर्गतना सर्व अपलक्षणो रहित राग-द्वेष अने अज्ञान चेष्टा चिनाना शुद्ध सत्य निरावाघ तच्चवक्ता तथा सर्वज्ञपणुं आ लक्षणो अवश्यमेव सुघटित थवा जोइये. ईश्वरना आ लक्षणोनी परीक्षा तेओनी जीवनक्रीडा, व्यवहार अने उपदेश परथी मुलक्षित थाय छे. जेओए पोताना जीवन व्यवहार दरमियान हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार, दृष्ट्या आदि दुरुगुणोने

कतर्व्य मानी सेव्या नथी, लीला मानी लोकोने तेम करवानो
उपदेश आप्यो नथी, भोग्य पदार्थोनी तृष्णामां आसक्तिथी
लीन वन्या नथी, भौतिक मायामां लिपटाइ स्वर्जीदगीने व्य-
तीत करवानी तृष्णा राखी लोकोने आ तो ईश्वरनी अलिस
लीला क्षे आवा प्रपञ्चयो ठगवानो प्रयत्न कर्यो नथी; किंतु
कर्मजन्य उपाधियो वेठी, सुअवसरे संसारना प्रपञ्चने छँडी,
राज्य, धन, हुँदंब, स्त्री—मुत्रादि परिवारने वस्त्रे लागेल कचरानी
जेम अलग करी, घोरतप तप आदरी, अङ्ग लोकोए उपजावेल
असंख्य परीसहो, कष्टो, उपद्रवो, ताढन, तर्जना, अपमान, उप-
सर्गोने एकांत ज्ञानाभावयी, राग—देव विना प्रसन्न अंतःकरणयी
अडगपणे सहन करी, अनादिना आठे कर्मोने आत्मायी अलग
करी, शुद्ध निर्दोष कांचनवत् निष्कलंक आत्मस्वरूपने, अनन्त-
ज्ञानने जेओए प्राप्त कर्यु, अखिल गुणो प्राप्त कर्या, केवल आ-
त्मिक शुद्ध सच्चिदानन्दनी लीलामां मध्य वनी भव्य आत्मा-
ओनो उद्धार करवा माटे शुद्ध सन्मार्गनो, शुद्ध निरावाध
निर्दोष तच्चनो जेओए उपदेश कर्यो तेओ ज परमार्थयी ईश्वर,
देवाधिदेव, परमात्मा अने वीतराग नाम धारण करवाने योग्य
कहेवाय. आ ज देव पतितपावन, जगदुद्धारक, अशरणशरण,
वत्सल, हितदायी, संसारभयरक्षक, कृतकृत्य, उत्तमोत्तम पर-
मात्मा कहेवाग अने ते ज परमात्मा विना स्वार्थे जगद्गने सन्मार्ग
दर्शावी शके. उपासनाती वाचकजीए कह्यु क्षे के—“यस्तु कृता-
र्थोऽप्युत्तममवाप्य धर्म परेभ्य उपदिशति । नित्यं
स उत्तमेभ्योऽप्युत्तम इति पूज्यतम एव ” ॥ १ ॥

“जेओ कुतक्त्य वनी उत्तम धर्म प्राप्त करी वीजाओं उल्लाण करवा प्राप्त सत्त्वधर्मनो उपदेश करे छे जेओ ज खरेवर सर्वदा उत्तमो करता पण उत्तम अने नितान्त पूज्यतप होय.”

अतएव आ देवनी पूजा करवी ते ज पूजा कहेवाय, वास्तविक रीते मानवी या देवोनी पूजाने योग्य आ वीतरागदेव सिवाय अन्य कोइ न होइ शके. जेने आपणे मोक्षदात्रुत्व बुद्धिथी पूजीए तेमां यदि ते गुण न होय, पोते पण ते स्थानना अनधिकारी होय तो तेओने पूजवानुं फल शुं? आथी ज उभास्वाती महाराजे कह्यु छे के—“तस्मादर्हति पूजामर्हन्नेवोत्तमोत्तमो लोके। देवर्षिनरेन्द्रेभ्यो पूज्येभ्योऽप्यन्यसन्वानाम्” ॥ १ ॥ जगतपां उत्तमोत्तम अर्हन् देव ज होवाथी ते ज पूजा करवाने योग्य छे, कारण के—देवो, महर्षिओ, नरेन्द्रोने तेओ पूज्य होवाथी अन्य प्राकृतजनोए तो अवश्य तेओनी पूजा करवी जोइए.” पूजकोए पूजन करवा पहेला परमेश्वरनुं उपरोक्त स्वरूप खास मनन करी तेने ध्यानपां राखवुं जोइये, जेथी पूजन करतां मननी प्रसन्नता याय, पूजानो उद्देश वरावर साचवी शकाय अने पूजन शा माटे करुं छुं ए तत्त्वनुं यथार्थ भान याय. वस्तुतः जेओ उपकारी होय, जेओ पासेथी भविष्यपां कांइ तत्त्व मेल्ववानी इच्छा होय तेओनो सुयोग्य उचित सत्कार करवो ए व्यवहारिक नियम पण छे. ड्यारे परमात्मा तो अतुलोपकारी, अनन्य असाधारण उत्तमदाता सांसारिक त्रिविधताप दूर करनार होवाथी

अने तेओ पासेथी ते पदार्थो मासव्य होवाथी तेओनी पूजा तेओने योग्य अवश्य करवी जोइए ए पूजकोनो धर्म छे. योग्यलुं योग्य सन्मान करबुं ते आपणी योग्यता वधवालुं दीज छे, कारण के योग्यने जेटलुं आपीये तेनाथी सदस्यगणुं पालुं आपणने मझे छे अर्थात् जे पदार्थनी आपणने भविष्यमां चाहना होय तेना माटे ते पदार्थवान्नी उचित सेवा—सन्मान-पूजा विग्रे करवां जोइए, आथी ज आचार्य हरिभद्रसुरीश्वरजी पूजानो उपदेश करता पूजकोने कहे छे के— ‘देवगुणपरिज्ञानात्’ एट्ले देवना जे जे अनुकरणीय अने मासव्य गुणो छे तेलुं ज्ञान करबुं, तेनो अभ्यास करवो अने पूजा करती बखते तेनी ज भावना करवी, एट्लुं ज नहीं पण ‘तदुभावालुगतं’ देवना गुणस्मरण—ध्यानमां आत्माने लीन करी शास्त्रोक्त विधियी उच्चम प्रकारे वीतरागदेवनी पूजा करवी, तेमज देव परत्वे अने पूजामां एकान्त आदर आचरण प्रीति सहित पूजा करवी एट्ले आ पूजा परमार्थ पूजा कहेवाय. निदान ए के— ईश्वरपूजन करती बखते ध्याता, ध्येय अने ध्यान आ त्रिपुटीनी एवी तो ऐक्यता थवी जोइए के जेथी शास्त्रोक्त अमृतक्रियालुं लक्षण आ पूजामां समन्वित थाय अने ‘भ्रमरी—कीटक’ न्याय लागु थइ शके. जरे ! उपास्वाती वाचकजी कहे छे ते प्रमाणे पूजा करवाथी उचरोचर अवश्य लाभ थाय. “ अभ्यर्चनादर्हतां मनःप्रसादस्ततः समाधिश्च । तस्मादपि

निःश्रेयसमतो हि तत्पूजनं न्यायं ” ॥१॥ “ वीतराग देवनी पूजा करवायी प्रथम मननी प्रसन्नता वधे, त्यारपछी तेथी समाधिशान्ति एटले कषायो दूर थाय अनेते पछी एकान्त निःश्रेयस-मोक्ष प्राप्त थाय माटे वीतरागदेवनी पूजा करवी, ए न्याययुक्त गणाय. ” परंतु आ पूजालुं प्रकरण प्रथम कहेल महादान अने दानना प्रकरण पक्षी जणाव्युं होवायी महादाननी योग्यता प्राप्त करवा आचार्ये जे जणाव्युं ते योग्यता पूजकोपां प्रथम अवश्य आववी जोइए. ए योग्यता आव्या बाद आ वास्तविक पूजानो अधिकार आत्मा पार्मी शके; अन्यथा ते पूजा ज गणाय. आर्थी ज ग्रंथकारे मूलमां अर्ही ‘ उत्तमं विधिना ’ आ पदो पर वधारे वजन आप्युं छे. परमार्थ ए के-न्यायप्राप्त सेवकोने अविरोधी अने बडीलनी आहा मुद्रित होय तो ज उत्तम अने विधिपूर्वक वीतरागपूजा कहेवाय.

उपर आपणे जे वात विचारी गया तेनी ज प्रकारांतरथी फरी पुष्टि करे छे, अथवा उपाध्यायजी कहे छे के-ए ज वात अन्यत्र कही छे तेनो अर्तिर्दश-भक्तामण अर्ही प्रस्तुत ग्रंथकर्ता कहे छे.

एवं गुरुसेवादि च,
काले सद्योगविघ्नवर्जनया ॥

(२९१)

इत्यादि छृत्यकरणं, लोकोचरतत्त्वसंप्राप्तिः ॥ ५-१५ ॥

मूलार्थ—विधिथी जेम पूजानुं कहुं तेम विधिथी धर्माचार्य आदिनी सेवा, भक्ति, पूजा विगेरे करवी, अने योग्य अवसरे स्वाध्याय, ध्यान, पठन आदि धर्मज्ञापारो विश्वो—अन्तरायोने दूर करी करवा. इत्यादि उपर कथित कार्योनुं विधान करवाथी लोकोचरतत्त्वनी प्राप्ति थाय अर्थात् आनुं ज नाम लोकोचरतत्त्वनो लाभ कहो छे.

“ स्पष्टीकरण ”

देवनी पूजानुं स्वरूप उपर विस्तारथी विचारी गया. हवे गुरुसेवा आदि कार्यो केम करवा ते विचार आचार्यश्री अहीं जणावे छे. जे बात अन्यत्र कही जे ते ज अहीं पुष्टि माटे दर्शवे छे अथवा देवनुं यथार्थ स्वरूप, पूजानुं यथार्थ रूप धर्माचार्यों पासेथी ज उपलब्ध थाय छे; माटे गुरुभक्तिनुं स्वरूप अहीं जणावे छे. शास्त्रोक्त विधिथी पूजा करवानुं शास्त्रोमां जेम कहुं छे तेम गुरुसेवा, भक्ति, पूजा पण विधिपूर्वक ज करवी एट्ले धर्माचार्यो—त्यागी, शुद्ध सन्मार्गदर्शक गुरुओ—नी आहार, पात्र, औषध, मकान आदिथी शुश्रूषा विधिथी करवी. भावार्थ ए के—गुरु सन्मुख जबुं, पांच अभिगमो साचववा, गुरुने आहारादि माटे निमंत्रणा करवी, आहार लेवा आवे ते समये सामे जबुं, पछी वंदना करी अब्द्युडियो खामी विनय, सरलता,

उदारता, भक्तिनो अतिरेक, प्रमोदना आशुसह अहोभाग्य मानी
न्यायप्राप्त कल्पनीय आहारादि गुरुपांत्रमां मृकवा, अल्पमां
अल्प सात पगलां गुरुने वेळावंवा जबुं, वारंवार सुखशाता
पूछवी, विनवथी धर्मचर्चा करवी; तथा पठन, पाठन, स्वाध्याय,
ध्यान, कायोत्सर्ग आदि क्रियाओ करवी तैमज प्रतिक्रमण
प्रतिलेखना पण उचितकाले करवी. शालमां जे जे क्रियाओ
जे जे काले करवानो उपदेश कर्यो छे ते ते क्रियाओ करवी.

आ क्रियाओ पण अनेक प्रकारनी वचमां आकृती स्त-
लनाथोने दूर करी, विज्ञो—अंतरायोथी अडग रही करवी.
निदान ए के—धर्मक्रियानुं आचरण करतां अवश्य परीपहो,
कष्टो, अपमानो, प्रमादो, विकथाओ विगेरे अनेक अंतरायो
धर्मक्रियाथी चलित करवा अकस्मात् आडे आवे पण ते सर्वने
दूर करी निर्भय बनी पुरुषार्थपूर्वक उपरोक्त धर्मक्रियानुं आ-
चरन, पालन, अभ्यास विगेरे करवा. आ कायोंनी ए रीते
ग्रामि यवाथी घटले ए कायों आचरवाथी ग्रंथकर्ता कहे छे के
आनुं नाम लोकोचरतत्त्वप्राप्ति यह कहेवाय अर्थात् ए प्रमाणे
वर्तन करबुं तेहुं ज नाम लोकोचरतत्त्व छे. ए सिवाय अन्यने
लोकोचरतत्त्वनी संज्ञा नथी. यशोविजयजी महाराज कहे छे
के—विविसह दान पूजा अने सेवानुं आचरण करवायी ते ज
महादान, इष्टपूजा अने सत्सेवा ए नामथी आ क्रियाओ
अंकित याय छे.

आ सर्व केम प्राप्त याय ? तेनो अहीं खुलासो करे छे.

(२५३)

इतरेतरसापेक्षा त्वेषा,
पुनरास्तवचनपरिणत्या ॥
भवति यथोदितनीत्या,
पुंसां पुण्यानुभावेन ॥ ५—१६ ॥

मूलार्थ—उपर कहेल सर्व क्रियाओ परस्पर सापेक्ष होवाथी, उपरोक्त स्वरूपवाली अने परस्पर अपेक्षा रखनारी आ सर्व क्रियाओनी प्राप्ति पुरुषोने पुण्यानुभावथी अने सिद्धान्तवचन परिणामवाथी थाय छे.

“ स्पष्टीकरण ”

शास्त्रोक्त विधिसह एक सुष्ठु क्रिया प्राप्त थाय तो तमाम क्रियाओ सुष्ठु अने विधि युक्त प्राप्त थाय, तेमज एक क्रिया विधि रहित अने अशोभन होय तो सर्व क्रियाओ अविधिवाली अने अशोभन होय, आ वात अहीं दर्शावे छे; कारण के—दान, पूजा, सेवा आदि कार्योंनुं शास्त्रोक्त विधान परस्पर एवं तो गुण्याएल छे के जे महानुभावने सिद्धान्त वचनो बराबर परिणाम्या—सिद्धान्तवचनमां अपूर्व अद्भा प्राप्त यह ते महानुभावने शास्त्र आधारथी, एक ज क्रियापां कुशलता प्राप्त थवाथी सर्व क्रियाओनी कुशलता प्राप्त यवापां काही प्रत्यवाय नहतो नथी एटले आ सर्व क्रियाओ एक वीजानी अपेक्षा रखें छे. जेमके महादान नामक क्रियापां न्यायवर्तन, पोष्य-चर्गनो अविरोध, मातापितानी आज्ञा, आशयनी पवित्रता,

(२१४)

चदारता आदि गुणोनी अपेक्षा होय छे ते ज गुणोनी
जिनपूजा, गुरुसेवामां पण आवश्यकता छे अने आ क्रियानी
निर्भलता मिळान्तवचन परिणमवाथी, तेना पर सद्भाव प्राप्त
वाथी ज थाय छे. तेम ज शास्त्रकार आचार्य कहे छे के-
सद्बुद्धिना हेतुभूत पुण्यविपाक्नो ज्यारे उदय याय त्यारे ज
जिनेश्वरनां आगममां अपूर्व श्रद्धा प्रगटे, अने पूर्वे जे प्रपाणे
महादान, इष्टपूजा अने सत्तगुरुसेवानुं स्वरूप कहुँ छे ते प्रपाणे
मनुष्योने अविरोधपणे आ शुभ क्रियाओनी वरावर प्राप्ति
याय छे. आ प्रपाणे एक ज क्रिया अन्य क्रियाने वाधा न
उपजावे तेवी ज्यारे प्राप्त याय त्यारे ज ते लोकोचरक्रिया
कहेवाय, अने अन्य क्रिया साथे एक विरोध करनारी प्राप्त
याय तो ते लौकिकक्रिया कहेवाय. निदान ए के-उपर दर्शित
अविरोधीनी विधिसह क्रियानी प्राप्ति आगमवचन परिणम-
वाथी अने महापुण्योदयथी, प्रत्येक क्रियानो परस्पर सुधारित
संबंध साक्षवाथी तेम ज विधिनो असुराग धारवाथी याय छे.



(६) जिनमांदिरषोडशकम्-

आगलना प्रकरणमां ‘लोकोच्चरतत्त्व’ शुं अने तेनी प्राप्ति कोने तथा शाथी थाय ? ए वात कही, एट्से सामान्य धर्मनी सिद्धि थया पछी लोकोच्चरतत्त्व प्राप्त थाय एम जणाव्युं, आथी आत्मा जिनमार्गमां आगल वधवाने अने उत्तरोच्चर परम गुणो इष्टकार्यसिद्धि करवाने योग्यतावालो थाय, निदान ए के-खरी लायकात तेपां आवे एम प्रतिपादन कर्युं, लायकात वगरनी वीतरागदर्शित क्रियाकृशलता उच्च गृहीजीवन अगर त्यागीजीवननो अधिकार उपलब्ध थाय तो पण ते भाङ्हती जीवन तुल्य होवाथी इष्टफल कदापि अर्पे नहीं, अतएव आ छाडा प्रकरणमां श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी भगवान लोकोच्चरतत्त्व आत्माने प्राप्त थया पछी आत्मा क्या क्या कार्यों करवाने अने क्या स्थाने विराजवाने अधिकारी थाय तेनुं व्यक्तस्वरूप विस्तारथी प्रतिपादन करे छे.

अस्यां सत्यां नियमाद्वि-

धिवज्जिनभवनकारणविधानं ॥

सिद्ध्यति परमफलमलं,

ह्यधिकार्यारंभकत्त्वेन ॥ ६—१ ॥

मूलार्थ—आ उपर दर्शित ‘लोकोच्चरतत्त्वनी’ प्राप्ति थया पछी निश्चयथी धर्मी आत्मा स्वयं विधिपूर्वक वीतरागनुं

(२९६)

मंदिर अन्य पासे करावे अने पोते जिनभवनना जे जे कारणो
होय तेने प्राप्त करे. आथी अधिकारीए आ कार्य आरंभ्यु
होवाथी तेने अतिशय परमफलनी सिद्धि थाय.

“ स्पष्टीकरण ”

प्रथम सामान्य धर्मना गुणो औदार्य आदि प्राप्त थाय,
त्यारबाद सिद्धान्तवचननो प्रेम, परमशद्वा अने परिणाम
यया पछी विधिनो बोध, आदर, करणग्रीति तथा क्रमशः
विधिसह क्रियाकुशलता तेम ज प्रत्येक क्रियानो विधिबोध
याय. एटले महादान, इष्टपूजा, सद्वसेवा—आ प्रमाणे आत्म-
शुद्धि अने एकान्त कर्मकारक लोकोचरतत्त्वनी परमगु-
णनी प्राप्ति थाय. जेने आ प्रमाणे क्रमशः अथवा उत्कृष्टी
ए गुणो हृदयांमां थाय ते आवश्यमेव स्वेषार्जित धन चंचल,
क्षणिक, विनश्वर धारी तेनो महादानमां, जिनपूजामां अने
गुरुभक्तिमां उत्साहथी व्यय करे, धर्मवृद्धि, समकितमाप्ति-
संरक्षण अने तेनी शुद्धि तेम ज शासनप्रभावना विगेरे कार्यों
स्वर्णदंगीमां अनेक वार ते धनथी करे, एटले वस्तुतः धन
उपर आ आत्मा गाढ मोह राखे नहीं. छेवटे वीतरागदेवनी
महापूजाना लोभथी पोतानी कुहुंवनी अने समान धर्मीओनी
सरलता माटे नित्य धर्मवृद्धि थाय ते सारु अने आत्मानी
पवित्र भावना वनी रहे तेमज कुहुंवीयो धर्म अने स्वकर्तव्यथी
च्यूत न थाय ते माटे तथा समकितनी निर्मलता—उच्चलता
माटे शास्त्रकर्ता कहे छे के—‘ नियमात् ’ निश्चयथी अथवा

योग्यता आवश्यकी आ आत्मा जिनमंदिर अन्य कारीगरो पासे करावे. ते पण जेम तेम नहीं, किन्तु पोते सिद्धान्तप्रेसी होवाथी 'विधिवत्' शास्त्रमां जे विधिथी अने जेवी योग्यता प्राप्त कर्या पछी करवालुं जणाव्युं ते प्रमाणे बनावे, एटलुं ज नहीं परंतु पोते स्वयं जिनभवनमां जे जे साधनो-वाह अथवा आभ्यन्तर साधनो-जोइए तेजुं संपादन करे अर्थात् स्वरी लायकात प्राप्त करे. आ प्रमाणे वर्तन करवाथी शुं फल थाय ? ते ग्रंथकार उत्तरार्थथी जणावे छे. एटले उपर कथा प्रमाणे 'लोकोत्तरतत्त्व' प्राप्त थवाथी योग्यता आवे अने तेथी—'अधिकार्यारंभकृत्वेन' खास अधिकारी शास्त्रोक्त योग्यतावालो आत्मा आ जिनमंदिर विधिपूर्वक बनावे छे, एटले अतिशय महान् उत्कृष्ट फल जे मोक्षफल अथवा तीर्थकर-गोत्रवंधरूप फल अगर निर्दोष सम्यक्त्वरूप फल निदानतया तेने उपलब्ध थाय छे.

आ श्लोकमां आचार्यदेवे 'लोकोत्तरतत्त्व' पव्या पछी शास्त्रोक्त अधिकारीपणुं प्राप्त करी अन्य पासे जिनमंदिर करावे अने पोते जिनमंदिर योग्य वाह्य तथा आभ्यन्तर पवित्र साधनलुं संपादन करे तेम कहुं, अतएव शास्त्रमां केवा गुणवालो जिनमंदिर करावाने योग्य गण्यो छे ? ए प्रश्ननो खुलासो ग्रंथकर्ता अहीं करे छे.

न्यायार्जितविचेशो,
मतिमान् स्फीताशुद्यः सदाचारः ॥

गुर्वादिमतो जिनभवन- कारणस्याधिकारीति ॥ ६—२ ॥

मूलार्थ—न्यायोपार्जित धनवान्, बुद्धिमान्, पवित्र आशयवान् अने सदाचारी तेम ज मातापिता तेमज घटिलो, राजा अपात्य आदिने मान्य एवा आत्माने वीतरागदेवनुं मंदिर करावा शास्त्रकारोए आधिकारी मान्यो छे.

“ स्पष्टीकरण ”

धनवान् अने गमे तैबी लायकात वगरनो आत्मा ममत्व, इष्या अथवा मानप्रिय वनी जिनमंदिर करावे छे, तो भविष्यमां तेने अगर तेना कुहुंबने, श्रीसंघने ते मंदिर पर एटली दरकार होती नथी. आयदे ते मंदिर भारभूत आशातनामय अने एक कर्मवंधनुं ज कारणभूत वने छे, तथा बनावनार पवित्र हेतुथी अथवा पवित्र आशयथी अने न्यायथी करावनार न होवाथी ते मंदिर अन्यने कल्याणभूत कदापि वनतुं नथी. अन्याय तथा दुष्टबुद्धिथी करेलुं एक गृहस्थ जीवनतुं सामान्य कार्य पण ज्यारे आत्माने शांतपणे वेसवा देतुं नथी तो आबुं जिनमंदिर पण उच्चतिमां क्यांथी हेतुभूत याय ? अतएव जिनमंदिर करावनारे केवल धनपतिपणानो ज मोहन धरता आ श्लोकमां दर्शित योग्यता मेलवावा तरफ लक्ष्य राख्नुं, एम ग्रंथकर्ता प्रतिपादक रीतिथी गर्भित उपदेश करे छे. एट्ले के आ श्लोकमां जिनमंदिर करावनानी योग्यतावाला माटे जे पांच विशेषणो आप्या छे ते पूरेपूरी रीतिथी

आत्मा ग्राप्त करे त्यारवाद ज जिनमंदिर पोते स्व अने परना कल्याण माटे वंधावी शके; अन्यथा जिनमंदिर वंधाववा पूरुण् ज कार्य कर्यु कहेवाय.

धनवान ज जिनमंदिर वंधावी शके ए बात खरी अने धन विना मंदिर विगेरे एक पण कार्य यह शके नहीं ए तो जाणीतुं छे, पण जिनमंदिर लेवा पवित्र कार्यों क्या धनथी थाय तो स्वपरने आयंदे कल्याणकारी थाय एनो खुलासो शास्त्रकर्ता प्रथम ज करे छे.—‘न्यायार्जितवित्तेशो’ जेगे स्वर्जीदगीमां पोताना कुलपरंपरागत व्यवहारथी छळ-कपट, विश्वासघात, चोरी अने बीजा निंदनीय व्यापारो विना धन पेदा कर्यु होय ते ज न्यायप्राप्त धन कहेवाय. आबुं धन जेना पासे होय ते ज मनुष्य वीतराग देवतुं मंदिर वंधावी शके अने पूजा तथा महादानना फलने पापवाने योग्य गणाय, कारण के न्यायप्राप्त धनथी करेलुं अल्प पण पुण्यकार्य पुण्यालुबंधी पुण्यलुं कारण थाय एम महिंश्चो कहे छे. आम छतां पण जो हित अने अहितनो विभाग करवानी अकल न होय अर्थात् कल्याणकारी शुं छे एटलो पण जेने विवेक न होय तो ते न्यायप्राप्त धननो सदुपयोग क्यांथी करी शके ? एटले ज—‘मतिमान्’ आ धननो हुं क्यां व्यय कर्ह तो भविष्यपां पार्ह एकान्त कल्याण थाय एवी जेनी सन्मति होय, तेमां पण कार्य करवा पहेला सन्मति उपजे अने कार्य शर कर्या पछी अगर कार्य बनी गया पछी आ में शुं कर्यु ? पार्ह धन बधुं खचाई जशे ? हवे हुं शुं करीश ? एवी एवी अनेक धार-

(३००)

गांगो-विचारो न आवे माटे कहे छे के—‘स्फीताशयः’
 कार्यनी शरुआतथी मांडी कार्य थइ रहे त्यांसुधी अने आगल
 उपर पण जेना परिणामो मंदिर आदि धार्मिक कार्योमां अतु-
 क्रमे बढता ज रहे; तथा ‘सदाचारः’ सदाचारी-उत्तम
 आचारान् होय ते. सदाचारानुं स्वरूप योगविन्दु प्रकरणां
 आ प्रमाणे कहुं छे—“लोकापवादभीखत्वं, दीनाभ्यु-
 छ्रणादरः। कृतज्ञता सुदाक्षिण्यं, सदाचारः प्रकी-
 र्त्तिः ॥ १ ॥ सर्वत्र निन्दासंत्यागो, वर्णवादभ्यं
 साधुषु । आपद्यदैन्यमत्थन्तं, तद्वत्संपदि नव्रता
 ॥ २ ॥ प्रस्तावे मितभाषित्व-मविसंबादनं तथा ।
 प्रतिपञ्चक्रिया चेति, कुलधर्मालुपालनम् ॥ ३ ॥ अ-
 सद्वययपरित्यागः, स्थाने चैतत्क्रिया सदा । प्रधान-
 कार्ये निर्बन्धः, प्रमादस्थ विवर्जनम् ॥ ४ ॥ लोका-
 चारानुषृतिभ्य, सर्वत्रौचित्यपालनम् । प्रवृत्तिर्गर्हि-
 तेनेति, प्राणैः कंठगतैरपि ॥ ५ ॥ दुनीया तरफना
 आपवादथी नित्य भीख, दीन-अनाथनो उद्धार करवामां प्रेम,
 आपणा पर करेल अन्य जनोनो उपकार जाणवो-मानवो,
 उत्तम दाक्षिण्यता-आ सर्व सदाचारो कहा छे; तथा सर्वत्र
 अने सर्वनी निन्दानो त्याग, उत्तम साधुजनोनी प्रशंसा, कट
 बखते अतिशय अदीनता अने संपत्ति अवस्थामां नम्र परिणाम,
 सुअवसरे अल्प भाषण, कोइनी पण साथे विवाद-क्लेशमां
 नहीं उतरेहुं, स्वीकृत कार्यनुं आखिरतक पाळन, तेमज कुल-
 शर्मनी बराबर सेवा, स्वोटा स्वर्चावंघ करवा-नहीं करवा, देवपूजा,

गुरुसेवा, दानादि कार्योमां लक्ष्मीनो नित्य व्यंय, विशिष्ट फल-
दायी कार्योमां आग्रह राखवो अने प्रमादनो त्याग करवो,
घणा लोकोमां रुद्ध तथा अविरुद्ध लोकव्यवहारतुं पालन करतुं,
स्वपक्ष अथवा परपक्षमां एटले स्वजाति के परजाति, स्वकुद्धंव
के परकुद्धंवमां सर्वत्र उचित आचारतुं पालन करतुं अने आ
लोक परलोकमां निंदनीय कार्यो प्राणो नाश पाने तो पण
करवा नहीं।” आ सर्व धर्मीयोंना सज्जनोना सदाचारो
शास्त्रमां कहा छे. आ सदाचार जेमां होय ते आत्मा अने—
‘ शुर्वादिभतः ।’ माता, पिता, बडिलो, राजा, अमात्य आदि
सर्वने माननीय होय ते जं पुरुष जिनमंदिर वंधावी शके
अर्थात् ते ज अहीं अधिकारी मान्यो छे. आथी ज आचार्यदेवे
‘ अधिकारीति ।’ ए अंतिम पदथी आवो मनुष्य जिनभवन
वंधावाने अधिकारी समझवो एम स्पष्ट निर्देश करे छे. अहीं
अंथकार अंतमां ‘ इति ।’ पदथी ध्वनित करे छे के—शास्त्रा-
ज्ञाथी परमशुद्ध अने अधिकारी आ पांच विशेषणविशिष्ट,
आत्मा ज होय. आ परथी लेभागु अने केवल धनवानो जे
काई पवित्र कार्यना हक्कदार वनी जह लाखोना खर्चयी
जिनमंदिरादि वनाववानो लाहो लेवा तत्पर यह जाय छे अने
उपरोक्त गुणो के शास्त्रीय आज्ञा तरफ ख्याल सरखो नथी
करता ए कोइ पण रीते योग्य नथी. उपरोक्त योग्यता प्राप्त
करी, तेने लक्ष्यमां राखी यदि जिनमंदिरो वंधावाय तो शास्त्रा-
ज्ञाना संरक्षण साथे परम कल्याणरूप इष्टफल नितान्ततया
स्वपरने प्राप्त थाय ज;

(१०२)

अन्य पासे जिनभवन धंधावहुं अने पोते तेना कारणो
एकत्र करवा एम पहेला श्लोकमां कहुं हतुं तो जिनभवनमां
साधनभूत क्या कारणो एकत्र करवा तेनुं स्वरूप अहीं आचार्य
स्पष्ट करे हे.

कारणविधानमेत-

च्छुद्धा भूमिर्दलं च दार्वादि ॥
भृतकानतिसंधानं,
स्वाशयद्वृद्धिः समासेन ॥ ६-३ ॥

मूलार्थ—जिनभवन निष्पत्तिना कारणकलापोहुं
संक्षेपयी विधान आ प्रमाणे जाग्यहुं-शुद्ध भूमि, शुद्ध काष्ठ
आदि दलो, नोकर, चाकरो अने मजूरोने संतोषवा, तथा
पोताना पवित्र आशयनी उत्तरोत्तर द्वृद्धि करवी।

“ स्पष्टीकरण ”

आ श्लोकथी ग्रंथकार जिनभवन वांछवामां उपयोगी
अंगोहुं संक्षेपयी वर्णन करे हे, एटले के जे साधनोवडे जिन-
भवनरूप कार्य वनी शके, कारणोहुं विशिष्ट भान थाय त्यार-
पद्धि तेनी विशिष्ट शुद्धि करवाथी कार्य पण विशिष्ट शुद्ध
तैयार थाय; माटे अहीं कारण विधाननो उपदेश आयो हे.
अहींया जे जे कारणो दर्शाव्या हे ते प्रत्येकहुं स्वरूप अने
तेनी शुद्धि केम साचवावी ? ते तो ग्रंथकार महाराज पोते ज

आगल पर विस्तारथी दर्शाव्यो. आथी अर्ही तो द्वाररूप टूँक ज वर्णन कर्यु अर्थात् केवल कारणोनी संख्या मात्र अर्ही दर्शावी छे. जिनभवन वांधवा पहेला भविकोए जिनभवन योग्य भूमिनी शुद्धि करवी, तथा काष्ठ, पत्थर आदि पदार्थो शुद्ध निर्दोष लेवा, जिनप्रासाद वांधवार कारीगरो-मजूरोने सुशी राखवा, तेऽनोने कोई प्रकारे ठगवा नर्ही अने वंधवावनारे योताङुं चित्त उदार तथा पवित्र, निर्दोष, उज्ज्वल विचारमय राखवुं, एट्लुं ज नर्ही पण उत्तरोत्तर अधिक सुंदर चित्त राखवुं.

पृथ्वीनी शुद्धि करवाङुं जणाव्युं तो केवी रीते शुद्धि करवी ? अने केवी पृथ्वी जिनप्रासाद वांधवाना कार्यमां लेवी ? ते स्पष्ट करे छे.

शुद्धा तु वास्तुविद्धा—

विहितासन्न्यायतश्च योपात्ता ॥

न परोपतापहेतुश्च,

सा जिनेन्द्रैः समाख्याता ॥ ६-४ ॥

मूलार्थ—वास्तुशाक्कनी विद्याथी विहित होय अने शोभन न्यायथी जे पृथ्वी प्राप्त यह होय तेपज जे पृथ्वी अन्यने क्लेश उपजावीने लीधी न होय ते ज पृथ्वी जिनेष्वरोए जिन-भवन माटे योग्य कही छे.

“ स्पष्टीकरण ”

वास्तुशास्त्रमां जे प्रकारे विधि कही छे ते प्रकारे प्रथम पृथ्वीनी शुद्धि करवी, एटले जे भूभाग पर जिनमंदिर वांछ्यु होय ते स्थलमां मुड़दा के अस्तित्वो न होय तेम चोतरफणी तपास करी निःशाल्य भूभागमां जिनमंदिर वांछ्युं. आ भूभाग पण सम्भव्य ग्रामधनथी खरीदीने लेवो अने पृथ्वीना मालीकने यथेष्टपणे संतुष्ट करवो. निदाने ए के-जे पृथ्वी माटे किंचित् पण अन्यायने स्थान न मळे अने न्यायथी ज लीधी होय, तथा ते भूभागनी आसपास कोइ अहस्य जन रहेता होय तेओनी एक अंगुल मात्र पण जमीन जेमां दवाय नहीं, तेओने यद्यकिं-चित् पण कलेश, दुख के उद्गेत्र याय नहीं—आ विधिथी ग्राम जमीन शुद्ध भूमि कहेवाय. जिनेवरदेवो जिनमंदिर माटे आवींज भूमि योग्य कहे छे. हेतु ए के—आवी जमीन पर जिन-मंदिर वांछ्युं होय तो ते कल्याणमय अने शास्त्रोक्त विधान-वाल्मीकीय कहेवाय. आ परथी भंदिरना दंस्तियो मंदिरनी पासेनी जमीन धर्ममां जाय छे, एम मानी दवाववा अघम प्रयत्न करे छे, कोइ पण गृही मरवानी अणी पर होय त्यां कपट करी तेना कुहुंबीयोने रहता राखी तेना मकानो, मिलकतो मंदिरमां लेवा प्रयत्न करे छे, आवकर्म विरुद्ध करोयी पैसा एकत्र करी जिनधन वधारवानी घेलछा राखे छे ते नितान्त शास्त्रविरुद्ध अने कर्मवर्धक छे एम स्पष्ट याय छे. एटले आ रीति तो नितान्त अनुचित ज कहेवाय. आथी शास्त्रो उपदेशे छे के-जिन-

(३०५)

आज्ञा विरुद्धपणे जिनद्रव्य वधारे तो आत्मा अनन्तसंसारी
याय छे, ए वाक्य खास मननीय छे.

जिनमंदिर माटे जे जमीन जोइए तेमां आटली विधि
साचववानुं शुं कारण १ तेनो हेतु ग्रंथकार खुऱ्हो करे छे.

शास्त्रबहुमानतः खलु,
सच्चेष्टातश्च धर्मनिष्पत्तिः ॥
परपीडात्यागेन च,
विषययात्यापसिद्धिरिति ॥ ६-५ ॥

मूलार्थ—विधिर्दर्शक वास्तुशास्त्रानुं वहुमान करवाथी
अने अन्यने पराभव न उपजाववाथी तेमज वीजाने क्लेश न
उपजाववाथी निश्चयथी धर्मसिद्धि याय, अने आथी विरुद्ध
वर्तन करवाथी पापसिद्धि याय.

“ स्पष्टीकरण ”

वास्तुशास्त्रमां जे विधि जिनभवन वनाववानी कही छे ते
प्रपाणे अनुसरण करवाथी शास्त्रविधिनुं वहुमान सचवाय.
धर्मीए शास्त्रानुं वहुमान अवश्य करावुं ए तो सामान्य नियम
छे, तथापकारे वर्तवाथी निर्देष भाववर्धक जिनभवन पण
तैयार याय छे अने तेथी ज धर्मनिष्पत्ति पण सिद्ध याय;
तेमज जिनभवन आदि कायों साधतां प्रथम ते कायों करवाथी

यदि अन्यनो अभिभव थतो होय, वीजाओने दुख थतुं होय,
काँइ नुकशान थतुं होय अगर पीडा के क्लेश थता होय तो
अवश्य तेजो त्याग करतो जोहए. निदान ए के-कोइने
पण अभिभव के क्लेश उपजाव्या वगर अने सर्वने संतोष
पमाडी जिनभवन वंधावर्दुं तो ज धर्मनिष्पत्ति थाय. अन्यथा
शास्त्रकार कहे छे के-जे प्रवृत्तियां शास्त्रवहुपान न सचाय,
परनो पराभव थाय, अन्यने क्लेशो थाय तो ते पापनिष्पत्ति-
कारक ज गणाय. यशोविजयजी महाराज कहे छे के-जे हेतुओ
धर्मसिद्धिकारक कथा क्ले ते ज हेतुओ विरुद्ध वर्तन करवायी
पापकारक बने छे, कारण के जे मात्राओ शरीरनी पुष्टि करे
छे ते ज मात्राओ अपथ्य करवायी शरीरनी कीणता करे ए
अनुभवसिद्ध छे.

उपर कहुं एटलुं ज नहीं पण आ प्रमाणे करवायी
धर्मनिष्पत्ति थाय छे. यथा—

तत्रासन्नोऽपि जनो-

असंबन्ध्यपि दानमानसत्कारैः ॥

कुशलाशयवान् कार्यो,

नियमाद् बोध्यंगमयमस्य ॥ ६-६ ॥

मूलार्थः—जिनपासाद वांघती वसते स्वजनादि-संवंश-
शून्य लोको त्यां आसपास रहेता होय तेमनो पण अवश्य

(३०७)

अशनादिवडे मान अने सत्कारथी सन्मान करी ते लोको
जैनधर्मनी प्रशंसा करनार सुंदर परिणामवाला थाय तेम करबुं,
कारण के आबुं वर्तन राखबुं ते खास समकितप्राप्तिसुं
अंग घने छे.

“ स्पष्टीकरण ”

जिनमंदिर स्व अने परने बोधिप्राप्ति अथवा तेनुं रक्षण
तेमं उच्चलता करवा माटे वंधावाय छे. आ समकितनो लाभ,
रक्षण अथवा उद्दीपन विगेरे पोताना कुशल परिणामो वनवाथी,
अन्यने कुशल परिणामवान् करवाथी, धर्मनी प्रशंसा करवाथी—
कराववाथी थाय. जे कार्यमां कर्तानुं हृदय शुभ न होय, नजी-
कना लोकोनी प्रसन्नता न होय, अन्य लोकोने अनुमोदनीय
न थाय ते कार्य आयंदे हितकारी अथवा लाभदायी
कदापि थाय नहीं. जिनमतमां जे जे कार्यों कल्याण अने
लाभदायी मान्या छे ते सर्व स्वहृदयनी प्रसन्नता अने परने
अनुमोदनीयना आधारे अवलंबवाथी ज थाय. निदान ए के—
हृदयनी विपुलता अने उच्चता विना जिनमतना कल्याणकारी
कार्योंनो लाभ थाय नहीं. अतएव भगवान् हरिभद्रसूरिजी कहे
छे के—जिनमंदिर वंधावनारे केवल पृथ्वी, काष्ठोनी ज शुद्धि
करी वांधनार कारीगरोने खुश करी अमे शुद्धिसुं रक्षण कर्युं
एटलायी संतोष मानवो नहीं, किन्तु जिनमंदिर वांधती वरते
अने वांध्या पछी त्यां आसपास निवास करनार जे लोको
होय, ते स्वजनातीय अगर परंजातीय एवं स्वजनादि संवंध

(३०८)

वगरना होय, पोताना कार्यमां मददगार न थाय तेवा होय तो
पण ते सर्वेनो अश्वन, पान, खादिम, स्वादिम आदि पदार्थों
आपीने, नमस्कार, अंजली, विनय, नम्रताथी सम्मान करीने,
आसनादिथी सत्कार करीने अवश्य सत्कार करवो, तेओने
खुश करवा, तेओ पण जिनमंदिर आदि कायों अने आपणी
धर्मपृष्ठि देखी “अहो ! धन्य छे आ जैनधर्मने ! धन्य छे आ
जैनोने !! के जे धर्मपां, जे लोकोमां, आटलो विवेक रहोछे,
आटली उचितता रही छे ” आ प्रयाणे प्रशंसा करे अने परि-
णामे सरल परिणामी यह तेओ जैनधर्मलुं गौरव करी रागी
थाय अने छेवटे धर्म पामी मार्ग पर आवे. अर्थात् वांशनारनी
आ प्रबृत्तिथी अन्य लोको शुभ अध्यवसाय पामी वोधिनो
लाभ करे, पोताना समकितनी शुद्धि थाय, लोको जैनधर्मनी
प्रशंसा करे, अनुमोदन-अनुकरण करे, अतएव धर्म साधता
थका अन्यने शुभ परिणामो करवाथी वोधिसाधनलुं आ एक
अगत्यनुं अंग छे.

जिनमंदिरमां पत्थर आदि जे जोइए तेनी शुद्धि केम
करवी ? तेनो उपदेश ग्रंथकर्ता आ प्रयाणे करे छे.

दलमिष्टकादि तदपि च,
शुद्धं तत्कारिवर्गतः क्रीतम् ॥

उचितक्रयेण यत्स्यादा-
नीतं चैव विधिना तु ॥ ६-७ ॥

मूलार्थः—दत्त एट्ले इंट, पाषाण, चूनो विगेरे ते पण
शुद्ध, अर्थात् तेने उपजावनार पत्सेथी उचित मूल्य आपी
खरीदा होय अनेभार वहन करनारने उचित मूल्य आपी
तेओने अधिक खेद-क्लेश न थाय तेवी रीते लावेल होय ते
ज जिनमंदिर करवामां उपयोगी थाय.

“ स्पष्टीकरण ”

मंदिर बंधाववामां जे जे पदार्थो जोइए ते ते केवा लेवा ?
तेनो प्रकार ग्रंथकर्ता जणावे छे. मंदिर माटे चूनो, इंट, पत्थर
के लाकडा विगेरे जे जोइए ते तेने बनाववावाला लोको
पासेथी उचित मूल्य आपी एट्ले लोक व्यवहारमां जे पैसा
दरेला होय तेटला पैसा आपी लेवा, परंतु धर्मदानुं काम छे
माटे भावमां खेंचताण करी, ओळा—वत्ता करी आङ्गर आङ्ग-
आवळं समजावी लेवा नहीं, तेप ज छळ, प्रपंच, विश्वासघात
करी लेवा नहीं. तथा आ पदार्थो पण वेचनारे पोताना
व्यापार अर्थे तैयार करेल होय तेवा ज लेवा, परंतु खास
मंदिर माटे भट्टीयो करी, खोदावी, आरंभादि करी लेवा
उचित नथी. ए ज वात यशोविजयजी स्वकृत टीकामां कहे
छे—“ स्वप्रयोजनसिद्ध्यर्थमेवेष्टकादिकरणशीलानां
मुख्याणां ” एवी ज रीते आ पदार्थो ज्यांथी लाववा होय
त्यांथी जे लोको गाडामां अथवा जानवर उपर लादीने लावे
ते लोकोने पण वरावर भाङ्ग आपी, जानवर अथवा मजूरने
अधिक दुःख न थाय, लोको निंदा न करे, व्यवहारमां अनु-

(३१०)

चित न देखाय तेवी रीते मंगाववा. आ रीतना ज पदार्थों
मंदिरना कार्यमां उपयोगी थाय, आथी उलटी रीते करवाई
अविधि लागे, कुशलाशयनी हानी थाय तेम ज लोकों
जैनधर्मनी निंदा थाय.

यदि मंदिर अर्थे काष्ठनी आवश्यकता होय तो ते केवा
लेवा ? ए दशावै छे.

दार्वपि च शुद्धमिह
अत्नानीतं देवताद्युपवनादः ॥
प्रगुणं सारवदभिनव-
मुच्चैर्ग्रन्थ्यादिरहितं च ॥ ६-८ ॥

मूलार्थः—काष्ठे पण आही शुद्ध प्रयत्नपूर्वक देवता-
मनुष्य संवंधी उपवनमांथी सरल, सारसूत, नवीन अने सर्वथा
गांठ आदि द्रोष विनाना आवेला होय ते ज मंदिरना
उपयोगमां लेवा.

“ स्पष्टीकरण ”

मंदिर पाटे जो लाकडानी आवश्यकता होय तो ते पण
न्यायथी अने सम्यक प्रयत्नथी लाववा. आ पण जे वनमां
देवता अधिष्ठित होय, मनुष्य आगर जानवरनी यालिकीनुं होय,
तेऽनेसंतोषी, पूजा आदि अर्पी ते वनमांथी लेवा अथवा
वननी नजीकना कोइ सुंदर वृक्षो होय तेमांथी लेवा; परंतु आ

(३११)

काष्ठो सरल, बक्रता विनाना, गर्भवाला प्रधान अने नवा लेवा.
 जीर्ण थया न होय, कीडाओ पल्या न होय, तेमज जेमां गांठ
 के अन्य दूपणो जरा पण लागेल न होय तेवा ज काष्ठो
 मंदिरना कार्यमां लेवा, जेथी मंदिर दीर्घकाल पर्यंत स्थिर
 रहे, कोइ पण मिथ्यात्वी देवो विगेरे उपद्रव न करे. अर्हा
 पण प्रथम कहेल वात अवश्य ध्यानमां राखवी, एटले के—
 व्यापारीओ पोताना व्यापार अर्थे लाकडा लाव्या होय तेनी
 पासेशी उचित मूल्य आपी, भारवाहकोने उचित भाँडु आपी
 संतुष्ट करी लाववा; किन्तु मंदिरना माटे बनकर्म कराँडु शास्त्रो
 उचित मानता नथी.

विधिपूर्वक पत्थर, काष्ठो विगेरे लाववा एम कही गया.
 अर्हा ते पदार्थो लाववानी विधि शुं छे ते जणावे छे.

सर्वत्र शकूनपूर्व,

अहणादावत्र वर्त्तिव्यमिति ॥

पूर्णकलशादिरूप-

श्रित्तोत्साहानुगः शकुनः ॥ ६—९ ॥

मूलार्थः—पत्थर, हंट, काष्ठ आदि मंदिर पाटे शकून
 देखीने लेवा तथा लाववा. अर्हा वाह्य शकूनो जलमृतकुंभ
 लाइने कोइ कन्या विगेरे सामे आवे ते विगेरे अने आभ्यन्तर
 शकूनो चित्तनी प्रसन्नता, गुरुआज्ञा आदि जाणवा.

“ स्पष्टीकरण ”

प्रथम मंदिर अर्थे जे पदार्थो जोइए ते विधिपूर्वक लेवा
 एम जणावी गया, तेथी अर्हीं विधि दशाविं छे. कार्यनी
 प्रशस्तता—अग्रशस्ततानुं अनुमान शकूनो अने मननी स्थिति
 परथी करी शकाय एवं सामुद्रिकशास्त्रो कहे छे. आथी ज
 प्रशस्तकार्यना आरंभमां पहेला शकूनो देखवा, मंगल आचरण.
 शुभ दिन, घडी, ग्रहो, चंद्र आदि तपासवानुं महर्षिंशो कहे छे.
 आना मुख्य वे कारणो छे. एक तो हृदयनी प्रसन्नता वधे
 अने वीजुं अनिष्ट संबंधी शंका दूर थाय. अतएव अर्हीं पत्तर,
 चूलो, इंट, काष्ठ विगेरे खरीदवा जता शुभ शकूनो देखवा
 तेमज शकूनो देखी लाववा. अर्हीं शास्त्रकर्ता वाह अने आभ्यं-
 तर एम वे प्रकारना शकूनो जणावे छे. जलसृतकुंभ विगेरे वाह
 शकूनो सामुद्रिकशास्त्रमां आ प्रपाणे करां छे—“कन्या गोपूर्ण-
 कुंभो दधिभधुक्षुमुं पावको दीप्यमानो, यानं वा
 गोप्रयुक्तं रथवरतुरगो छुव्रभद्रातिभद्रं । उत्खाता
 चैव भूमिर्जलचरमिशुनं सिद्धमन्त्रं मुनिर्वा वेदयाखी-
 मद्यमांसं हितमपि वचनं मंगलं प्रस्थितानाम् ”
 ॥ १ ॥ “ कन्या, जल अथवा दूध भरेलो कुंम, दहीनुं पात्र,
 मधुलुं पात्र, फुल भरेली छाबडी, वळतो जाज्वल्यमान अग्नि,
 वळद जोडेलुं वाहन, घोडा सहित रथगाढी, अतिभद्र खुल्लुं
 छत्र, खोदेली माटी, जलचरणुं युग्म, पकावेलुं अनाज, मुनि,
 वेश्या, प्रदिरा, मांस अने हितकारी वचन-आटला पदार्थो

चालती बखते समीप मळे तो मंगल करनारा थाय।” आ सर्व वाद्य शकूनो कदां छे. मंदिरनो सामान लेवा जतां-लावतां चिवेकाए आ शकूनो देखी प्रयाण करवुं; तेपज हृदयनी प्रसन्नता, गुरुआङ्ग ए आभ्यंतर शकूनो जाणवां. उत्तम सामुद्रिको कहे छे के—यदि वाद्य शकूनो न मळे अने हृदयनो एकाएक तीव्र उत्साह जणाय, गुरुओनी एकाएक आङ्ग थाय तो वाद्य शकूननो आधार राख्या विना पण प्रयाण करवुं; कारण के वाद्य शकूनो करतां आभ्यन्तर शकूनो बल्वत्तर गण्या छे. एटले आभ्यंतर शकूनो न मळे अने वाद्य शकून घणा सुंदर मळे तो पण ते इष्ट फळ आपी शके नहीं. आ विधि मंदिरनो सामान लाववा माटे शास्त्रोपां कहेल छे.

मंदिर वांधनार कारीगरोने रागवा नहीं परंतु तेओने संतोषवा, एम जणाव्युं हतुं तो तेओं साये मंदिर वंधावनारे केम वर्तवुं ? ते दर्शने छे.

भृतका आपि कर्त्तव्या य,

इह विशिष्टः स्वभावतः केचित् ॥

यूयमपि गोष्ठिका इह,

वचनेन सुखं तु ते स्थाप्याः ॥६-१०॥

मूलार्थ—गारीगर नोर्दरांने पण नहीं जिनभवनल्प कार्यमां विशेष स्वभाववाका वनाववा, अयवा केड़लाको स्व-

‘भावथी ज उत्तम स्वभाववाला होय तेओने पण तमे लींको आ .
जिनमंदिररूप कार्यमां मारा सहायको छो, तपारी महेश्वानी-
बडे आ अमारुं कार्य घणुं ज सुंदर थशे इत्यादि बचनो कही
ते लोकोने सुखपूर्वक संतोषी राखवा.

“ स्पष्टीकरण ”

मंदिर वांधनार कारीगरोनुं मन प्रसन्न होय, तेओ राजी
होय तो मंदिरनुं कार्य सुंदर अने शीघ्रताथी निर्दोषपणे पूर्ण
थाय; माटे मंदिर बंधावनारे कारीगरोने खुश राखवा, अनेक
शिखामणो आपी तेओना अंतरमां जैन धर्मनो प्रेम उपजाववो,
प्रामाणिकता अने नीतिनो ख्याल कराववो, धर्मनुं कार्य छे
माटे बराबर ख्याल राखी उत्तम दानतथी करवुं तेम मिष्ठ बच-
नथी ग्रेणा करवी। टूँकमां ते लोको विशिष्ट सुंदर स्वभाववान्
विचारवान् थाय तेम करवुं, अथवा केटलाक लोको स्वभावथी
ज उत्तम प्रकृतिवाला अने धर्मी होय तेओने पण “ तमे
लोको मारा सहायको छो, आ जिनमंदिर वांधवामां तपारी मने
पूरी सहायता छे, आ कार्य पूर्ण थये तमने संतोषीशुं अने
घणुं सारुं पारितोषिक आपीशुं.” आ प्रमाणे संतोषवा. मंदिर
उत्साहथी वांधे अने शीघ्र पूर्ण करे तेम तेओ साथे वर्तवुं.

‘ कारीगरो ’ धर्ममित्र होवाथी तेओने उगवा नहीं, एवो
उपदेश आपे छे.

अतिसंधानं चैषां,
 कर्त्तव्यं न खलु धर्मसिद्धाण्डां ॥
 न व्याजादिह धर्मो,
 भवति तु शुद्धाशयादेव ॥ ६—११ ॥

मूलार्थ—मंदिर वांधवार कारीगरो पण निश्चयथी धर्म-
 मित्रो होवाथी तेऽग्ने कदापि उगवा नहीं, कारण के प्रपञ्चथी
 आ मंदिर वांधवामां धर्म यतो नथी किन्तु आशय पवित्र
 राखवाथी ज धर्मप्राप्ति थाय हो.

“ स्पष्टीकरण ”

ग्रंथकर्ता धर्मनुं लक्षण शख्तात्मां ज ‘ अंतःकरणनी
 पवित्रता ’ रूप जणावी गया हो. एटले जैन सिद्धान्तनिर्दिष्ट
 उत्तम धर्मक्रियानी प्राप्ति आशयनी पवित्रता होय तो ज थाय,
 अन्यथा आशयनी पवित्रता विना दुष्ट अंतःकरणपूर्वक क्रोडो
 वर्ष पर्यंत केलीए धर्मक्रियानुं आचरण करे तो पण तेथी कष्ट-
 फल सिवाय अन्य फल मलतुं नथी. अतएव ग्रंथकर्ता आ
 श्लोकमां दशावै हो के ‘ भवति तु शुद्धाशयादेव ’ पवित्र
 आशय राखवाथी ज धर्म याय. अहीं ग्रंथकारे अन्तमां ‘ एव ’
 कार आपी निश्चय जणाव्यो हो अर्थात् आ विना धर्म न ज
 थाय, माटे मंदिर वंधावनारे कृपणता करी कारीगरोने उरावेल
 पैसा आपवामां प्रपञ्च के छळ करवो नहीं, अथवा पैसाना वदले
 पोतानी दुकान परथी कांड माल आपी तेपांथी नफो स्वावानी

(३१६)

इच्छा करवी नहीं, माल ओछो—वत्तो आपवो नहीं; किन्तु जे पैसा ठराव्या होय ते ज विना प्रपञ्चे तेजोने संतोष थाय तेवो रीते आपवा; कारण के ग्रंथकर्ता कहे छे के—‘न व्याजादिह धर्मो’ कारीगरो साथे कपट—छल—प्रपञ्च करवाथी धर्म थतो नथी पण उलटो अधर्म वधे छे.

मंदिर वंधावनारे पोताना शुद्ध आशयनी वृद्धि थाय ते प्रमाणे वर्तबुं तो अहीं मंदिर वंधावनारे केवा पवित्र आशयथी मंदिर वंधावबुं तेनो उज्जेख ग्रंथकर्ता दर्शावे छे.

देवोदेशेनैतद्युहिणां,
कर्तव्यमित्यलं शुद्धः ॥
अनिदानः खलु भावः,
स्वाशय इति गीयते तज्ज्ञैः ॥ ६—१२ ॥

मूलार्थ——ग्रहस्थे जिनभक्तिवडे जिनमंदिर वंधावबुं, पण अमुक लालसाथी अथवा पुत्र, धन आदिना लोभवडे वंधावबुं नहीं, उपरोक्त धारणा ते ज पवित्र आशय कहेवाय. आ आशेयने पवित्र आशयवेत्ताओ स्वाशय कहे छे.

“ सपष्टीकरण ”

निदान वगरनी ज धर्मक्रियाओ इष्ट फल आपे एबुं जैन शास्त्रो कहे छे. अतएव धर्मज्ञे धर्मक्रिया वर्तनमां कोइ पण जात्युं नियाणुं करबुं नहीं. नियाणावाळी धर्मक्रिया पापानुवंधी पुण्य-

बंध करावी दुर्गतिमां आत्माने फेंके छे. ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीए पूर्वजन्ममां परम शुद्ध मुनिषण् पाळ्युं, चक्रवर्तीनी पट्टराजीनी वेणीनो बंदना करता मुनिने स्पर्श थयो. सुकोपल अने परम सुंदर केशकलापना स्पर्शे मुनिनुं चित्त चकडोले चडाव्युं, (मुनिनो आत्मा कामपरवश बन्यो.) ध्यान अने धर्मभावनाथी मुनिनो आत्मा भ्रष्ट थयो. ते कामिनीना संयोगमां चित्त चोंटी गयुं. ए ज ध्यान, ए ज विचारो रोमोरोप व्यास थया. परिणामे (पोताना पवित्र कर्मना फल तरीके) आवी कामिनी जन्मांतरमां पामवा मुनिए स्वहृदयमां गांड वांधी, तन्मय विचारोमां मुनिनो देहांत थयो, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती थया, पूर्व जन्मना बन्धु मुनिए धर्म पमाढवा अनेक प्रयत्नो कर्त्ता छतां ते सर्वे व्यर्थ थया अने ते आत्मा नरकनो अतिथि बन्यो. आ प्रमाणो प्रखर तप के चारित्र पाल्वा छतां नियाणु करवाथी ते सर्व धूळमां मळी जाय छे, माटे अर्हा शास्त्रकार कहे छे के-जिन-मंदिर वंधावनारे जिनमंदिर, जिनदेवो पर एकान्त ग्रेम, श्रद्धा अने भक्तिवडे वंधावव्युं. अर्थात् आ क्षणिक जींदगीमां परम कल्याणानुं स्थान, अनन्त पापो नाश करवानुं खरूं साधन, संसार तरवानुं मुख्य यंत्र, आत्मशुद्धिनुं कारण तथा पापो-पार्जित धन व्यय करवानो मुख्य मार्ग अने अनन्त पुण्य प्रह-वाहनी नदी आ जिनमंदिर ज छे, ए प्रमाणोनी भावनाथी जिनमंदिर वंधावव्युं; परंतु जिनमंदिर संततीनो लाभ, वंशनी वृद्धि, धननी प्राप्ति, आरोग्यता, यश, कीर्ति, प्रतिष्ठा या लो-भयी आ आशयोथी वंधावव्युं नहीं; कारण के आ आशयो धारी

(३१८)

जिनमंदिर वंधाव्युं अने धारेली इच्छाओ अंतराशोदयशी
पार न पडे तो मंदिर पर, धर्म पर अने तीर्थकर देव पर अनादर—अश्रद्धा उपजे. यदि धारणाओ सिद्ध थाय तो आत्मा मोहक
पदार्थना अधिक मोहमां घसडाय, तेमज आ विचारो नियाण—
रूप होवाथी मलिन कहा छे. एटले आप करवाथी जन्मांतरमां
धर्मनी दुर्लभता थाय. अतएव भगवान् हरिमद्गूर्जिनी कहे छे
के: उपरोक्त लोभ विनानो अने प्रथम कहेला भावमय विचार
ते ‘अनिदानः’ अनिदान भाव कहेवाय तथा आ ज भाव
‘अलं शुद्धः’ अतिशय शुद्ध जाणवो. आथी आवा विचारोने
पवित्र आशयवेत्ताओ ‘स्वाशय’ सुष्टु आशय कहे छे. मंदिर
वंधावनारानुं आ आशयो परम कल्याण करी शके छे, तथा
अन्यने अनुमोदनीय बने छे.

उपर दर्शित सुष्टु आशयनी वृद्धि क्रमे क्रमे मंदिर वंधा-
व्या पछी वंधावनारे केवी रीते करवी, अने मंदिर वंधाव्या
पछी वंधावनारे केवी केवी भावनाओ भाववी ? ते बात
ग्रंथकर्ता दर्शवे छे.

प्रतिदिवसमस्य वृद्धिः,
कृताकृतप्रत्युपेक्षणविधानात् ॥
एवमिदं क्रियमाणं,
शस्त्रमिह निर्दीर्शितं समये ॥६-१३॥

मूलार्थ—प्रथम जणावेला आशयनी ‘मैं आ’ जीव-

(३१९-)

गीर्मां मंदिर बंधाववाहृप कार्य कर्युः अने असुक
तीर्थयात्रादि कार्यो कर्या नथी'-आ प्रमाणे विचारो करी-
अने ते विचारोने वर्तनमां मूकी वृद्धि करवा, आ रीते करवावी
जैनशास्त्रमां आ जिनमंदिररूप कार्य परमश्वस्त-प्रधान-
कहुँ छे.

“ स्पष्टीकरण ”

प्रथम तो मंदिर बंधावनारे उपर जे भाव दर्शाव्यो तेने प्राप्त-
करी तेहुं संरक्षण करतुं, त्यारवाद आ भावनी वृद्धि केम याय-
तेनो प्रकार अहीं दर्शावे छे, उपरोक्त भावनी वृद्धि करेला
कार्यतुं अवलोकन करी ' अहो में मारा आ चृणिक-
जीवनमां एक मंदिर बंधावी लहमी चारितार्थ करीः' आ प्रमाणे अनुमोदना करी-करवी, अने 'अथापि मंदिरना
अंगभूत अन्य कार्यो अथवा तीर्थयात्रा, संघ, उपा-
श्रय आदि कार्यो कर्या नथी पण भविष्यमां मारे
अवश्य करवा छे' आ रीते नहीं करेला कार्योनो मनोरथ-
संकल्प करी भावनी वृद्धि करवी परंतु आ विचारो करी
खाली देखाव करवा नहीं, किन्तु सुच्चरसरे तेने प्रवृत्तिमां
मूकी पवित्र आशयवृद्धि करवी ए ज भाव ग्रंथकर्ता 'विधा-
नात्' ए पद्धी दर्शावे छे, अहीं दीकाकार यशोभद्रमूरिजी-
भावनी वृद्धिनो उल्लेख करे छे. “ प्रशान्ताः सुरांति-
यान्ति, संयताः स्वर्गगामिनः । शांतायतनकर्तृणां,
सदा पुण्यं प्रवद्धते ॥१॥ ” “ प्रकृतिशान्त आत्माओ-

(३२०)

सद्गति पामे ह्ये अने इंद्रियोनुं दमन करनार स्वर्गे जाय ह्ये;
ज्यारे शान्तिमय देवमंदिर, उपाथय आदि वंशवनारने नित्य
पुण्यनी बृद्धि थाय ह्ये.” आवा विचारोपूर्वक अथवा आवा
विचारो करवाथी अर्हो जैनशास्त्रमां आ जिनमंदिररूप पवित्र
कार्य शस्तः-प्रधान कहुं ह्ये—अर्थात् आ कार्य करवाथी उत्त-
रोत्तर पुण्य नदीनो प्रवाह बहा करे ह्ये, अथवा भावबृद्धिनुं
स्वरूप आ प्रमाणे कहुं ह्ये—“ एतद् द्वार्हाहृतं चैत्यमनेके
सुगतिं गताः । यास्यन्ति वहवश्चान्ये ध्याननिर्वृत-
कल्पषाः ॥ १ ॥ यात्रास्नात्रादिकमेह भूतमन्यच्च
भावि यत् । तत्सर्वं श्रेयसां वीजं ममाहृचैत्यनि-
र्मितौ ॥ २ ॥ साधु जातो विधिरयं कार्योऽतः पर-
मेष मे । अहृचैत्येष्विति ध्यानं आद्वस्य शुभबृद्धये
॥३॥ अहंपूर्विकया भर्त्ति ये च कुर्वन्ति यात्रिकाः ।
तेऽपि प्रवर्द्धयन्त्येव भावं अद्वानशालिनाम् ” ॥४॥
“ आ जिनमंदिरना दर्शन करी अनेक लोको सद्गति
पाम्या, अने वीजाओ पण आ जिनमंदिरना ध्यान प्रमावथी
पापकर्मनो क्षय करी सद्गतिगामी थशे. आ जिनमंदिरमां पूर्व-
काले जिनयात्रा, जिनाभिषेक, जिनपूजा, जिनदर्शन विग्रेरे
पवित्र कार्यो वन्या, तथा भविष्यमां पण आ पवित्र कर्यो थशे.
आ सर्व कल्याणानुं मुख्य वीज में जिनमंदिर बंधाव्युं ते ज
छे. खरेतर आ विधान सुंदर ह्ये. फरी पण आहु काम
मविष्यमां पारे करवुं उचित ह्ये. आ प्रमाणे आवकने अहृचैत्य

शुभ ध्याननी वृद्धि करनार थाय. यात्रिको पण जिनमं-
दिरपां आवी 'एक कहे हुं पहेली पूजा करुं, बीजो कहे हुं
पहेलो अभिषेक करुं, त्रीजो कहे हुं पहेलो आरती
उतारुं, चोथो कहे हुं प्रथम अंगरचना करुं' आ प्रमाणे
उत्साह भक्तिर्थी अहंपूर्वितावडे जिनमंदिर वंधावनार
अद्वालु जनना भावमां वधारो करे छे. " ए रीते जिनमंदिर
वंधावनार विचारो करी पोताना भावोनी वृद्धि करे, तथा आ
सर्व विचारो जिनमंदिर वंधावनारना विचारो वधारवापां
सहायक छे, एम शास्त्रकर्ता स्पष्ट जणावे छे अने मोक्षार्थीए तेम
करबुं पोताना आत्मा माटे उचित छे.

उपर जणावेल विचारो ज प्रधान कहा तेनो शुं हेतु !
ए भाव स्पष्ट करे छे.

एतदिह भावयज्ञः,
सदृश्यहिणो जन्मफलमिदं परमं ॥
अभ्युदयाव्युच्छ्रित्या,
नियमादपवर्गबीजमिति ॥ ६-१४ ॥

मूलार्थ—आ जिनमंदिर वंधावबुं ते ज गृहस्थोने अंगे
भावपूजा अने पोताना जन्मस्तुं प्रकृष्ट फल कहुं छे. हेतु ए के-
आयी अभ्युदय एटले कल्याणनी परंपरानो कदापि नाश

थतो नथी अने परिणामे निश्चयथी मोक्षस्तपी वृक्षतुं बीजभूत
जिनमंदिररूप कार्य बने हे.

“ स्पष्टीकरण ”

शास्त्रमां द्रव्यपूजा अने भावपूजा एम वे प्रकारे पूजा कही
हे. तेमां जल, चंदन, पुष्प, नैवेद्य आदिथी पूजा, आंगरचना,
मंदिर बनावधुं, प्रतिमा भरावकी, अलंकारो चढाववा, उत्सवो
करवा, रथयात्रा विग्रेरे सर्व द्रव्यपूजा कही हे. आ पूजा
करवानो अधिकार गृहस्थने हे, परंतु सर्वत्यागीने अधिकार
नथी; कारण के तेमां आरंभ हे. सर्वत्यागी आरंभना त्यागी
हे एटले तेऽथोने आ कार्यमां आरंभथी त्रास थाय अने
प्रतिज्ञानो भंग थाय. गृहस्थ आरंभना त्यागी नथी. कुदुंचादि
अर्थे अने जीवन व्यवहार अर्थे स्नान, पुष्प आदिनो आरंभ
करे हे, एटले तेऽथोने द्रव्यपूजा करवानो आदेश आवश्यक हे,
ज्यारे भावपूजानो अधिकार साधुओने हे ए ज वाततुं अनु-
मोदन उपाध्यायजी ज्ञानसारमां करे हे:-“ द्रव्यपूजोचिता-
भेदोपासना गृहमेधिनाम् । भावपूजा तु साधुनाम-
भेदोपासनात्मिका ” ॥ १ ॥ अतएव अहीं हरिमद्भू-
रिजी जिनमंदिर पाटे भार मेलीने कहे हे के—“ एतदिह
भावयज्ञः ” आ जिनमंदिर वंधावधुं ते अहीं भावयज्ञ-
भावपूजा कही हे. यद्यपि जिनमंदिर ए द्रव्यपूजानांतर्गत हे
तो पण अहीं यज् धातु परथी यज्ञ शब्द वन्यो हे एटले यज् धातु
देवपूजा अर्थनो वाचक हे; अने द्रव्यस्तव पण शास्त्रदर्शित

विधि, शुद्धि तथा जिनज्ञापालनपूर्वक करवार्थी ते भावपूजा-गर्भित कहेवाय छे. आर्थी ज अहीं द्रव्यपूजारूप जिनमंदिरने शास्त्ररूपाए मावयज्ञ-भावपूजामां गण्यु. जिनान ए के-जिनमंदिर माववृद्धिनुं साधन होवार्थी अने भावपूजालुं अंग होवार्थी कार्यमां कारणानो आरोप करी तेने भावपूजा पानवामां काई विशेष देखातो नथी. गृहस्थने आ कार्यनो अधिकार होवार्थी गृहस्थ पाटे पोतानी जीदर्गीलुं मुख्य फल-परमफल शास्त्रकारो जिनमंदिर बंधावृत्तं ते जगावे छे; कारण के आ जन्मोपार्जित घननो आवा मार्गेमां व्यय करवा सिवाय वीजुं काई पण सार-भूत साधन नथी. एटलुं नहीं परंतु गृहस्थ आ कार्य करवार्थी, तुच्छ घननो आ मार्गेमां व्यय करवार्थी अभ्युदय एटले कल्याण तेनी परंपरा पामे छे अथवा अभ्युदय एटले स्वर्गनी वितुल संपत्ति जन्मांतरमां प्राप्त करे छे ने छेवटे निश्चययी मोक्ष पण पामे छे. आर्थी आ जिनमंदिररूप कार्यने अपवर्गलुं वीजभूत गण्यु. वीज वाव्या पछी तेना हजारो फलो अने घास अपे छे. तेम आ मंदिर बंधाववाहूप कार्य पण परिणामे ऐहलौकिक राज्यादि पारलौकिक स्वर्गसंपत्ति अपी मोक्ष-दाता बने छे; माटे तेने वीज तुल्य शास्त्ररूपाए मान्युं.

आ प्रमाणे “ जिनभवन ” नी शुद्धिरूप विधि अहीं विस्तारथी दर्शावी. हवे आ संबंधमां विशेष वक्तव्य शास्त्र-कर्ता जगावे छे.

देयं तु न साधुभ्यस्तिष्ठांति,
यथा च ते तथा कार्यम् ॥
अन्धयनीव्या होवं,
ज्ञेयमिदं वंशतरकांडम् ॥ ६—१५ ॥

मूलार्थ—आ रीते मंदिर वंधावी साधुओने अपर्ण
न करबुं किन्तु साधुओ उपदेशादि माटे त्यां रहे तेवी व्यव-
स्था बहारना भागमां करवी, कारण के ए प्रमाणे करवाथी
अनेक लोको त्यां आवे एटले आ जिनमंदिर पुण्यप्रवाह माटे.
अन्धयनीवि बने, तथा संसारसमुद्रथी संपूर्ण सपाजना
वंशानां उद्धार करनार प्रवहण समान थाय.

“ स्पष्टीकरण ”

आ रीते विधिशुद्ध मंदिर गृहस्थे वंधावी तेनुं रक्षण
विग्रे पोते ज करबुं अथवा मंदिरनी योग्य व्यवस्था सारुं
अमुक रकम आवकलुं साधन निकाली अमुक धर्मी गृहस्थोने
तेनी सारसंभाल माटे सोंपबुं एटले श्रीसंघने सुप्रत करबुं;
परंतु साधुओने—मुनियोने सोंपबुं नहीं एटले मंदिरनो वहीबट
मुनिओने तावे करवो नहीं. अहीं ग्रंथकार हारिभद्रसूरिजी
‘ मुनियोने सोंपबुं नहीं ’ जे आ प्रमाणे उपदेश करे छे तेमां
खास हेतु क्षे. हेतु ए के—ते काळे चैत्यवासीओए एवो उपदेश
शरु कर्यो हतो के गृहस्थे मंदिर वंधावी साधुओने तावे करबुं,

कारण के गृहस्थी जंजाली अने उपाधिवाला होय एटले तेऽथोर्थी बरावर संभाळ थाय नहीं, आशातनाओ ठळे नहीं, साधुओ तेनुं उचित रक्षण करे, आशातनाओ दूर करे, त्यां निवास करे, मंदिरे आवनारने उपदेश आपे, जेथी धर्मनुं पण योग्य रक्षण थाय. आ उपदेशयी गृहस्थो मंदिर वंधावी चैत्य-वासी मुनियोने सोंपता हता. चैत्यवासीओ त्यां ज रहेता हता. मंदिरना मालिक बनी मंदिरना धननुं भक्षण करता हता. परिणामे तेऽथो अने गृहस्थो धर्मब्रष्ट थइ पतित थतां. आ चैत्य-वासीओ हरिभद्रसूरिजीना समयमां बहु जोरमां वध्या न हता तो पण तेऽथोनो प्रचार थवा लाघ्यो हतो. तेऽथोना उपदेशनी असर केटलाक लोको पर थती हती. आ वात संबोधप्रकरण ग्रंथ परथी जोड़ शकाय छे, परंतु आ चैत्यवासीओनुं जोर त्यारपछी घणुं ज वधी गयुं. जे पछी बुद्धिसागरसूरि अने जिनेश्वरसूरिए चैत्यवासीओना वलने अटकाव्युं यावत् जिनवल्लभगणिए पण तोडवानो प्रखर प्रयत्न कर्यो. चैत्यवासीओनी तत्संवर्धी मान्यतानुं स्वरूप संघपट्टकमां जिन-वल्लभगणिजीए घणा विस्तारथी कह्युं छे.

अतएव आचार्य कहे छे के मंदिरना जीणोंद्वार, व्यवस्था, रक्षण आदि कार्यो गृहस्थे करवा पण मुनिए करवा नहीं. जो के शास्त्रमां मंदिरना सर्व कार्यो यावत् धनरक्षण, संवर्द्धन, ग्रामक्षेत्र आदि वहीवट करवानुं मुनिने आज्ञा आपी छे, परंतु आज्ञा अपवाद मार्गांश्रित होवाथी ज्यारे गृहस्थो धर्मविमुख

बन्या होय, आपसना क्लेशने लीधे मंदिरनी एकांत उपेक्षा करता होय, अनेकधा विविध उपदेश आपवा छतां मानता जन हौय, आसपासनो कोइ धर्मी सारसंभाल के आशातना दूर करतो न होय, सर्वथा मंदिर, प्रतिमा, तेजुं घन विनाश पापतुं होय, आशातना घणी ज थती होय, कोइ सेवक पण न मलतो होय, तो ज आचारनिष्ठ गीतार्थ परम श्रद्धालु मुनि महात्मा आ कार्य करी शके तेऽनोना माटे ज आ अधिकार हें, कारण के आवा मुनियो ज्यां सुधी उचित वहीवट करनार न पळे त्यां सुधी उपरोक्त कार्य अलिस मनथी वधुं करी शके अने उचित वहीवटकर्ता प्राप्त यथे तुरत ज तेने स्वाधीन करे. आथी ज आचार्ये मुनियोनो निषेध करी गृहस्थने वहीवट करवानो उपदेश आप्यो.

तथापि ते मुनियो आवीने धर्मोपदेश माटे त्यां निवास करे, बालु, बृद्ध, ग्लान मुनियो त्यां स्थिति करे, आथी गृहस्थे मंदिरनी वहार एटले नजीकमां आशाकर्म दोप विनार्नु एक स्थान अवश्य तैयार करवुं जेथी मुनियो त्यां स्थिति करी धर्मोपदेशादि करी शके. अहीं उपाध्यायजी टीकामां ‘वहिर्भूपादौ’ ए पदथी मंदिरनी वहार मंडपमां व्याख्या-नादि माटे स्थान करवानुं जगावे हें. आनुं कारण एक ज के मंदिरे दर्शन-पूजन माटे जे लोको आवे तै लोको दर्शन-पूजन करी तुरतज व्याख्यान अने मुनिदर्शननो लाभ पापी शके. आवा व्याख्यान स्थानो मेवाड, मालवा के मारवाडना जुना

मंदिरोमां घणे स्थळे देखवामां आवे छे. वीजुं कारण ए पण जणाय छे के ते समये बादशाही जुलमो थता हता, एटले धर्मव्यवहारो वहु ज गुप्तणे रखाता हता. मुसलमानी अत्याचारोना लीधे ढीओ पढापां ज रहेती हती अने वधारे वरत इतर इतर स्थानोमां जड शकती नहीं, एटले मंदिरो अने व्याख्यान स्थळो साथे साथे राखी तेने घणा ज गुप्त स्थळमां राखवानो प्रचार हशे. आ स्थितिलुं भान अत्यारे पण आपणे पूर्वना मंदिरो देखी अनुमान करी शकीए छीए. गमे तेप हो, परन्तु मंदिरनी साथमां ज व्याख्यान के मुनि-निवासना स्थानो करवाथी वर्तमानमां तो आशातना अने अन्य अनर्थलुं कारण थाय छे, तेपज आचार्यनो कांइ एवो मत नथी के मंदिरथी अलग दूर व्याख्यान अगर मुनि-निवासलुं स्थान न करवुं. ए तो गृहस्थनी सरलतानो विषय छे. तेपज ते काळे मुनियो कदाचित् ज शहेरमां आवता हता अने आवी दर्शन व्याख्यानादि करी चाल्या जता हता. कोइ वाल, ग्लान के वृद्ध मुनियो पण कारणवशात् अमुक समय रहेता एटले तेओ माटे ते स्थान व्याघात करनार न गणाय, तथा मूलकर्ता भगवान् हरिभद्रसूरिजी तो एटलुं ज कहे छे के—‘तिष्ठन्ति यथा च ते तथा कार्य’ मुनियो आवीने स्थिति करे तेप मंदिर वंथावबुं अर्थात् आशातना न लागे, वीजा दोषो उद्भवे नहीं ते अवश्य ध्यानमां राखवुं. साधु योग्य स्थान करवालुं वीजुं कारण ए छे के जो तेबुं स्थान न होय तो मुनियो आवे नहीं अने तेप वनवाथी धर्मोपदेश मळे

नर्हीं ने अंते स्वकुद्धुव, स्वजाति धर्महीन थाय, एटलुं ज नर्हीं पण श्रावके ज्यां जिनमंदिर होय, ज्यां मुनियोनुं आवागमन होय, ज्यां अन्य समानधर्मीनो संयोग होय त्यां ज निवास करवो, ए ज बात शास्त्रकार दर्शावे छे. “ निवेसज्ज तत्थ सख्दो साहृणं जत्थ होइ संपाओ। चेह्यघराइ जंभिय तथन्न साहमिमया चेव ” ॥ १ ॥ फरी आ जिनमंदिर श्रावके ए प्रमाणे कर्हुं के अक्षयनीवि वने अर्थात् मंदिर सर्वनं आधारभूत होवाथी दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि गुणनी वृद्धिकारक होवाथी, जेम नीवि एटले मूलधन तेनुं रक्षण करवाथी, ज्याजे फेरववाथी ते कायम अक्षय रहे छे तेम मंदिरनुं रक्षण करवाथी, उचित देखरेख राखवाथी ते पण अक्षयनीवि जेबुं थाय, एटले उत्तरोत्तर लाभनुं ज कारण थाय. आ प्रमाणे करवाथी परंपराए जीणोद्धारादि कार्यों कराववाथी वनावनारने अने अन्यने उपकारभूत थह आखा कुदुंवने तरवानुं साधन वने छे. परमार्थ ए के—जिनमंदिर वंधाव्या पछी, तेनुं रक्षण कर्या पछी, भविष्यमां थनारी पोतानी प्रजा अने कुदुंवीओने धर्मप्राप्तिनुं स्थान वने छे, तेमज आ मंदिर अमारा पूर्वजोए वंधाव्युं छे माटे आनो जीणोद्धार, रक्षण अने प्रबंध अमारे करवो जोइए ए प्रपाणे पक्षपात वंधाइ धर्ममां जोडाय छे. एटले जेम प्रवद्धण स्व अने परने तारे छे तेम आ जिनमंदिर पण अनेक भावि पुरुषोने तारनार वने छे. अर्हीं उपाध्यायजी वधारे खुलासो करे छे. स्ववंशजकृत मंदिरद्वारा धर्मप्राप्ति यवाथी ते मंदिर

पर विशेष भक्ति जो के भावि प्रजाने थाय छे तो पण अन्य मंदिर पर भक्ति होय तो मिथ्यात्वपणानी प्राप्ति थाय नहीं। एटले के अन्य संघकुतादि मंदिर पर पण अनुराग अवश्य उत्पन्न थवो जोइए; अन्यथा मिथ्यात्वनो दोष लागे।

आ सर्व विधिनो उपदेश कर्या पछी वादी शंका करे छे के आ वस्तु जे कही आव्या ते ठीक, पण मंदिर बांधवामां पृथ्वी आदि छकाय जीवनो अवश्य नाश थाय छे, ते विना जिनमंदिर वनवृं अशक्य छे; माटे कार्यमां तो तपारे खास करीने हिंसा मानवी ज पडशे। आप मान्या पछी शुं हिंसावाला कार्यथी धर्म बने खरो? आ प्रश्ननुं समाधान आचार्य अहीं आ प्रमाणे कहे छे:—

यतनातो न च हिंसा,
यस्मादेषैव तन्निवृत्तिफला ॥
तदधिकनिवृत्तिभावाद्—
विहितमतोऽदुष्टमेतदिति ॥ ६—१६ ॥

मूलार्थ—प्रयत्नपूर्वक उपयोगपूर्वक मंदिर बांधवाथी आ भावहिंसा लागती नथी। आ हिंसा पण निवृत्तिफल—हिंसा-रूप निवृत्ति फलवाली कही छे, कारण के अधिक अन्य आरंभान्तमां जे हिंसा थाय ते हिंसा मंदिर बांधवामां थती नथी अने अन्य हिंसानो रोध थाय छे तथा शास्त्रमां मंदिर

(३३०)

बांधवानी श्राव्या आपी छे आथी जिनमंदिर बंधावबुं ते
अनुचित नथी.

“ स्पष्टीकरण ”

जिनमंदिर बांधवामां जो के उपलक हृष्टिए आपणे हिंसा
नजरे देखाय छे खरी, पण आ हिंसाने शास्त्रकर्ता हिंसा
स्वीकारता नथी, कारण हिंसा द्रव्य अने भाव एम बे प्रकारे
कही छे. जेमां क्रियाकारक पुरुषना कारणथी आत्माओना
प्राणोनो नाश थाय पण ते पुरुषनो अनुपयोग—बेदरकारी न
होय तेथी ते द्रव्यहिंसा, अने जेमां प्राणो नाश न थाय तो
पण अनुपयोग प्रवृत्ति होय तेथी ते भावहिंसा; अथवा स्वरूप,
हेतु, अनुबंध एम त्रण प्रकारे हिंसा शास्त्रोमां कही छे. जे
प्रवृत्ति मात्रथी जीवोनो नाश थाय पण प्रवृत्ति करनार बेदर-
कारी—अनुपयोग अने शास्त्राज्ञानिरपेक्ष न होय तो ते
स्वरूपहिंसा. जेमके मुनि मार्गे विहार करतां नदी उतरे. अहीं
बेदरकारविहीन अने शास्त्राज्ञासापेक्ष जलीय जीवोनो नाश
थवा छतां मुनिने आ हिंसा लागती नथी. मन, वचन अने
कायाना ग्रमत्व व्यापारोथी जीवोनो नाश थाय तो ते हेतुहिंसा,
तथा जेमां हिंसाना परिणामो साथे दृष्ट प्रवृत्ति होय ते अनु-
बंधहिंसा शास्त्रो दर्शवे छे. हवे जिनमंदिर बांधनार शास्त्राज्ञा-
सापेक्ष अने खास यतनापूर्वक मंदिर बंधावे जेथी मंदिर
बांधवामां जो के हिंसा थाय छे तदपि ते भावहिंसा नथी. हेतु

ए के—आ हिंसायां भावहिंसातुं लक्षण सुघटित थतुं नथी। आथी ज हिंसाने हिंमा शास्त्रोप नथी मानी, एटले अर्ही आचार्य कहे छे के—‘यतनातो न च हिंसा’ प्रयत्न एकान्त उपयोगपूर्वक वर्तन करवाथी हिंसाजन्य दोष उद्भवतो नथी, ए ज वात शास्त्र दशावि छे. “रागदोसविडत्तो जोगो असदस्स होइ जयणाओ” “अशठ-अमलीन परिणामी अने शास्त्राज्ञाथी यतनापूर्वक वर्तनार मनुष्योनो व्यापार-वर्तन रागदेवविहीन ज होय.” अर्ही उपयोगथी अने शास्त्राज्ञाथी अशठ प्रवृत्ति करनारने भावहिंसाजन्य दोष न लागे ए शास्त्रकारनो कथिताशय छे. खरी रीते शास्त्रकारो भावहिंसा वर्जनानो एकान्त उपदेश करे छे, व्यारे मंदिर बंधावनार आ हिंसा त्यजी कार्य करे छे एटले तेमां हिंसादोषनो सद्भाव केम भनाय ? निदान ए के—सर्वथा यतनापूर्वक कार्य करवुं, ए ज वात पंचाशकमां दर्शावी छे. “जयणा य पथत्तेणं कायच्चा एत्थ सच्चजोगेत्तु । जयणा उ धम्मसारो जं भणिया वीयरागेहिं” ॥ १ ॥ “जिन-मंदिर विधानपां मंदिर उपयोगी दरेक पदाथों जीवरक्षा करवापूर्वक अने शुद्धिपूर्वक लाववा, कारण के जैनशासनपां सर्व व्यापारो प्रयत्नथी यतनापूर्वक करवातुं कहुं छे; केम के धर्मनो मुख्य सार वीतरागदेवे खास यतना-सोपयोगव्यापार कहो छे.” परमार्थ ए के—सोपयोग वर्तनार आत्मा सम्बन्धत्व, ज्ञान, चारित्र ने श्रद्धा, वोध अने आसेवनथी आराधी

शके छे. अहीं मंदिर वांधवामां यतना पाल्गानुं स्वरूप पंचाशक टीकामां आ प्रमाणे कहुं छे. परिणत—एटले बराबर छाणीने. कोइक आचार्य अहीं परिणतनो अर्थ अचित्त जल लेबुं तेम करे छे तथा जेमां किढी, कुँथु आदि त्रस जीवो न होय तेवा बराबर स्वदृष्टिए तपासेल काष्ठ, इंट, चूनो, पत्थर विरे पदार्थो लेवा तेमज अन्य कृषि आदि आरंभो बाजु करी भाविक घृहस्थे स्वयं पोतानी देखरेखथी स्वहस्तथी कार्य करबुं; परंतु कारीगरोने भरोसे कराबबुं नहीं. आ प्रमाणे यतनाथी मंदिर बंधावबुं. आर्थी आ कार्य भावहिंसा वगरनुं कही शकाय. “ सा हह परिणथजलदलविशुद्धरूपा उ होइ णायव्वा । अण्णारंभणिवित्तीए अप्पणाहि-डुण चेवं ” ॥ १ ॥ अतएव शाक्खकारो आ यतनाने जो के प्रवृत्तिरूप छे तो पण अन्य दुष्ट प्रवृत्ति बंध करनार होवाथी निवृत्तिरूप कहे छे, कारण के आ यतनाद्वारा ए जिनभवनरूप अल्प दोषमय कार्यनो आदर अने वहुदोषयुक्त अन्य आरंभोनो त्याग थाय छे. आ रीते विचारवाथी अने पंचाशकमां यतनानुं जे स्वरूप कहुं छे ते प्रमाणे वर्तवाथी भावहिंसारूप दोष मंदिर वांधवामां न आवे ए वास्तविक सत्य छे.

अहीं सुधी तो भावहिंसा न लागे ए विचार्यु, पण द्रव्यहिंसा अथवा स्वरूपहिंसा तो मंदिर वांधवामां जहर लागे, ए प्रश्नना उत्तरमां शाक्खकार जणावे छे के—जो के द्रव्यहिंसा थाय तो पण अहीं जे यतना दर्शावी तथापकारे वर्तवाथी तै

हिंसा निवृत्तिना फलने थर्थे छे. आनो परमार्थ ए छे के-जिनमंदिर वांधतां ते वांधनार भाविक गृहस्थ अन्य वहु आरंभमय कायोंनो त्याग करे छे एट्ले आ जिनमंदिर वांधवा-रूप द्रव्यहिंसा प्रवृत्तिथी वहु आरंभमय कायों छूटी जाय छे; माटे “यस्मादेषैव तत्त्विवृत्तिफला” जे माटे आ यतना ज हिंसानिवृत्तिफलजनिका वने छे. शास्त्रोमां पण कहुं छे. “ जा जयमाणस्स भवे विराहणा सुत्तविहित्समग्ग-स्स । सा होइ णिज्जरफला अज्ञाप्पविसोहिजुत्त-स्स ” ॥ १ ॥ सूत्रदर्शित विधिए करी पूर्ण अने आत्म-निर्मलतायुक्त पुरुष यनना—उपयोग सहित प्रवृत्ति आदरता जो विराघना—हिंसा करे तो ते हिंसा पण ते आत्माने कर्मनिर्जरा फल आपनार थाय, माटे आ द्रव्यहिंसा निवृत्तिफलजनिका कही. आ परथी जेचो जिनमंदिर वांधवामां पृथ्व्यादि जीवोनो वध धवाथी ते आरंभयुक्त गणाय माटे ते कार्यमां धर्म केम संभवे ? आवो जे प्रश्न करे छे तेनो योग्य खुलासो उपरना लेखथी सुष्ठुरीत्या स्पष्ट थइ जाय छे. आठ्लो स्पष्ट खुलासो कर्या पछी फरी शास्त्रकर्ता—‘ विहितमतोऽ-दुष्टमेतदिति ’ ए पदथी आ वात वधारे स्पष्ट करे छे. एक तो पूर्वे कही आव्या तेथी जिनमंदिर वांधवामां कांइ प्रत्यवाय नथी, वीजुं शास्त्रमां जिनमंदिर वंधाववानी खास आज्ञा आपी छे, जिनेवरोए जिनमंदिर वंधाववानो निर्मल उपदेश आप्यो छे; माटे पण आ जिनमंदिर वंधावबुं सर्वथा

अदुष्ट छे. निदान ए के-जे विधान सर्वज्ञशास्त्रविहित होय ते जहर अदुष्ट ज होय, ए ज बातनी पुष्टि उपदेशरूपे पांच सो ग्रंथकर्ता अने पूर्वधर श्रीमान् उमास्वाती महाराज पोताना ग्रंथमां कहे छे: “ यस्तृणभयीभपि कुट्टी कुर्याद् द्यात्-थैक पुष्टपमपि । भक्त्या परमगुरुभ्यः पुण्योन्मानं कुतस्तस्य ॥ १ ॥ जिनभवनं जिनविंचं जिनपूजा जिनभतं च यः कुर्यात् । तस्य नरामरशिवसुखानि करपल्लवस्थानि ” ॥ २ ॥ “ जे कोइ मनुष्य भक्ति अने श्रद्धाथी वीतरागदेवने एक घासनी हुंपडी तथा एक ज पुष्प भेट करे तो पण तेना पुण्यनुं प्रमाण थइ शके नहीं एटलुं पुण्य बंधाय छे, तेम ज जे मनुष्य भक्ति अने श्रद्धावडे एक जिनमंदिर बंधावे, एक जिनप्रतिमा भरावे, जिनपूजा करे अथवा जिनभत आराधे तो ते मनुष्य मनुष्य, देवता अने मोक्षना सुखोने हस्तगत करे छे. ” ए रीते शास्त्रविहित होवाथी जिनमंदिर क्रिया निर्दूषण आचार्य भगवान् दर्शने छे, एटले जिनमंदिर बंधावामां द्रव्य अथवा भावहिंसा ऐकी कोइ पण हिंसा लागती नथी, किन्तु हिंसानिवृत्तिरूपी फल अर्पण करी एकान्त कर्मनिर्बरकारक वनी उत्तरोत्तर पुण्यानुबंधी पुण्यनो बंध करावनार ज थाय छे. आयी जेओ जिनमंदिर बांधवामां जिवहिंसा लागे छे एवो जे उप-देश करे छे तेओ एकान्त व्यामोहित अथवा शास्त्ररहस्यना अज्ञात छे एम समजबुं जोइए.

(७) जिनविम्बषोडशकम्.

गत पोडशक प्रकरणमां विधिशुद्ध शास्त्रविहित यतना-पूर्वक जिनमंदिर वांधवानो विधि दर्शाव्यो, परंतु आ जिनमंदिर जिनप्रतिमा कार इष्टदायी न थाय माटे जिनप्रतिमानी पण तेटली ज आवश्यकता होवायी अर्ही शास्त्रकार आ सातपा प्रकरणां प्रतिमानो अधिकार अने तेनुं विधिशुद्ध शास्त्रोक्त विधान दर्शावि छे.

जिनभवने तद्विम्बं,
कारयितव्यं द्वुतं लु बुद्धिमता ॥
साधिष्ठानं ह्वेवं
तद्वभवनं बृद्धिमत् भवति ॥ ७-१ ॥

मूलार्थ—ए प्रमाणे विद्धिशुद्ध जिनभवन विषे बुद्धि-माने शीघ्र जिनविष करावबुं-भरावबुं, कारण के ते प्रमाणे करवायी जिनभवन सार्विष्ट थाय, एम यवायी ज आ जिनमंदिर निश्चययी दृद्धिकारक थाय छे.

“ प्रतिमा भरावे कोण ? ”

स्पष्टीकरण—जिनभवन माटे शास्त्रकर्त्ताए जेम विधान दर्शाव्युं तेम त्यां वीराजवा योग्य जिनप्रतिमानुं पण विधान दर्शाव्युं छे, अर्थात् विद्धिशुद्ध निर्दोष जिनाङ्गा प्रमाणे अशठभावर्थी कारीगरो पासे जिनप्रतिमा करावबी. त्यां प्रतिमा करावनार

(३३६)

प्रथम आचार्य समीपे जिनेश्वरोना गुणो श्रवण करी शुद्ध द्वुष्टि प्राप्त करी मनुष्यनुं मुख्य कर्म अने जन्मनुं प्रधान फल आ सिवाय अन्य नथी एवा भावना धारण करे, तेम ज आ भूमंडलमां अनन्तगुणराशी जिनेश्वरदेव हे तेथी तेमना विवलुं दर्शन पण सुखदात् याय हे अने आ विव करावना-रत्नुं परम आत्मकल्याण याय हे, माटे मोक्षपथना स्वामी अने मोक्षदर्शक जिनेश्वरोना गुणोनुं वहुमान. आदरसत्कार, श्रीतिपूजा विग्रे कार्यो करवा. मोक्षार्थी-मोक्ष माटे प्रयत्न करनार कुशल आत्माए अवश्य प्रयत्न करवो उचित हे. निदान ए के-जिनेश्वरोनुं वहुमान पूजा आदि करवायी भवि आत्माना हृदयकी निर्मलता याय, तथा शुद्ध भावनावडे अवश्य शुभ पुण्योनी परंपरा वधे हे ने अन्तमां आत्मा सिद्धिपदने पामे हे. आ विचारो, आ भावना प्रतिमा करावनार अथवा भरावनारना हृदयमां अभूतपूर्वपणे रमी रही होय एटले ते आत्मा अवश्य पोतानी निर्मलता साधी शके. वळी प्रतिमा वनावनारे कारीगरनो सुअक्षसरे समुचित सत्कार करी पोतानी शक्ति अनुसार संपत्ति आपवी, आम न वनी शके तो प्रथमथी तेनुं मूल्य ठरावी पाढ्लथी ठराव्या करतां अधिक पैसो आपी कारीगरोने सुझ करवा जेथी प्रतिमा आनंद, उत्साह अने आत्मनिर्मलताकारक जरर वने.

“ प्रतिष्ठा क्यारे करावे ? ”

ए रीते निपज्जावेल अगर अन्य स्थानथी आवेल जिन-

बिंबनी योग्य मुहूर्तमां शास्त्रदर्शित विधिथी आडंवरपूर्वक उपरोक्त जिनमंदिरमां बुद्धिमान् नरे जरुर प्रतिष्ठा करवी, स्थापन करवुं. अर्ही ग्रंथकर्ता मूलमां 'बुद्धिमता' ए पदथी बुद्धिमाने एटले जे शास्त्रदर्शित प्रतिष्ठाविधिकुशल अने आचार तथा धर्ममां पूर्ण श्रद्धालु तथा कुशल होय तेवा ज मनुष्ये आ प्रतिष्ठा करवी अगर तेवा पुरुष पासे प्रतिष्ठा कराववी, ए आशय जणाव्यो छे. तेमज मूलमां-'द्वृतं तु' ए पद छे एटले मन्दिर निष्पन्न याय के तुरत ज प्रतिष्ठा करवी, किन्तु विलंब न करवो. हेतु ए के-शिल्पशास्त्रमां मंदिर तैयार यथा पद्धी अगुक मुहूर्तमां प्रतिष्ठा करवालुं अने तदुपरांत मुहूर्त यवाथी दोषप्राप्ति कही छे; एटलुं ज नहीं परंतु मंदिर खाली रहेवाथी तेमां कोइ दृष्ट देवनो वास यह जाय छे अने तेथी मंदिर करावनार अथवा संघने कड़क प्रकारना उकडानो उभा याय छे, माटे मंदिर पूर्ण यवा साथे अथवा मूल गभारो तैयार यवा साथे तुरत ज मूर्त्तिनी स्थापना-प्रतिष्ठा करी देवी ए शास्त्राङ्गा छे.

ए प्रमाणे सशुद्ध जिनविव पधराववाथी ए जिनमंदिर पण सनायकत्व-साधिष्ठ ययुं कहेवाय, आतएव आ ज मंदिर संघलुं, प्रतिष्ठा करनारलुं, तेना कुदुंवियोनुं कल्याण करनार याय छे. अरे ! खास बृद्धिकारक वने छे.

(३८)

जिनप्रतिमा वनाववानी विधि शास्त्रकार दर्शावे छे,
जिनविंबकारणविधिः,
 काले पूजापुरस्तरं कर्तुः ॥
विभवोचितमूल्याऽर्पण—
 मनघस्य शुभेन भावेन ॥ ७-२ ॥

मूलार्थ—जिनविंब कराववानी विधि आ प्रमाणे छे.
 विंब करनाइनी सुअवसरे पूजा कर्वी, एटले तेनो योग्य
 सत्कार करी, निर्दोष शुद्ध मावथी पोतानी संपत्ति अनुसार
 महेनतना बदला तरीके मूल्य अर्पण करवुँ.

“ कारीगर केवो जोइए ? ”

स्पष्टीकरण—जिनविंब केवी रीते कारीगर पासे करावद्व
 तेसुं विधान अमे उपर दर्शावी गया ते ज विधान ग्रंथकर्ता अहाँ
 स्पष्ट करी जाणावे छे. ग्रंथकार कहे छे के—जिनविंब कराववानुं
 विधान आ प्रमाणे जाणवुँ. जे कारीगरे जिनविंब तैयार
 कर्यु होय तेनो भोजन, वस्त्र, पुष्प, पत्र आदिथी प्रथम सत्कार
 करत्वो अने पछी निर्दोष पवित्र आशयथी पोतानी संपत्ति
 प्रमाणे तेने घन अर्पण करवुँ. उत्तमोचम अमूल्य जिनविं-
 बना लाभ पासे काँइ अधिक धननी किमत नथी. अहाँ
 ‘ अनघस्य ’ ए पद आप्यु छे. आनो परमार्थ ए के-

(३९)

जिनविंच बनावनार मनुष्य जहर मदिरा आदिना व्यसन रहित होवो जोइए; कारण के व्यसनी मनुष्य पासे प्रतिमा कराववी शास्त्रकर्ता सर्वथा अनुचित बणावे छे.

केवा कारीगर पासे जिनविंच करावबुं ते स्पष्ट करे छे.

नार्पणमितरस्य तथा,

युक्त्या वक्तव्यमेव मूल्यमिति ॥

काले च दानमुचितं,

शुभभावैव विधिपूर्वम् ॥ ७-३ ॥

मूलार्थ—मर्दे आदि व्यसनवाळाने आ कार्य साँपबुं नहीं अने व्यसन रहित जनने पण युक्तिथी समजावी कहेबुं के—‘अमुक मूल्य आपीशुं.’ आ प्रमाणे कहा पछी समय परत्वे पवित्र भावथी तथा विधिपूर्वक तेऽनेउचित दान आपबुं.

“ स्पष्टीकरण ”

मदिरा, जुगार अने परस्ती व्यसनी मनुष्य पासे आ प्रतिमा कराववी नहीं अने तेने पैसों पण आपवो नहीं. हेतु ए के—व्यसनी माणस पासे ऐंबुं परम पवित्र अने एकान्त हितदायी कार्य कराववायी लोकोमां निंदा थाय. करनारने सद्भाव होय नहीं अन बराबर कार्य करे नहीं तेमज उचित

समये कार्य पूर्ण करे नहीं, वर्धी आपेला ऐसानो अविक दुरुपयोग थवाथी पापनो माग आवे, तथा व्यस्तन रहित अने व्यसनी आ बजेनो तुल्य सत्कार करवाथी अव्यसनी पण अनादरवान् थाय माटे अहीं व्यसनीने अनधिकारी शास्त्रकर्ताए गण्यो, अव्यसनी पासे कार्य कराववा पहेलां लौकिक न्यायथी खास भाव नकी करवो के 'अमुक भाव आपीशुं' जेथी भाविष्यमां विसंवाद वर्धी व्लेशनो प्रसंग उपस्थित न थाय, आम कर्या पद्धी प्रतिमा तैयार थया पद्धी ते कारीगरने पवित्र वृत्तिथी अने सत्कार, सन्मान, विनय साथे उचित-योग्य बत्तालंकार आदिनुं दान करवुं.

सव्यसनी माटे शास्त्रकर्ताए निषेध केम दर्शाव्यो ।
तेनुं कारण अहीं ग्रंथकर्ता पोते ज करे छे.

चित्तविनाशो नैवं,

प्रायः संजायते द्वयोरपि हि ॥

आस्मिन् व्यतिकर,

एष प्रतिषिद्धो धर्मतत्त्वज्ञैः ॥ ७-४ ॥

मूलार्थ—आ प्रकारे वर्तवाथी मंदिर बंधावनार अने बांधनार बजेना चित्तमां खेद के छेश बहुधा निश्चयथी उत्पन्न थतो नथी, कारण के कल्याणकारी आवा धर्मका-र्योमां धर्मतत्त्वज्ञोए चित्तविनाशनो सर्वथा निषेध कयों छे

(३४१)

अर्थात् क्लेश उदूभववाथी धर्मनो नाश थाय छे.

“ प्रतिष्ठाकारकनुं वर्तन ”

स्पष्टीकरण-चित्तनी शान्ति अथवा प्रसन्नता माटे मंदिर बंधावीए छतां जो आदिमांज मनने ग्लानि थाय तो पछी मंदिर बंधाववानुं फल शुं ? माटे मंदिर बांधनार अने बंधावनारे जेम शान्ति सचवाय, क्लेश न उदूभवे तेम वर्तबुं बधारे उचित गणाय. आ माटे ज भगवान् हरिभद्रसूरिजी जगावे छे के ‘ चित्तविनाशो नैवं ’ जे प्रमाणे मंदिर बंधाववानी विधि तथा शुद्धि विग्रहेनुं स्वरूप आगळ कही गया ते प्रमाणे, तथा कारीगर साथे बंधावनारे पहेलाथी ज स्पष्ट भाव नक्की करवा विग्रहे जे व्यवहार कही गया ते प्रमाणे वर्तवाथी कारीगर अने बंधावनारने परस्पर भविष्यमां लेचडदेचडमां बांधो पडतो नर्थी एटले बोलवा-चालवानुं तथा क्लेशनुं कारण कदापि उदूभवतुं नर्थी. उदूभवे नहीं कारण के शास्त्रकर्ता आ मंदिर बंधाववारूप कार्यमां अने उपलक्ष्याथी धर्मना कार्योमां आपसमां क्लेश, खेद, परिताप, विवाद के झघडो न थाय तेम वर्तबुं एवो खास उपदेश अपें छे. परमार्थ ए के-धर्मतत्त्वज्ञो आवा कार्योमां प्रथमर्थी ज ‘ चित्तविनाश ’ क्लेशादिनो निषेध करे छे. निदान ए के-जो धर्मकार्योमां क्लेश आदि उदूभवी चित्तनी अशान्ति थाय तो धर्मनो नाश थाय-धर्मप्राप्ति कदापि थाय नहीं.

उपर “ आवा मंदिर आदि कार्योमां क्लेशादि न थाय
तेम वर्तन करुं.” आ प्रसंग दर्शावी गया. ए ज प्रसंग
उपर फरी अहीं जणावे छे.

एष द्वयोरपि महान्,
विशिष्टकार्यप्रसाधकत्वेन ॥
संबंधं इह ज्ञुण्णं,
न मिथः सन्तः प्रशंसन्ति ॥ ७-५ ॥

मूलार्थ—पूर्वे कहेल चिच्चलन्य क्लेशाभावरूप संयोग
बांधनार अने बंधावनार बन्नेने विशिष्ट कार्यनो सिद्धिकारक
होवाथी महान् उत्तम संयोग कहेवाय; कारण के-मंदिर
बांधनार तथा बंधावनार बन्नेने आपसमां यदि क्लेशादि
उद्भवे तो सज्जनो कदापि पण प्रशंसा न करे.

“ स्पष्टीकरण ”

मंदिर अने जिनविवरूप कार्य प्रकरणमां कर्ता तथा
करावनार बन्नेना चिच्चनो भंग न थाय ए ज संयोग मलवो
प्रशंसनीय गण्यो छे. हेतु ए के-आवा सुंदर संयोग खरेखर
विशिष्ट अने उत्तम मंदिर तथा जिनविवरूप कार्यना फलने
अर्पी शके छे, तेमज यदि आवा कार्योमां मांहोमाहि कारी-
गर तथा ग्रेकडना चिच्चो नाराज थाय, क्लेशमय बने तो
सज्जनो आ कार्यनी प्रशंसा न करता केवल निंदा करे

अथवा वृणानी नजरे देखे छे; माटे अहीं ग्रंथकर्ता जणावे
छे के चिचमंग न थाय एवो संज्ञोग मळवो दुर्गम छे
तथा ते ज कार्यनो सिद्धिकारक थाय छे.

आटलो विस्तृत निर्देश कर्या पछी ग्रंथकर्ता ‘ जिन-
विंव ’ बनाववामां प्रथम भावनी खास आवश्यकता अने
ए ज प्रधान छे, एवो खुल्लो उल्लेख दर्शावे छे.

यावन्तः परितोषाः,

कारयितुस्तत्समुद्भवाः केचित् ॥

तद्विम्बकारणानीह,

तस्य तावन्ति तत्त्वेन ॥ ७-६ ॥

मूलार्थ—जे जे प्रकारना अने लेटता संतोष, प्रसन्नता
विशेष सद्गुणो करावनारने जिनविंवथी उत्पन्न थाय
तेमांथी केटलाक संतोष परिणामो ते ज करावनारने परमा-
र्थथी जिनविंव कराववामां कारणभूत बने.

“ प्रतिष्ठाकारके भाव केवो राखवो ? ”

स्पष्टीकरण—जैन शास्त्रोए सर्व अनुष्ठानोमां मुख्यतया
भाव-हृदयोद्घास एकान्त पवित्रतम फलदायी मान्यो छे, कारण
के “ जे जे ज्ञानमां आत्मा जेवा जेवा परिणामोने धारण करे
ते ते समयमां आत्मा शुभ अगर अशुभ कर्मनो वंघ करे
छे. ” आम उपदेशमालामां कहुँ छे. तेमज “ यस्मात्

क्रिया प्रतिफलनित न भावशून्या।" "कारण के पवित्र-
 तर क्रियाओं पण भाव विना फल आपती नथी" ए कथन
 कल्याणमंदिर स्तोत्रमां उपदेश्युं क्षे. अतएव अहीं मंदिर
 अने जिनप्रतिमा अधिकारमां विधि तथा शुद्धिनी मुख्यता
 अने कारीगर साथे उचित प्रशंसनीय, धर्मवृद्धि धारा तेवुं
 वर्तन राखवानुं कही गया; किन्तु आ सर्व साधनो छर्ता
 जो भाव-हृदयनी परमपवित्रता आत्मोद्घास न होय तो ते
 साधनो कार्यजनक बने नहीं. निदान ए के-सर्व साधनो
 साथे भाव पण मुख्य मान्यो क्षे. आथी अहीं पण शास्त्र-
 कर्ता दर्शवि क्षे के-जिनविव तथा जिनमंदिर बनावनारने
 जेटला प्रमाणमां हृदयोद्घास प्रेम अने पवित्रतामय होय,
 आत्मा उद्घासमय होय अने ते पण विव तथा मंदिर
 पासेथी प्राप्त थयुं होय अर्थात् तेनाथी उद्भव्युं-बन्युं होय,
 ते ज संतोष, प्रेम, पवित्रता आदि अनेक भावो पैकी अमुक
 भावो मंदिर तथा विव करावनारने कराववामां परमार्थथी
 साधनभूत बने क्षे. एटले मंदिरादिना प्रेमथी आविर्भूत
 पवित्र हृदयभावो भविक आत्माने मंदिर आदि कराववामां
 प्रेरणा करे क्षे. अतः; प्रथमतया भाविकनुं हृदय उपरोक्त
 भावोथी बराबर परिणत थयुं जोड्हए. भावोनी सुवासनाथी
 सुवासित थवा यद्युं ज तेना संस्कारबलथी भविक आत्मा
 विधि-शुद्धिनुं रक्षण करवापूर्वक कारीगरो. साथे योग्य
 वर्तन राखवा काळजी रखे ने मंदिर तथा विवरन्य सुष्ठु

कार्य अने तेनुं कारण मृतिका, आहीं ज्यारे मृतिका पर असूचि करवाथी, योग्य व्यवस्था अने ध्यान न राखवाथी घटरूप कार्यनो स्वरः विनाश थाय क्षे ए ज रीते मंदिर अने विंब ए कार्यों तथा कारीगरो, मजूरो, माल बनावनाराओ, माल लावनाराओ ए सर्व तेना कारणो उत्पन्न करनाराओ क्षे. आथी ज्यारे बंधावनार सामान्य अगर विशेष कारणोथी कारीगरा साथे पैसा आपवा माटे क्लेश करे अथवा कारीगर बंधावनार साथे क्लेश करे तो परस्पर अप्रीति—चैमनस्य प्रकटे अने परिणामे कारीगरो या करावनारनुं मन खिच थाय, एटले बने जणाओ आरम्भेल मंदिर अने जिनविंबरूप कार्यमां योग्य ध्यान राखे नहीं, मात्र वेठनी माफक यद्दातद्दा पूरुं करे—करावे आथी ते कार्यनो ज नाश थाय; माटे आचार्यदेव कहे क्षे के—“ अप्रीति० ” कारीगर साथे अप्रेम करवाथी परमार्थथी भगवान् साथे अप्रेम थाय एम जाणुं. निदान ए के—भगवदाज्ञा क्षे के कारीगरोने योग्य रीते संतोषी मंदिर अने जिनविंब बनाववा उद्युक्त थवुं, पण तेओनुं चित्त दुःखी थाय तेम वर्तवुं नहीं. आथी ज्यारे कारीगरो असंतुष्ट थाय तेम वर्तन चलावीए त्यारे भगवदा-ज्ञानुं ज ग्रथम अपमान कर्युं कहेवाय, अने भगवदाज्ञानो अनादर करवो ए ज भगवान पर अप्रेमनुं चिह्न दर्शाव्युं क्षे. भगवाननुं बहुमान, सत्कार करीए अने तेओनी आज्ञानो अनादर करीए ए कांह भगवाननुं बहुमान न

(३४७)

कहेवाय; ए तो प्रपंची भक्ति ज कहेवाय. आम निषेच कर-
वानुं खरुं कारण शास्त्रकर्ता उच्चरार्थी दर्शावे छे. “सर्वा-
पायनिमित्तं शेषा” आ अप्रीति ज सर्वं अपायो—अनथोनुं
मुख्य निमित्त छे अर्थात् जगतना सर्वं कार्योनो प्रलय करनार
प्रथम अप्रीति मानी छे, केमके व्यां अप्रीति थइ एटले
मन खिल थाय अने मन खिल थवाथी उत्साह, बल,
धैर्य, प्रमाद ए सर्वं बुटी जाय. आम थवाथी परिणामे
कार्योनो नाश थाय, माटे अहीं आ अप्रीतिने शास्त्रकर्त्ताए
पापिष्ठा अने सर्वं अपायोनुं मूल मानी कहुं के—हितार्थी
भविक आत्माए मंदिर अने जिनविंव करावता कारीगर
साथे कदाहि असंतोष बधे तेवी रीते वर्तबुं नहीं.

ज्यारे उपर दर्शाव्या प्रमाणे ‘कारीगर’ ने अप्रीति
थाय तेम न वर्तबुं एम कहुं, तो कारीगर पासेथी करा-
वनारे क्या प्रकारे काम लेबुं ? आ प्रश्नना उच्चरमां
करावनारे प्रथमथी कारीगरने संतोषी तेम ज सुष्ठु परि-
णामवान् करी तेना पासे जिनविंव करावबुं ए ज शास्त्र-
शैलीए उचित मान्युं छे. ए ज बातनी अहीं ग्रंथकर्ता
भाविकोने शिक्षा अर्पे छे.

अधिकगुणस्यैर्नियमात् ,
कारयितव्यं स्वदौर्हदैर्युक्तम् ॥

न्यायार्जितविचेन तु,

जिनविस्वं भावशुद्धेन ॥ ७-८ ॥

मूलार्थ—न्यायथी उपार्जित धनवडे तेमज अंतःकरणा पवित्र आशयवाळा गुणोए करीने अधिक एवा शिल्पिना मनोगत अनेक मनोरथोथी सहित एवा कारीगर पासे नियमथी भाविके आ जिनेश्वर मगवान्नुं विव करावनुं। “कारीगरने संतोषवान्नुं फल”

स्पष्टीकरण—कार्यना आरंभथी लह अन्त वर्धन्त कार्यमाँ गति करनारना शुभ विचारो, शुभ संकल्पो तथा परम उत्साह जेटला प्रमाणमाँ होय तेटला ज प्रमाणमाँ कार्यनी सुंदरता तथा सरलता अबलंबी रहे छे, अहीं जिनविस्वनी परम मनोहरता, चमत्कारिता अने परहृदयार्कपूणता आदि सद्-गुणो जिनविस्वमाँ लाववा माटे मुख्य आलंबन कारीगर उपर रहे छे. एटले जो के जिनेश्वर देव पोते ज अनन्त-गुणाधीश छे तो पण तेओनी मूर्चिमाँ तो आ गुणोनी आभा त्यारे ज उद्घासी आवे के ब्यारे कारीगरना हृदयमाँ ते गुणोनी छाया परम अनुराग अने जिनदेवनी मूर्चि परत्वेनी परम प्रसन्नता उद्घासायमान होय तो ज. अन्यथा एकनी एक ज मूर्चि ते कारीगरो बेडोळ, मनोहरता अने चमत्कारिताशूल्य तथा उत्साह-आनंदनो बात करनारी बनावी दे. निदान ए के-चित्र अथवा मूर्चिनी मनोहरतानो

मुख्य आधार कारीगरना हृदय पर ज रहे क्षे, अतएव परमोपकारी, परमकृपालु, अनन्तगुणाधीश जिनेश्वर मगवाननी मूर्चि जे कारीगर पासे कराववी ते पहेला तेने सन्मान, प्रेम, विनय, नम्रता अने धनथी संतोषबो; तथा धर्मनी रुचि अने वीतराग देवना उत्तमोचम गुणोनो समृच्छित ख्याल करावबो, तेना हृदयमां वीतरागना गुणो प्रतिविवित थाय तेम करवुं. आम कर्या पछी आ कारीगर जे जिनविव उपजावे ते एवुं तो चमत्कारी, मनोहर अने नितान्त आकर्षक बने के दृष्टाओ अनेकघा सुंदर भावोङ्गास पामी तन्मय बनी जाय. आ हेतुथी ग्रंथकर्ता उपदेशे क्षे के-जे जिनविव करवालुं होय तेनुं मूल कारण जिनेश्वर मगवाननुं मुख्य स्वरूप, तेना अनन्त गुणो तेमां ज बेनुं ध्यान, विचार होय अने कारीगरना हृदयगत मनोरथो पण ते कार्यमां परिणत थया होय, एटले आ जिनविवमां हास्यनी छटा, सुकोमलता, वालभाव जेवी मनोहरता, यौवनना जेवी परम निर्विकारी लावण्यता अने ध्याननी एकाग्रता आदि सद्गुणोनी छाया अने त्यागनी उत्कर्षता, संसार परनी निर्मोहिता विगेरे आवा आवा मनोरथो जे जिनविव करती बखते कारीगरना हृदयमां उद्भवी तेमां परिणत थता होय तेवा ज कारीगर पासे न्यायोपालित धनथी अने हृदयनी परम निर्मलताथी उपरोक्त जिनविव भाविकोए कराववुं एम शास्त्रकर्ता कहे क्षे. आ परथी

(३५०)

कारीगर सरल परिणामी, धर्मसुचि अने न्यायमार्गानुगामी
अवश्य होवो जोइए एम जिनविंव करावनारे खास
ज्ञान राखबुं.

शिल्पी—हृदयगत अनेक प्रकारना सुंदर मनोरथो युक्त
एवा शिल्पकार पासे आ जिनविंव करावबुं ए बात उपर
हर्षावी गया. हवे अहीं शिल्पी—हृदयगत अनेक मनोरथो
कथा अने केवा होय तेचुं वर्णन करतां ग्रंथकार कहे छे.

अन्नावस्थात्रयगामिनो,

बुधैदौहदाः समाख्याताः ॥

बालाध्याश्रैता यत्त-

त्कीडनकादि देयमिति ॥७-९॥

मूलार्थ—अहीं जिनविंव बनाववामां बुधजनोए
जिनविंवमां अवस्थात्रय आरोपवा माटे शिल्पीगत वाल,
युवा अने मध्यम ए नामक अवस्थात्रयगामी चित्त संबंधी
मनोरथो कारणभूत मान्या छे, एट्ले शिल्पकारोने त्रय
अवस्थोचित ले जे रमकडा विगेरे उपकरणो जोइए ते
तेनी प्रसन्नता माटे अवश्य अर्पण करवा.

“मूर्तिमां असुक भावो केन लाववा ? ”

स्पष्टीकरण—जिनप्रतिमा बनावनार वाल, युवा
अने मध्यम वयस्क ए त्रय पैकी कोइ पण होय अथवा

ए त्रण अवस्थोचित संस्कारवान् होय, एटले आ मतुष्य पोतानी अवस्थोचित पदार्थ प्राप्तिथी आनंद माने क्षे अगर अवस्थोचित पदार्थ ग्रहण करवा उत्सुक बने क्षे, तेमज तेना चित्तमां—हृदयमां वारंवार अवस्थोचित ख्यालो रम्या करे क्षे. आने ज शास्त्रकर्ता शिळ्पी—हृदयगत मनोरथ कहे क्षे. अतएव प्रतिमा इप्सु जने आ कारीगरोने खुश राखवा प्रतिमा बनावती बखते वालने रमकडा, युवकने खानपान अने मध्यमने बख, माल्य आदि जरुर 'देयं' अर्पण करवा, आ पदार्थो अर्पवानुं कारण एक तो शिळ्पीना चित्तनी प्रसन्नता प्रकटाववा अने वीजुं प्रतिमामां अवस्थात्रयना भाव आविर्भूत करवा—उपसाववा. परमार्थ ए के—प्रतिमा करती बखते कारीगरनो जेवो ख्याल होय अने पासे जेवा योग्य साधनो पछ्या होय तेवो भाव प्रतिमाना आकादमां यथाकर्थचित् उद्भवी शके—उतरी शके क्षे; परंतु आ पदार्थो कारीगरने अर्पी तेना विकारो पृष्ठ करवा एवो शास्त्रकर्तानो आशय नयी, किन्तु शिळ्पकारनी त्रण अवस्था, अवस्थोचित मनोरथो निहाळी ते परथी उद्भवेल मूर्चिमां आकारविशेषद्वारा अवस्थात्रयनी भावना प्रतिमामां आरोपवी अने आ भावना दृष्टाना हृदयमां आविर्भूत बने एतदर्थे शिळ्पकोने ते ते पदार्थो अर्पवा, ए ज ग्रंथकर्तानो मुख्य आशय क्षे. आ परथी सिद्धस्वरूप वीतरागदेवनी मूर्चि बनाववामां शिळ्पी—हृदयगत

मनोरथोनी पुष्टि शुं कामनी ? एवी वास्तविक शंका
उपस्थित थाय खरी, कारण के प्रतिमानी अंदर बाल,
यूवा, मध्यम ए अंवस्थात्रयजन्य भावो काँइ उपजाववा
नथी; तेमज ते भावो वीतराग स्वरूप मूर्तिमाँ आविर्भूत
करवा ए तो वीतरागभावनो ध्वंस करवा जेवुं गणाय, आ
शंका जो के सत्य छे अने ग्रंथकर्तानो ए आशय पण नथी
के शिल्पी—हृदयगत अवस्थोचित भावो प्रतिमामाँ पोषवा,
किन्तु शिल्पकारने प्रसन्न करी ते द्वारा प्रतिमामाँ हार्षितवदन,
लावण्यता, ध्यानावस्था, मनोहरता, आकर्षणता, पूर्ण-
यौवनत्व, सौकुमार्य आदि भावो प्रकटे—उपसे अने ते परथी
दृष्टाचो छवस्थ, केवलित्थ अने सिद्धत्व ए अवस्था-
त्रयनी भावना जरुर प्राप्त करी शके. आ हेतुथी कारीगरोने
अवस्थोचित पदार्थो अर्पण करी संतोषवानुं शास्त्रकर्ताए
कहुं. अधिक गुण—लाभ माटे आम करवामाँ काँइ दोप
कहेचाय नहीं.

“ अंतःकरणनी पवित्रतावडे कारीगर पासे प्रतिमा
करावकी ” ए वात कही गया तेनी पुष्टि माटे ग्रंथकार
फरीने अहीं विशेष उपदेश आपे छे.

यद्यस्य सत्कमनुचितामिह,
वित्ते तस्य तज्जामिह पुण्यम् ॥

(३५३)

भवतु शुभाशयकरणा—

दित्येतद् भावशुद्धं स्यात् ॥ ७-१० ॥

मूलार्थ—जिनविंव करावनार जे धनथी कारीगर पासे विंव करावे ते धनमां पोरे न जाणे तेवीरीते अनुचित धन आवी गयुं होय ते धन संवंधी पुण्य तेना मालिकने ग्राम थाव, आ प्रमाणे विचार करे. आ प्रमाणे विचारो कराथी भावशुद्धि कहेवाय.

“ केवा धनथी मूर्ति भरावदी ? ”

स्पष्टीकरण—न्यायोपार्जित धन इने पवित्र आशयथी जिनविंव करावबुं एम कहुं हतुं त्यां करावनारे जे धन एकत्र कर्युं होय अगर करे अने सर्व प्रकारे अन्यायप्राप्त धन न ज स्वीकारे तो पण अनुपयोग, प्रमाद, विस्मृति के विह्लता आदि कारणोथी अथवा मुनिम, नोकर आदिना विश्वासे रहेवाथी अनुचित-अन्यायी कांडक द्रव्य आवी जवानो संभव रहे खरो. हवे जे धनथी जिनविंव करावे तेसां ते धननो अष्टुक अंश होय, एटले करावनार “ शहो ! धव्य भाग्य हुं आजे आ चण्डैष्टनए धनथी जिनविंव करावी ते धनने सफल करुं हुं. मारुं आ धन आजे सफल ययुं. मारो बन्म कुतार्थ थयो.” आ प्रकारे जहर विचारो करे. आथी जे धन अनुचित-अन्यायी आव्युं तेनो वास्तविक

रीत्या ते पोते मालीक नथी अने न्यायवाह क्षे, तेनी मालिकीपणुं अने फल-प्रार्थना पोते करवी ए तो सर्वथा अयोग्य ज कहेवाय तेमज शास्त्रनिषिद्ध वर्तन गणाय; माटे विव करावनारे ए भावना भाववी के—“आ धनमां जे अन्यायी-अनुचित धननो अंश होय तत् धनजन्य शुभ फल जेनुं धन होय तेने ज हो अने मारा धनलुं शुभ फल मने मलो; परंतु परकीय धनलुं फल हुं हच्छतो नथी.” आवा विचारो करवापूर्वक कारीगरद्वारा मूर्ति कराववी. आ ग्रमाणे स्वहृदयमां भावना आविर्भूत करवी तेनुं नाम शास्त्र-कर्ता अहीं भावशुद्धि उपदेशे क्षे. आ परथी पोताने त्यां कोइनी थापण होय अने तेनो मालिक देहान्त थयो होय, कोइए शुभकार्यमां व्यय करवा पोताने त्यां राखेल होय, स्वकुदुंबमांथी आवेलुं होय, व्यापारमां धराक पासेथी धर्मना नामे अधिक लीषुं होय, एक बखत शुभखाते खरचवा अमुकनी पाळळ कहुं होय, निधानमांथी मन्युं होय—आवुं आवुं अनेक धन होय अने ते धनलुं पोते स्वामीत्वपणुं स्वीकारी तेनाथी जिनविव आदि पवित्र कायों करी तेना फलनी पोते हच्छा करे, मैं कर्युं एवुं माने, पोताने कुतकुत्य माने ए सर्व अनुचित अने न्यायवाह शास्त्रकार दर्शने क्षे. एटले जे धनमां अन्यायनो-अनुचितपणानो-परकीयत्वनो अंशमात्र न होय किन्तु केवल न्यायी, स्वस्वामीत्ववालुं होय तेवा धनथी ज

(३५५)

जिनविंव आदि धर्मकृत्यो करवा ए ज शास्त्रानुसारी अने
विशुद्धतर छे.

जिनविंवनी प्रतिष्ठाकरण विधि अमे कहीशुं एम
सातमा षोडशक प्रकरणांतर्गत द्वितीय श्लोकथी ग्रंथकर्ता
कही गया हता ते माटे अहाँ ते संबंधमां विशेष हङ्गीकृत
दर्शावे छे.

मन्त्रन्यासश्च तथा,

प्रणवनमःपूर्वकं च तत्त्वाम ॥

मन्त्रः परमो ज्ञेयो,

मननत्राणे ह्यतो नियमात् ॥ ७-११ ॥

सूलार्थ—कर्तव्यपणे अभिष्ट एवा जिनविंवमाँ ‘ॐ’
अने ‘नमः’ ए पदपूर्वक चोवीश जिनांतर्गत कोइ पण नाम-
रूप मन्त्र स्थापन करवो, कारण के ‘नम’ धातु मनन-त्राण-
रक्षण अर्थमाँ होवाथी उपरोक्त नामरूप अवश्य ज्ञानादिनुं
रक्षण करे छे; माटे अहाँ नाम-स्थापनरूप मंत्र ए ज
परम मंत्र जाणवो.

“ स्थापनाविधि-मन्त्रन्यास ”

स्पष्टीकरण—कारीगर पासे शास्त्रोक्त नियम प्रपाणे
सुंदर अने अभीष्ट जिनविंव निपजाच्या पछी आचारनिष्ठ

आचार्यमहिष्मारा शास्त्रदर्शित विविधी अंजनशस्त्राका
 ज्यां सुधीं न करवामां आवे त्यां सुधीं आ मनोहर पण
 जिनविंच पूजा, दर्शन अने आराधनीयपणे स्वीकार्य नथी
 एम शास्त्रो कहे छे. निदान ए के—अंजनशस्त्राका विनाना
 जिनविंच जो के जिनेश्वर देवनो आकार छे तो पण तेमां
 देवतवनो आरोप, मंत्रनी स्थापना अने चोबीश जिनेश्वरोना
 नाभ पैकी अमुक नामनी स्थापनाशूल्य होवाथी पूजा,
 दर्शन तथा आराधना करनार उत्तम भाविकना हृदयमां
 देवयणानी श्रद्धा, हृदयोल्लास, जिनगुण अवभास, शास्त्र-
 विशुद्धता, चमत्कारीत्व अने पूजा योग्य भावो आ
 जिनविंच उपजावी शकतुं नथी, एटले तत् विवलन्य लाभो
 अग्राप्य होवाथी अर्थशूल्य ज गणाय. अतएव आ प्रमाणे
 जिनविंच निपजावी तेमां मंत्रस्थापन अने अंजनशस्त्राकानी
 पवित्र विधि कर्तव्यतया अभीष्ट मानी छे, ए ज वारनी पुष्टि
 आचार्यथी आ श्लोकमा करे छे. कर्तव्यपणे अभीष्ट अने शुद्ध
 निष्पत्त जिनविंचमां शीघ्र मंत्रनो न्यास-आरोप करवो.
 अहीं मंत्रो अनेक प्रकारना छे, एटले क्या मंत्रनो आरोप
 इष्ट गणाय ? आलुं समाधान ग्रंथकर्ता स्वयं करे छे.
 ‘मंत्र’ शब्द ‘मन’ धातु परथी बन्यो छे, ‘मनि’ ज्ञाने.
 ‘मन’ धातुनो ज्ञान अर्थ, तथा ‘मन’ धातु त्राण-रक्षण
 ए अर्थमां छे. एटले ‘मननात् त्राणात् च मंत्रः’
 जेनाथी ज्ञाननो लाभ तथा रक्षण थाय ते मंत्र. परमार्थ ए के-

अर्हां जिनविषमां जे मंत्रनो आरोप करीए ते मंत्रथी “ आ जिनविव अमुक तीर्थकरनुं अने तीर्थकरना चमत्कारिक गुणोनुं जरुर मान करावनार, तेमज पापबुद्धियी, संसारभयोथी अवश्य बचावनार ” आदि गुणोनो अवश्य एकान्त लाभ थवो जोइए, अन्यथा ते मंत्र मुख्य फलविद्यायी न गणाय. आ हेतुथी शास्त्रकर्ता जगावे छे के—अर्हां मंत्रन्यास ते ‘ ॐ ’ तथा ‘ नमः पूर्वक अमुक नामस्थापनरूप ग्रथम करनो, जेमके “ ॐ नमः ऋषभाय ” आ प्रमाणे नाम-स्थापन करुं. आ प्रमाणे स्थापन कर्या पछी पूजक भवि आत्माने अमुक तीर्थकरनी आ मूर्ति छे, आ मूर्ति विधि-सह अंजनशलाकाकृत छे, शास्त्रीय विधिमय छे—आवा रूपालो उपजावी तीर्थकरपणाना अनेक उदात्त गुणोनो भास करावी दर्शन-पूजन आदि कार्योमां उज्ज्वासकारक अने पवित्र भाववर्द्धक अवश्यमेव थाय छे. अतएव उपरोक्त मंत्र सान्वयी सगुणी होवाथी स्वजन्य फलग्रापक वने छे, माटे ए ज मंत्र अर्हां परममंत्र शास्त्रकर्ताए मान्यो अने तेनी ज स्थापना करवानो आदेश आप्यो, अर्थात् आ सिवायना अन्य मंत्रो उक्त मंत्रना पुष्टिकारक मंत्रो अने गैण मंत्रो जाणवा.

अर्हां पर्यंत शास्त्रकर्त्ताए ‘ जिनविव ’ भराववानी विधि तथा शुद्धि कही, अने ‘जिनविव’ भराववानो उपदेश आप्यो तेमज तेनी अंजनशलाका करवानुं जगाव्युं. हवे कोइ शक्ति-

विशिष्ट भविक आत्मा रत्न, सुवर्ण, हीरा, माणेक आगर पद्मालुं तथा शक्ति वगरनो भावधी पापाण मृतिकालुं बनावे तेमज कोइ न्हालुं अथवा म्होडुं जिनविंब करावे, तो रत्न आदिलुं जिनविंब बनावे तेने अथवा पापाण विग्रेथी बनावे तेने आ वेमांथी विशिष्ट लाभ कोने थाय ? शुं रत्नलुं के म्होडुं जिनविंब भरावे तेने विशेष लाभ थाय ? आगर गमे तेबुं जिनविंब करावे पण भाव जेना अधिक सुंदर अने पवित्रतर होय तेने विशेष लाभ थाय ? आचार्य मगवान् कहे क्षे के—भावनी विशिष्टता अने पवित्रता जेने होय तेने अधिक लाभ थाय, परंतु जिनविंब म्होडुं अथवा रत्न आदिथी बनावे तेथी कांइ विशेष लाभ थाय एवो एकान्त नियम नथी, ए ज वात ग्रंथकर्ता स्पष्टतया जग्यावे छे.

विंब महत्सुरूपं,
कनकादिमयं च खलु विशेषः ॥
नास्मात्फलं विशिष्टं,
भवति तु तदिहाशयविशेषात् ॥७—१२॥

मूलार्थ—म्होटा प्रमाणवालुं अथवा सुंदर मनोहारी आगर शक्तिविशेषथी कोइ रत्न, सुवर्ण आदि विशिष्ट प्रका-रत्नं जिनविंब करावे एटला मात्रथी कांइ अधिक लाभ थाय नहीं, किन्तु ज्यां भावनी विशिष्टता होय त्यां ज लाभनी अधिकता जायवी अथवा भावनी मुख्यता क्षे.

“क्या विवरी वधु लाभ ? ”

स्पष्टीकरण— शक्तिवान् होय तो कोइ सुवर्ण, रत्न, हीरा, माणेकलुं सुंदर कारीगरद्वारा अवयवपूर्ण मनोहारी जिनविव करावे त्यारे कोइ बृहत्प्रमाणवालुं जिनविव करावे. हवे जेनी शक्ति न होय ते न्हालुं अने पाषाण अथवा मृतिकालुं विव करावे, एटले जो म्होडुं तथा हीरा आदिलुं विव करावे तेने अधिक लाभ अने न्हालुं तथा पाषाणलुं विव करावे तेने अन्य लाभ थाय एम भान्य होय तो श्रीमानो-शक्तिवानो ज अधिक लाभना भागी तथा गरिबो विचारा अन्य मागना भागी यह शके. आम मानवाथी तो पैसावालानो ज धर्म अने मोक्ष गणाय. पवित्र धर्म मार्गमां आ न्याय योग्य न कहेवाय. अतएव शास्त्र-कर्ता कहे क्षेत्र के—“ नास्मात् फलं विशिष्टं ” म्होडुं अगर रत्न आदिलुं विव कराववाथी कांइ अधिक लाभ थाय नहीं, किन्तु “ भवति तु तदिहाशयविशेषात् ” आशय—मावनी अधिकता जेटला प्रमाणमां होय तेटला प्रमाणमां अधिक लाभ थाय. परमार्थ ए के—पोतानी शक्ति प्रमाणे न्हालुं पाषाण अगर माटीलुं जिनविव भविक आत्मा भावनी अधिकताथी करावे, अने धनाद्वा भाव विना रत्न विग्रेशी म्होडुं जिनविव करावे तो पहेलाने जखर शुभ लाभनी दृद्धि थाय पण वीजा नम्बरवालाने अधिक लाभ थाय नहीं. एटले बैनधर्ममां शुभ पुण्यना लाभालाभनो

(३६०)

मुख्य आधार अंतःकरणनी शुभ वृत्तिओ पर ज राख्यो क्षे.
ए ज भावनी पुष्टि व्यवहार माध्यमां आ प्रमाणे करी क्षे.
“ लक्खणजुत्ता पडिमा, पासाईआ समत्तलंकारा ॥
पलहायह जह व मणं तह, यिज्जरमो वियाणाहि ”
॥ १ ॥ “ लक्खणे करी युक्त अने समस्त अलंकार अलंकृत
एवी जिनप्रतिमा तथा जिनश्रासाद देखीने जेम जेम मन
अधिक प्रसन्न थाय तेम तेम निर्बरा अधिक थाय एम
जाणदुं.” अहीं मननी जेम जेम अधिक प्रसन्नता तेम तेम
अधिक कर्मनिर्बरा थाय एम कथन करवानो द्वयकारनो
आशय क्षे, एटले भाव ज प्रधान छ एम जाणदुं.

अब्र आशय विशेषथी लाभ विशेष थाय ए भाव
जणाव्यो, परन्तु आ भाव क्या प्रकारे वर्तन करवाथी
पवित्र थाय ए वात ग्रंथकार दर्शने क्षे.

आगमतन्त्रः सततं,

तद् वद् भवत्यादिलिंगसंसिद्धः ॥

चेष्टायां तत्स्मृतिमान् ,

शस्तः खल्वाशयविशेषः ॥ ७—१३ ॥

मूलार्थ—आगमनिर्दिष्ट भाव गमन करदुं, आगम-
वानोनी पूजा-बहुमान आदि व्यापारो करवामां सतत
प्रवृति करवी, आगमने याद करदुं, आ प्रमाणे वर्तवाथी
आशयनी निश्चित पवित्रता थाय क्षे.

“ स्पष्टीकरण ”

जे काँइ शुभ कार्यों आरंभवा तेमां आगम-सिद्धान्त आज्ञाने मुख्य करी वर्तन करतुं परंतु आगमनिषिद्ध मार्गे जबुं नहीं, तथा आगमना अभ्यासी महर्षि गुनियोजी सेवा-भक्ति, पूजा, विनय, बहुमान आदि व्यापारो करवा; तेमज आगमना अभ्यास आदि क्रियामां प्रवृत्ति करवी, आगम-वचनोनुं वारंवार स्मरण करतुं, आ कार्यों करवाई हृदयनी खरी पवित्रता थाय अने तेथी पवित्र आशयनुं उत्थान थाय छे, परमार्थ ए के-पवित्र हृदयने प्राप्त करवा उपरोक्त विधिए वर्तन करतुं. आ सिवाय अन्य मार्गे हृदयनी पवित्रता थाय नहीं. अतएव ग्रंथकर्ताए म्लोकना उत्तर भागमां ‘खलु’ ए पद आप्युं छे अर्थात् निश्चिततया आम वर्तवाई आशय पवित्र थाय, तेमज आ प्रमाणे वर्तनारमां ज पवित्र आशय होय अने तेथी अन्यथा वर्तनार उंची क्रियाशुष्ठानो करे तदपि हीन आशयवालो छे एम जाणतुं.

आ प्रमाणे आशय पवित्रता जणावी. एवा आशय विशेषपूर्वक ज जिनविव करावतुं शारदोक्त विधि युक्त छे, ए वाततुं समर्थन करवा ग्रंथकार दर्शावे छे.

एवंविधेन यद्विम्ब-

कारणं तद्वदन्ति समयविदः ॥

(३६२)

लोकोत्तरमन्यदतो,

लौकिकमभ्युदयसारं च ॥ ७-१४ ॥

मूलार्थ—दर्शित आशय पवित्रता सहित जे जिनविष करावीए तेने शास्त्रज्ञो लोकोत्तर कार्य कहे छे, अने आधी विपरीत रीते करावीए तेने लौकिक कार्य जणावे छे; परंतु आ लौकिक कार्य केवल मानप्रतिष्ठा आदि फलने ज अर्पण करे.

“ स्पष्टीकरण ”

आशयनी पवित्रता माटे जे विधान कहुं ते ज प्रमाणे जे जिनविषरूप कार्य थाय अने तेथी अन्यथा रीते जे कार्य थाय, आ वन्ने कायोंना नाम अने फलमाँ अवश्य मेद होय छे, ए ज वातने स्पष्ट करवा आ श्लोक ग्रंथकारे कल्पे छे. यद्दले के लौकिक तथा लोकोत्तर ए प्रमाणे कार्यना वे विभागो थइ शके. जे कायों शुद्ध छतां मात्र लौकिक फलने ज अर्ये ते लौकिक, अने जे कार्य लोकोत्तर आत्म-कन्याण, कर्मनिर्जरा फलने अर्ये ते लोकोत्तर. अहीं शास्त्र-कार कहे छे के—जेबो ग्रथम कही गया ए रीते आशय-पवित्रता साथे जिनविष करावे तो आ कार्यने शास्त्रज्ञो-तत्त्वज्ञानीयो लोकोत्तर कार्य यद्दले यक्तान्तकन्याण मोदफल-दायी कार्य कहे छे. ज्यारे ए विधि अने आशयपवित्रता विना जो करावे तो लौकिक कार्य मान, कीर्ति आदि फल

(५६३)

अर्पनार कार्य दर्शवे छे. अगर स्वर्गादि संपत्ति अर्पनार कार्य कहे छे.

“ लौकिक कार्य ” अभ्युदय फल आपनार थाय एम कहुं पण लोकोचर कार्य क्या फलने आपे ए जणाव्युं नहीं माटे तेनो खुलासो हवे करे छे.

लोकोचरं तु निर्वाणसाधकं,
परमफलमिहाश्रित्य ॥
अभ्युदयोऽपि हि परमो,
भवति त्वत्रानुषंगेण ॥ ७-१५ ॥

मूलार्थ—अहीं उत्कृष्ट फल तरीके लोकोचर फल-मोक्षफलनी प्राप्ति थाय ते, अने अभ्युदय फल एट्ले स्वर्ग-संपत्तनो लाभ थाय ते; परंतु लोकोचर फलप्राप्तिना मध्यमां अवश्य स्वर्गादिक आदित्य गौण फल तो आनुषंगिकपणे थाय ज.

“ स्पष्टीकरण ”

आ लोकनो मावार्थ उपरना लोकना विवरणमां असे कही आव्या छीए, मात्र विशेष एटलुं ज के मुख्य अने गौण एम वे प्रकारे फलो थाय. तेमां लोकोचर कार्यनुं मुख्य फल मोक्षप्राप्ति थवी ते, तथा लौकिक कार्यनुं मुख्य फल स्वर्गसंपत्तिनो लाभ थाय ते. लोकोचर कार्यमां साध्यतया

(३६४)

मुख्य जो के मोक्षफल छे तो पण आनुषंगिकी स्वर्ग-
दिनी संपत्ति तो अवश्य आस थाय न; परंतु ते कांह साध्य
नथी ज्यारे लौकिक कार्यमां साध्य तरीके स्वर्गादि संपत्ति
ज मानी छे एटले तेथी मोक्षप्राप्ति थाय नहीं.

प्रधान तथा आनुषंगिक फलानुं स्पष्टीकरण करवा
ग्रंथकर्ता दृष्टांत दर्शावे छे.

कृषिकरण इव पलालं,
नियमादत्रानुषंगिकोऽभ्युदयः ॥
फलमिह धान्यावासिः,
परमं निर्वाणमिव विम्बात् ॥ ७—१६ ॥

मूलार्थ —जेम खेडुतोने कृषिकर्मनुं मुख्य फल धान्य-
प्राप्ति अने गौण फल ते धासप्राप्ति थाय छे तेम अहीं
जिनविवर्थी मुख्य फल मोक्षफल—मोक्षप्राप्ति अने स्वर्गसंप-
त्तिनो लाभ धास तुल्य आनुषंगिक फल जाणबुं.

“ स्पष्टीकरण ”

मुख्य आनुषंगिक फल माटे दृष्टांत-दार्शनिकतुं
साम्यकरण आचार्यश्री आ प्रमाणे अहीं घटावे छे. कृषि-
कर्ममां जेम धान्यप्राप्ति ए मुख्य फल अने पलालप्राप्ति ए
आनुषंगिक फल मान्युं छे, तेम जिनविव शादि

पवित्र अनुष्ठानोमां मुख्य फल अपवर्गलाभ तथा आनुषंगिक फल देवद्विं-प्राप्ति मानेल छे. एटले के मुख्य साध्यभूत मोहनुं लक्ष्य ले क्रियामां आविष्ट होय ते क्रियाने तच्चज्ञो लोकोच्चरक्रिया, अने ले क्रियामां आ फलनी उपेक्षा करी नौण रुल देवद्विं आदिनुं लक्ष्य होय ते क्रियाने लौकिक क्रिया कहे छे. अहीं पलाल अने अभ्युदयफल तेमज धान्य अने अपवर्ग वज्रे मुख्य आनुषंगिक फलनी यथार्थ साम्यता होवार्थी दृष्टांत-दार्ढान्तिकनी घटना वरावर सुधारित थाय छे. सार एके-लौकिक क्रियाथी केवल अप्रधानफल प्राप्त थाय, ज्यारे लोकोच्चर अनुष्ठानर्थी प्रधान अप्रधान वज्रे फलोनी प्राप्ति थाय. अप्रधानफल पेण एवुं लाभे के बेनार्थी परिणामे अवश्यमेव प्रधान मोहफल थाय ज.



(८) प्रतिष्ठाविधिषोडशकम्

गत षोडशक प्रकरणमां विस्तारथी 'जिनविंब' करण विधि दर्शावी. ए रीते यथोक्त विधिशुद्ध परम सुंदर मंत्रन्यासपूर्वक तैयार थयेल विंब मंदिरमां सुप्रतिष्ठित कर्यु होय त्यारे ज साध्यसाधक बने; अन्यथा ते विंब आशातना अने हानीकर्ता ज थाय माटे तेनी तुरतमां ज प्रतिष्ठा करवी ए आवश्यक अने शाक्तनिर्दिष्ट मार्ग कहेचाय. अतएव संबंधप्राप्त अष्टम षोडशक प्रकरणमां आचार्य भगवान् प्रतिष्ठाविधिनुं कथन करे छे.

निष्पक्षस्यैवं खलु,
जिनविंबस्योदिता प्रतिष्ठातु ॥
दशदिवसाभ्यन्तरतः,
सा च त्रिविधा समासेन ॥ ८-१ ॥

मूलार्थ—उपर दर्शावेल विधि प्रभाणे तैयार थयेल 'जिनविंब' नी आवश्यमेव तुरतजमां एटले दश दिवसनी अंदर प्रतिष्ठा करवी एम शाक्तो कहे छे. आ प्रतिष्ठा शाक्तमां संदेपथी त्रण प्रकारनी जणावी छे.

“ स्पष्टीकरण ”

सातमा प्रकरणमा ‘ जिनविंच ’ करणनी विस्तारथी जे विधि दर्शावी तदनुसार ‘ जिनविंच ’ तैयार थया पणी तुरतज प्रथम कहेल विविशुद्ध मंदिरमां सुप्रतिष्ठित करवुं. एटले दश दिवसनी अंदर ज प्रतिष्ठा जो थाय तो ते उत्तम अने शास्त्रोक्त प्रतिष्ठा गणाय, अर्थात् आ प्रतिष्ठा-कर्ता तथा कारणिता अने श्रीसंघ स्वजनो सर्वने एकान्त कल्याण तथा सर्वतो ग्रकारे उत्तरिभूत अवश्य बने. दश दिवसनी अंदर कहेवानो तात्पर्य ए के-ते उत्तम अवश्य प्रतिष्ठा कहेवाय; बाकी मध्यम अने जघन्य प्रतिष्ठा जाणवी. आथी ज श्लोकमा ‘ आसु ’ ए पद आप्णु, श्लोकमा ‘ खलु ’ ए पद वाक्यालंकार माटे आपेल क्षे अथवा ‘ खलु ’ शब्दनो ‘ ‘ एव ’ अर्थ करवो. एटले दश दिवसमां ज प्रतिष्ठा करवी; परंतु त्यारवाद थाय ते उचित न गणाय. आ प्रतिष्ठा पण शास्त्रमां संचेपथी त्रय प्रकारनी दर्शावी क्षे. अहीं ग्रंथकर्ता “ दश दिवसनी अंदर प्रतिष्ठा करवी. ” आठलुं विचान करीने प्रतिष्ठाना प्रकारो तथा प्रतिष्ठानुं स्वरूप आदिनुं आगळ विस्तारथी वर्णन करे क्षे, परंतु प्रथम प्रतिष्ठाविधि आचार्ये न कही तेनुं कारण पंचाशकना आठमा प्रकरणमां ग्रंथकर्ताए विस्तारथी प्रतिष्ठाविधि दर्शावी क्षे. अतएव अहीं तेनुं कथन करवुं ते ग्रंथ वधारवा जेवुं गणाय.

अहीं प्रतिष्ठाविधिना स्वरूपनुं दर्शन कराववुं आवश्यक होवाथी पंचाशकमाहेलुं वर्णन अमे अत्र अवतारीए क्षीए.

“ प्रतिष्ठाविधि ”

स्पष्टीकरण—उपर जगाव्या प्रमाणे विधि तथा आशय शुद्ध ‘ जिनविंव ’ तैयार थया पछी तेनो मन, वचन अने कायाना शुभ व्यापारो साथे चंद्र, ग्रह, नक्षत्र आदि शुभ योगमां उच्च स्थानमां वर्तता होय ते समये निष्पत्र मंदिरमां प्रवेश करवो अर्थात् योग्य स्थलमां प्रवेश कराववो, योग्य स्थानमां विराजमान करवुं; परंतु ज्यां विंव स्थापन करवुं होय एवा मंदिरनी आसपास अन्यमां अन्य (१००) सो हाथमां अस्थि, मांस, अशुचि आदि पदार्थो पहलाना अगर पछीना पछ्या न होय तेनी योग्य शुद्धि करवी अर्थात् चेत्रशुद्धि कर्या पछी ज त्यां विंव स्थापन करवुं. तेमज ज्यां विंव पधराववुं होय त्यां जमीननी अंदर पण अस्थि, मांस के अपवित्र पदार्थोंनी तपास कर्या पछी ज बंधाववुं, अन्यथा ते मंदिर उपधातक अने अन्य समयमां चिनाशी बने. आठी मंदिरनी आसपास प्रतिष्ठा कर्या पछी पण अपवित्र पदार्थों पडे नहीं, गंदकी कोइ करे नहीं तेनो खास विवेक राखवो जोइए. ए प्रमाणे चेत्रनी शुद्धि कर्या पछी ते जिनमंदिरने प्रतिष्ठा पहेला अने पछी सुगन्ध, पुण्य, धूप आदि पदार्थोंवडे अत्यंत सुवासित करवुं, सुगन्धमय करवुं, आसपासनी जमीन पण सुवासित करवी. शास्त्रकर्ता कहे छेके निश्चयथी सुगन्धमय करवुं, जेथी हुर्गन्धना संस्कारो उडी जाय, उच्चम देवताओं प्रसन्न थाय, हृदय अने आत्मा आनंद पामे, दिलतुं आकर्षण थाय. लोकोमां

(३६९)

प्रशंसा थाय. त्यारवाद दश दिग्पालो, चार लोकपालोनी स्थापना करी तेनी पूजा—सन्मान आदि करवा, तेमज वाकी अन्य देवताओनी पण पूजा—सन्मान आदि करवा एटले वलि—चाकूल आदि अर्पण करवा. अत्र केटलाकोनी एवी दलील छे के—देवताओ असंयमी होवाथी तेओनी पूजा शा भाटे करवी ? केमके तेओनी पूजा करवाथी असंयमपणांनु पोषण थाय छे. जो के आ दलील देखावमां घणी सुंदर छे, तो पण अमजनक होवाथी आचार्यश्री आ अमनुं निरसन आ प्रमाणे करे छे. अहीं जे 'विव' नी प्रतिष्ठा कही ते 'विव' ना मालीक तीर्थंकरदेव छे, अने तीर्थंकरदेव देव, असुर, विद्याधर, मनुष्य, जानवर आदि सर्व जीवोने पूज्य—अभ्यर्चनीय छे. आथी जेम राजा गादीनशीन थाय त्यारे सर्वनो उचित सत्कार करी सर्वने खुश राखवामां आवे छे, सर्व प्रजाने हर्पतुं कारण थाय छे तेम तीर्थंकरदेवनी मूर्ति पण ज्यारे गादीनशीन थाय त्यारे सर्वनो उचित सत्कार करवो आवश्यक छे, जेथी निर्विन्द कार्य समाप्त थाय. अतः अविरति एवा देवी—देवताओनी ते समये पूजा करवी ए कांड अघटित नथी किन्तु सुषटित ज छे, तथा दश दिग्पालो, चार लोकपालो सम्यग्दृष्टि अने महार्दिक देवताओ छे, अतएव तेबो आपणा समानधर्मी—साधर्मी वन्धु होवाथी, वक्ती मिथ्या-दृष्टि देवताओ पण द्रव्यथी साधर्मिक वन्धु होवाथी प्रतिष्ठा

समये तेजोनी पूजा करवी न्यायसंगत ज हो. उचित समये साधर्मीनो सत्कार न करवो, एना समान अन्य अज्ञानता अथवा धर्मतन्त्रनुं अनादरपणुं क्युं कहेवाय? ए रीते देवता-ओनो सत्कार कर्या पछी चंद्र, नक्षत्र, ग्रहादिकना शुभयोगमां प्रतिमा स्थापन उचित स्थल पर मंगलमय गायनादिपूर्वक चंदनादि पदार्थों सह मूर्तिने पश्चात्ववी, अने प्रतिष्ठाकल्पमां वर्णवेल सुगन्धी द्रव्यमिश्रित जलथी मूर्तिने पश्चाली शुद्ध करवी जेथी मूर्ति प्रतिष्ठा योग्य थाय, तेमज जिनमूर्तिनी समिपे चार दिशाओमां चांदी, सुवर्ण, रत्न, पुष्प आदि पदार्थोंवडे भरेला अथवा युक्त चार मंगलकुंभो स्थापन करवा. आ कुंभो पण हाथथी कांतेल अने चार शरवाला सुतरथी मुख वांधीने स्थापवा, एटले कन्यासुतरथी मुख वांधीने स्थापन करवा, त्यारपछी धी अने गुडथी भरेला मंगलदीपको स्थापवा, तथा खाजा विगेरे मनोहर खाद्य पदार्थों धरवा, अखंड शेरडीनां सांठा, केळ, जूवारारोपण, चंदन अने स्वस्तिक विगेरे करवा, ऋद्धि वृद्धि नामनी औपधियोए करीने सहित अनेक मंगलकंकणो मूकवा. पछी प्रथम दिवसे सुगन्धी गंधयुक्त एवा चंदनथी मूर्तिने विलेपन करवुं अने सौभाग्य-वंती तथा उत्तम प्रशस्त वेश अलंकारवती चार अथवा अधिक स्त्रीयोए मूर्तिने पोंखवी. अहीं जे दिवसे विलेपन—पूजा आदि करवी ते दिवसे प्रधान प्रधानतर द्रव्यो, औपधियो, फलो, वस्त्रो, सुवर्ण, मणि, मौकितक विगेरे अनेक पदार्थोंथी बनी शके तो

उत्कृष्ट पूजा करवी तथा शक्ति प्रमाणे अनेकविध वलियो, अनेकविध सुगंधो, अनेकविध छुसुमो, अनेकविध सुवासो—चूणों, अनेक प्रकारनी रचनाओ, नाथो—गायनोबडे महोत्सव करवो, एटले अद्वाईमहोत्सव, शान्तिस्नान, विविध रचनाओ शक्ति अनुसार अवश्य करवी. त्यारपछी मूर्ति अग्रे चैत्यवंदन करी प्रवर्धमान स्तुतिरूप स्तुति करवी, तेमज विश्वशान्ति अर्थे शासनदेवतानो एक 'लोगस्स' नो कायोत्सर्ग करवो, इष्ट गुरुदेवलुं स्मरण करुं. आठलुं कर्या पछी प्रतिष्ठाप्य जिनविंव अने प्रतिष्ठा करनारनी पूजा करी शुभ लश मुहूर्तमां पंचपरमेष्ठी नमस्कारमंत्रलुं स्मरणपूर्वक अथवा मंगलान्तरपूर्वक ते जिनविंवनी प्रतिष्ठा करवी. आ रीते प्रतिष्ठा कर्या पछी प्रतिष्ठित विंवनी पुष्प आदिथी पूजा करी चैत्यवंदन करुं, अने उपसर्ग नाश माटे फरी शासनदेवतानो कायोत्सर्ग करवो. वस आठली विधि कर्या पछी आ प्रतिष्ठाविधि पूर्ण थाय छे, माटे अर्ही समाप्ति करवी अर्थात् देवताओने विसर्जन करवा, तेमज हृदयनी स्थिरता थाय तेम अने प्रतिष्ठा स्थिर घने तेवो आशिर्वादरूप प्रतिमा अग्रे निम्न लिखित मंगलमय गाथानो पाठ करवोः—

जह सिद्धाण पतिद्वा तिलोगचूडामणिम्मि
सिद्धिपदे । आचंदसूरियं तह होउ इमा
सुप्पतिद्वा त्ति ॥ १ ॥

(३७२)

जह मेरस्त पइट्टा जंबूदीवस्त स मज्जयारामि । आ०२
जंबूदीवपइट्टा जह सेसयदीवमज्जयारामि । आ०३
जह लवणस्त पइट्टा सवसमुद्धाणमज्जयारामि । आ०४

प्रतिष्ठाने अंते शक्ति प्रभागे विशिष्ट प्रकारे अशन, पान,
खादिम, स्वादिम, वस्त्र, अलंकार आदिथी श्रीसंघनी पूजा-
भक्ति अवश्य करवी, जेथी उत्साह अने आनंदबृद्धि साथे
प्रतिष्ठा समाप्त थवाथी धर्म प्रशंसाकारक बने. आ दूँकुं विधान
पंचाशकमाहेलुं अमे अहीं आप्युं छे, ए वात अमे प्रथम ज
जणावी गया छीए; वाकी आ सिवायतुं विस्तृत वर्णन अने
विशेष विधान प्रतिष्ठाकल्प अने प्रतिष्ठाकारको पासेथी
दांचकोए जाणी लेबुं. अमे तो अहीं शास्त्रीय जे दूँक विधान
छे ते आपी स्थान पूर्ण कर्युं छे.

ग्रंथकर्ताए प्रथम क्षोकमां त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठा जणावी
हती, ते त्रण प्रकारो शास्त्रकर्ता अहीं हवे जणावे छे.

व्यक्त्याख्या खल्वेका,
क्षेत्राख्या चापरा महाख्या च ॥
यस्तीर्थकृद्यदा किल,
तस्य तदाद्येति समयविदः ॥ ८-२ ॥

मूलार्थ—व्यक्त्याख्य, क्षेत्राख्य अने महाख्य नमे
त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठा कही छे. तेमां जे काले जे तीर्थंकर

(३७३)

वर्तमानतीर्थना स्वामी तरिके होय ते काले ते तीर्थकरनी मूर्ति वीराजमान करवी तेनुं नाम समयज्ञो व्यक्त्याख्य नामे प्रथम प्रतिष्ठा कहे छे.

“ प्रतिष्ठामेदो ”

स्पष्टीकरण—पहेला श्लोकमां “ त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठा ” एम जणाच्युं हठुं, तेना साथे संवंध राखनार आ वीजो श्लोक छे. अर्हीं त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठाना नामो जणावी ग्रंथ-कर्ता उच्चरार्थथी पहेली प्रतिष्ठानुं स्वरूप दर्शविं छे. व्यक्ति, क्षेत्र तथा महा—एम त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठा शास्त्रमां सिद्धान्त-तत्त्ववेच्चाओ कहे छे. व्यक्तिनो अर्थ अमुक ज नामविशिष्ट पदार्थ अर्थात् जेम अनेक मनुष्यना दोळामां “ देवदत्त ” एवी संज्ञाविशिष्ट एक मनुष्य, क्षेत्र एटले अमुक स्थान अथवा भागमां रहेनार अगर थेले एवा अनेक मनुष्यनुं दोळं अने महानो अर्थ संपूर्ण भूभागमां निवसनार मनुष्यनो समूह. अर्हीं एज भावने लगतो भावार्थ शास्त्रकर्ता त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठामां दर्शविं छे, तेमां पहेली प्रतिष्ठानुं स्वरूप आ प्रमाणे:—

“ व्यक्तिप्रतिष्ठा ”

जे काले जे तीर्थकरनुं शासन वर्ततुं होय ते काले ते तीर्थकरनी हयातीमां अथवा पछी ज्यां सुधी अन्य तीर्थकरनुं शासन चालु न थाय त्यां सुधी ते शासन-नायकनी मूर्ति भराववी तेनुं नाम व्यक्तिप्रतिष्ठा. जेमके वर्तमानमां महावीर

भगवंतनुं शासन वर्ते हे एटले शासनाधीश्वर महाबीर देवर्ना
मूर्चि पद्मरात्रीए, तेमज पार्थनाथ प्रमुना शासन वर्खते तेमनी
पद्मरात्रीए ए रीते आ भरतक्षेत्रमां चतुर्विंशति जिनेश्वरो पैकी
जे तीर्थकरनुं शासन होय अने ते तीर्थकरनी मूर्चि पद्मरात्रीये
ते सर्व व्यक्तिगतिष्ठा जाणवी. आ परथी जे काले अन्य
जिनेश्वरनुं शासन चालुं होय अने अन्य तीर्थकरनी मूर्चि
स्थापन करवी. आ प्रतिष्ठा मध्यम अर्थात् क्षेत्रप्रतिष्ठान्त-
र्गत जाणवी. वर्तमानमां जेम महाबीरदेवनुं शासन विद्यमान
छतां पार्थनाथ, शान्तिनाथ विगेर कोइ पण प्रमुनी मूर्चि
स्थापन थाय हे, अतएव आ प्रतिष्ठा क्षेत्रप्रतिष्ठा कहेवाय;
किन्तु आद्य प्रतिष्ठा न गणाय एम सिद्ध थड्ह चूक्यु.

हं ' क्षेत्राख्य ' नामे द्वितीय प्रतिष्ठानुं स्वरूप जणावे हे.

ऋषभाद्यानां तु तथा,
सर्वेषामेव मध्यमा ज्ञेया ॥

सप्तत्यधिकशतस्य तु,
चरमेह महाप्रतिष्ठेति ॥ ८-३ ॥

मूलार्थ—ऋषभदेव आदि तथा चतुर्विंशति जिने-
श्वरोनी प्रतिष्ठा ते मध्यम प्रतिष्ठा जाणवी, अने उन्हेष्यी
एक सो ने सित्तर (१७०) जिनेश्वरोनी प्रतिष्ठा तेनुं नाम
अंतिम महाप्रतिष्ठा जाणवी.

“ क्षेत्रप्रतिष्ठा ”

स्पष्टीकरण—क्षेत्रप्रतिष्ठा—आदिनाथ विगेरे चोबीश जिनेश्वरोनी मूर्चिंओ पधरावी ते. आ प्रतिष्ठाने शास्त्रकर्ता मध्यम प्रतिष्ठा कहे छे. अहीं ग्रंथकार “ऋषभाद्यानां तु” ए पदथी रूपमदेव विगेरे कोइ पण जिनेश्वरनी अने “तथा सर्वेषामेव” चोबीशेनी प्रतिष्ठा करवी तेनुं नाम मध्यम प्रतिष्ठा कहे छे. टीकाकार “ऋषभाद्यानां सर्वेषां” ए वचे पदोनो विशेष्य विशेषण भाव दर्शावी रूपमदेव आदि चोबीशे तीर्थकरोनी प्रतिष्ठाने क्षेत्रप्रतिष्ठा जणावे छे. टीकाकारना आशयथी केवल जे समये अन्य प्रमुखुं शासन वर्ततुं होय ते समये अन्य कोइ जिनेश्वरनी मूर्चि पधरावीए, आ प्रतिष्ठाने कह मृतिष्ठामां गणवी ए शंका उपस्थित थाय छे, कारण के जे समये जेनुं शासन होय ते समये तेनी मूर्चिनी स्थापना करवी तेनुं नाम व्यक्तिप्रतिष्ठा कही गया छे. अतएव आ शंकाना निरसन माटे “ऋषभाद्यानां” अने “सर्वेषामेव” ए पदोने स्वतंत्र राखी अर्थ करीए तो वरावर सुधाटित थाय. आ ज आशयने हृदयमां धारी मूलकर्ताए “तु अने तथा” पदो आप्या होय एवुं अनुभान आपणे केम न करीए? आम छतां एक शंका तो अवश्य विचारज्ञोने उपस्थित थशे. आ शंका ए ज के—ज्यारे आदिनाथ, पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ विगेरे एक ज मूर्चिनी स्थापना करीए अने तेने क्षेत्रप्रतिष्ठा मानीये, तथा जे समये जे भगवान्नुं शासन होय ते भगवाननी मूर्चि पधरावीए तेनुं नाम व्यक्ति-

(३७६)

प्रतिष्ठा मानीए त्यारे वने प्रतिष्ठामां भेद न होवाथी
अलग शा माटे कही ? आनो उत्तर एटलो ज के व्यक्ति-
प्रतिष्ठामां केवल वर्तमान शासननायक सिवायनी प्रतिष्ठा
न थाय ज्यारे क्षेत्रप्रतिष्ठामां शासननायक सिवाय
कोइ पण तीर्थकर अने चोवीश जिनेश्वरोनी मूर्त्ति पधरावी
शकाय. परमार्थ ए के-अमुक व्यक्तिनी अपेक्षाए व्यक्ति-
प्रतिष्ठा अने भरत अथवा ऐरावत क्षेत्रनी अपेक्षाए क्षेत्र-
प्रतिष्ठा जाणवी. आ वे प्रतिष्ठानुं स्वरूप कहा पछी ग्रंथकर्ता
अर्थस्लोकथी “महाप्रतिष्ठा ” ऊं स्वरूप कहे छे.

“ महाप्रतिष्ठा ”

महाविदेह, भरत अने ऐरावत आ सर्व क्षेत्रोना मली
एक सौ सित्तरे १७० तीर्थकरोनी मूर्त्तिओ पधराववी, आ
प्रतिष्ठाने शास्त्रकर्ताओ चरम-महाप्रतिष्ठा एवुं नाम अर्पे छे,
अर्थात् आ त्रये प्रतिष्ठाओनी जे जे संज्ञाओ छे तेवो ज
तेनो गर्भिताशय छे. निदान ए के-महाप्रतिष्ठामां सर्व क्षेत्रोना
तीर्थकरोनी मूर्त्तिओ पधरावाय माटे महाप्रतिष्ठा.

ए रीते त्रये प्रकारनी प्रतिष्ठा जणावी. आ त्रये प्रकारनी
प्रतिष्ठा सातमा पोडशकमां दशविल उत्तम यवित्र आश्रय
तथा वर्तनवान् भाविक ग्रहस्थे उत्तम कारीगर पासे विधि-
शुद्ध बनावेल जिनविंशोनी ज थाय. पाठकोने आ वात फरी
जणावानी अमे जरुर देखता नथी, आटलो निर्देश कर्या
पछी अर्ही कोइ शंका उपस्थित करे के—

“ प्रतिष्ठा कोनी ? ”

आ प्रतिष्ठा कोनी ? अष्टकर्मनो नाश करी मोक्षे गयेल एवा परमेश्वरनी आ प्रतिष्ठा कराय छे अर्थात् बनावेल जिनबिंबमां ते परमात्माने अमे स्थापीए छीए, एम जो कहो तो आ उचर केवल माटीनी पोली भिंत जेवो छे; कारण के जे परमात्मा मोक्षमां विराजे छे, जेओए आठ कर्मनो नाश करी संसार दूर कर्यो छे तेओ गमे तेवा विशिष्ट मंत्रोना अनेक संस्कार करवा छतां अहीं उतरी शकता नथी. यदि मंत्रोना संस्कारथी तेओ आवता होय तो तेओ मुक्त-सिद्ध थया छे ए कथन ऋममूलक गणाय. सिद्ध तो ए ज कहेवाय के जेओ फरीने अहीं आवे नहीं. आ हेतुथी “ सिद्धनी प्रतिष्ठा ” आ उचर ऋमनाशक न गणाय. अतएव यदि एम कहो के—संसारवर्तीं कोइ देवजातिमां रहेलनी प्रतिष्ठा करीए छीए, तो आ उचर पण केवल युक्ति-खंडित छे. हेतु ए के—संसारवर्तीं कोइ देवजाति विशेष सर्वदा एक ज स्थान पर स्थित थइ शकती नथी. ए तो संसारी होवाथी अन्यत्र अन्यत्र गमनागमन अवश्य करे, एटले मंत्रादि संस्कारविशेषद्वारा आ संसारवर्तीं देवजाति विशेषनी स्थापना ए तो नितान्त अघटित छे, धारो के—कदाचित् कोइ समये आ देवजाति विशेष अहीं आवे छे अर्थात् मूर्चिमां पोतानो सदूभाव दशावे एतावन् मात्रथी काँइ प्रतिष्ठानी सिद्धि न गणाय, प्रतिष्ठासिद्धि तो त्यारे ज

कहेवाय के जे देवतत्व सर्वदा मूर्तिमां विद्यमान थाय,
आ शंकाना निरसन माटे आचार्य भगवंत जणावे छे के—
विशिष्ट आत्मभावनी ज प्रतिष्ठा थाय छे किन्तु मुक्त अथवा
संसारस्थ देवजाति विशेषनी मूर्तिमां स्थापना अमे जणावता
नथी; परंतु मूर्तिमां विशिष्ट आत्मभावनो ज आरोप करवो तेने
अमे प्रतिष्ठा कहीए छीए. एटले उपरोक्त शंका अर्थवगरनी
ज सिद्ध थाय छे, ए ज भावनुं दर्शन कराववा आचार्यश्री
कथन करे छे.

भवति च खलु प्रतिष्ठा,
निजभावस्यैव देवतोद्देशात् ॥
स्वात्मन्येव परं यत्,
स्थापनमिह वचननीत्योच्चैः ॥ ८-४ ॥

मूलार्थ—प्रतिष्ठित मुख्य देवना उद्देशयी देवविषयक
आत्मिक भावनी ज स्व-आत्मामां स्थापना करवी एटले
के—आत्मामां परमात्मभावनो पूर्ण ख्याल करवो तेनुं ज
नाम अहीं आगमवचनथी उच्च-अतिशय मुख्य प्रतिष्ठा कही
छे, अने जिनबिबमां तो देवविषयक आत्मीयभावनो आरोप
करवो तेनुं नाम बाह्य औपचारिक प्रतिष्ठा कही छे.

“ आत्मप्रतिष्ठा ”

स्पष्टीकरण—शास्त्रमां बाह्य अने आभ्यन्तर वे

ग्रकारनी प्रतिष्ठा कही छे. तेमां पण बाह्यने गौण-अप्रधान तथा आभ्यन्तरप्रतिष्ठाने मुख्य-प्रधान जणावी छे. अतएव ग्रंथकर्ता आदिमां आभ्यन्तरप्रतिष्ठानुं स्वरूप दर्शावी पछी बाह्यनुं स्वरूप कथन करे छे, कारण के-आभ्यन्तर-प्रतिष्ठा विनानी बाह्यप्रतिष्ठा फलदात्री थाय नहीं. आगल आपणे तपासी गया छीए के-प्रतिष्ठा करनार शास्त्रोक्त विविधशुद्ध अने गुणवान् होवो जोइए, तेमज जे देवनी प्रतिष्ठा कर्तव्य होय ते देवना गुणोमां तेनो आत्मा परिणत थयो होय, ते ज देवना ज्यानमां लीन होय ए ज आत्मा प्रतिष्ठाक्रियानो अधिकारी गण्यो छे. निदान ए के-प्रतिष्ठा करनार प्रथम तो परमात्माना संबंधी जे जे अलौकिक चमत्कारी गुणो होय तेने ध्यानद्वारा पोताना आत्मा साधे ऐक्यता करे, तेमां तन्मय थाय, स्व-आत्मा परमात्म तुल्य छे एम समानता निचारे, हृदय अने आत्म समीपे परमात्मानुं अलौकिक रूप खड्ह करे, आ सभये संसारनी विविध उपाधियो विसरी जाय, विषयनी ज्वालाओ बुझाइ जाय, कामक्रोधादि भूली जाय, अहंत्व अने भमत्तभावने दूर करे, कुळंद, स्त्री, पुत्र, धन ए सर्वने तुच्छ, क्षणिक, स्वार्थी, अनन्तद्वःशक्कारी भानी तेना पर विरक्तभाव धारण करे, केवल परमात्मानुं अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंत असंद निरावाध सुख, अनंतवीर्य, अनंतैश्वर्य, व्योतिस्वरूप विचारे, स्व-आत्मामां स्थापन करे, आलुं नाम शास्त्रकार आभ्यन्तरमुख्य प्रतिष्ठा कहे छे. आ ज तात्त्विक

प्रतिष्ठा कही छे. परमार्थ ए के-उपरोक्त ध्यान बिना आ प्रतिष्ठा अग्राप्य कही छे.

“ आत्मामां परमात्मपणुं केम थाय ? ”

अहीं पाठकोने शंका अवश्य थशे के मुख्य परमात्मा अनंतगुणविशिष्ट परम ज्योतिरूप छे, अने प्रतिष्ठाकर्ता एक संसारी पुरुष छे, ते यदि परमात्मगुणानु ध्यान करे तो एकाद गुणानु ध्यान करी शके. ते पण मात्र विचारपणे, परंतु अनुभवरूपे तो नहीं ज. परमात्मगुणनो अनुभव तो ल्यारेज थाय के जो परमात्मपणुं ग्रास थाय. हवे परमात्माना एकाद गुणानु ध्यान करवाथी पूर्ण परमात्मस्वरूप साथे प्रतिष्ठाकर्तानी तन्मयता अने कर्तना आत्मामां परमात्मपणानी प्रतिष्ठा मानवी ए युक्तिथी अग्राह्य विषय छे, एटले स्वात्मामां परमात्मानी प्रतिष्ठा करवी ए नितान्त अघटित ज सिद्ध थाय छे. आ प्रश्नानु समाधान उपाध्यायजीए स्वटीकामां आ प्रमाणे कर्यु छे. शास्त्रकर्ता ख-आत्मामां परमात्मानी प्रतिष्ठा करवानो उपदेश “वचन-नीत्योच्चैः ” ए पदथी करे छे, एटले के-वचनानुष्ठानवडे प्रतिष्ठा करवानु दर्शविं छे. शास्त्रकारनी आज्ञा लक्ष्यमां राखी जे क्रिया थाय तेने शास्त्रकर्ताए वचनानुष्ठान कह्युं छे. अहीं

१ जो पुण जिणगुणचेइसुत्तविहाणेण वंदणं कुणइ । वयणाणु-
द्वाणमिणं चरित्तिणो होइ नियमेण ॥१॥ चेइयवंदणभासं० गा०
॥११॥ जे कोइ चैत्यवंदनसूत्रना विधानवडे जिनचैत्योनी वंदना करे
तेनुं नाम वचनानुष्ठान कह्युं. आ अनुष्ठान संयमीने अवश्य होय.

(३८१)

बचनानुष्ठान ए पदनी पूर्वोक्त व्याख्या प्रमाणे जेओ
शास्त्राज्ञा प्रमाणे वर्तन करे, प्रत्येक क्रियामां शास्त्रानुं ज जेओ
अवलंबन करे, परमात्मपणुं प्राप्त करवा बारंवार अभ्यास
करे, परमात्माना प्रत्येक गुणोनुं स्मरण करी तेनुं ध्यान
करे, एवा निर्भल आत्मामां ज आ परमात्मभावनी स्थापना
थइ शके. वधुमां ए ज आत्मा परमात्मस्वरूपनी साथे तन्मयता
करी शके छे, एटले के-जेम विद्यध कामी यूवक कोइ
लावण्यसौभाग्य रूपकलासंपन्न ललनामां आसक्त थया
पछी तेनो ज अहनिंश विचार करे छे, तेने स्वहस्तगत
करवा संयोगो खोले छे, तेमां विविध गुणो स्वदृष्टिए निहाले
छे अने तेथी ते विलासी पुरुषना हृदयमां, चक्षुमां, छायामां,
शब्दमां ते ज ललनानी मूर्ति आळेखाय छे, निद्रा के तंद्रा,
स्वभ के जागृतावस्थामां तेने ज देखे छे. अहीं आ कामी
आ स्थितिना लीघे कांइ पुरुष मर्टी स्त्रीरूप बनतो नथी,
तेमज झीना गुणोनो यथावत् अनुभव के वेदन ते करतो नथी;
तथापि तेना रागथी तन्मयतानो तो जरुर ते अनुभव करे
छे अने आ अनुभवना परिणामे कामी स्वहृदयमां ते लल-
नानी मूर्तिनुं अपूर्व स्वरूप खड्हुं करी रातदिन तेनी ग्राहिनी
लालसाथी झूर्या करे छे. आ वातनो अनुभव याठकोने सम-
जाववा माटे अमारे वधारे ग्रयास करवानी आवश्यक्ता नथी.
ए ज रीते बचनानुष्ठान प्रमाणे वर्तनार परमात्मभावनुं
अपूर्व ध्यान, तेनी तन्मयता अने परमात्माना एकाद

गुणना स्मरण मात्रथी स्व-आत्मामां परमात्मानो आरोप अथवा तो परमात्मानुं चित्र केम न खड़ुं करी शके ? अवश्य करी शके. आथी ज उपाध्यायजी उपरोक्त शंकाना समाधानमां जणावे छे के-प्रतिष्ठित देवना एकादमुख्य गुणनुं ध्यान करवाथी विचक्षण आत्मा स्वात्मामां देवना सर्व गुणोनो आरोप करी “हुं पण आ सर्व गुणवान् परमात्म स्वरूप हुं, परमात्मा अने मदीय आत्मामां किंचित् पण विषमता नथी, जे गुणो परमात्मामां छे ते ज गुणो मारा आत्मामां तिरोभावरूपे रहा छे, यदि ते ज गुणो आविर्भविने पामे तो हुं अने परमात्मामां मेद रहे नहीं.” आ स्थितिनो अनुभव करी शके छे. परिणामे परमात्मानी खापना यथावत् स्वात्मामां बचनानुष्ठानकारी अवश्य करी शके छे. अत्र महर्षिओ ध्याता अन्तरात्मा, ध्येय परमात्मा अने अन्तरात्मानी परमात्मा साथे ऐक्यता ते ध्यान-आ त्रिपुटीनो संयोग थया पछी अंतरात्मा पोतानामां परमात्मभावनी प्राप्ति अथवा प्रतिष्ठा करवा अवश्य भाग्यवान् थाय छे, एम खुल्लं जणावे छे. एटले निर्मल स्फाटिकमां जेम दृष्टानुं तद्वत् प्रतिविम्ब प्रतिभासमान थाय छे तेम निर्मल अन्तरात्मरूप स्फाटिक रत्नमां परमात्मानुं प्रतिविम्ब पण आविर्भूत थाय छे. आ विषयनो सुबोध करवा महर्षिओ एक सुंदर दृष्टांत पण आपे छे. “कीटिका भ्रमरीं ध्यान् भ्रमरित्वमुपजायते ” “ भ्रमरीनुं एकाग्र ध्यान करवाथी कीडो जेम भ्रमरीभावने प्राप्त थाय छे ” उपाध्यायजी ज्ञानसार

प्रकरणमां परमात्मभावनो अनुभव क्यो आत्मा केवी स्थितिए
 करी शके तेनो उल्लेख आ प्रमाणे करे छे—जीतेद्रिय, धीर,
 प्रशान्त, निष्ठलबृत्ति, द्वदासनस्थित, नासिकाना अग्रभागे
 स्वदृष्टिने टेकावनार एवो योगी तथा ध्यानना धारावेगथी
 पौद्वलिक भावमांथी मननो रोध करनार, प्रसन्न, अप्रमादी
 पुरुष चिदानंद संवंधी अमृतरसनो अपूर्व स्वाद करे छे. आ
 सर्व कथननो कथितार्थ एटलो ज के ग्रतिष्ठा करनार संसारस्थ
 पुरुष छतां परमात्म संवंधी एक अथवा अनेक गुणोनुं स्मरण,
 चित्तवन अने ध्यानद्वारा तन्मय थवाथी नितान्ततया स्वा-
 त्मामां परमात्माना प्रतिविवने अवतारी शके ए निःसंशय
 छे, अरे ! युक्ति अने प्रमाणथी अखंडित छे. आ भावार्थ
 “बचननीत्योचैः” ए पद साथे ग्रंथकारे आपेल “उच्चैः”
 पद परथी ग्राम थाय छे, एम उपाध्यायजी कहे छे.

१ ध्याता ध्येयं तथा ध्यानं त्रयं यस्यैकतां गतम् । मुनेरन-
 न्यचित्तस्य तस्य दुःखं न विद्यते ॥ १ ॥ ध्यातान्तरात्मा ध्येयस्तु
 परमात्मा प्रकीर्तिः । ध्यानं चैकाप्रसंवित्तिः समापत्तिस्तदेकता
 ॥ २ ॥ मणौ विम्बप्रतिच्छाया समापत्तिः परात्मनः । क्षीण-
 वृत्तौ भवेद् ध्यानादन्तरात्मनि निर्मले ॥ ३ ॥ जितेन्द्रियस्य
 धीरस्य प्रशान्तस्य स्थिरात्मनः । सुखासनस्य नासाग्रन्यस्तनेत्रस्य
 योगिनः ॥ ६ ॥ रुद्धवाह्यमनोवृत्तेर्धारणा धारयारथात् । प्रस-
 भस्याप्रमत्तस्य चिदानन्दसुधालिह ॥ ७ ॥ ज्ञानसार, अष्टक ३० ॥

आ प्रमाणे आभ्यन्तरप्रतिष्ठा संबंधीनो विचार आपणे अहीं कर्यो, कारण के प्रतिष्ठाकर्तने आभ्यन्तरप्रतिष्ठानुं तत्त्व पास्या वगर बाह्यप्रतिष्ठा करवाने अनविकारी गण्यो छे, एटले प्रथम प्रतिष्ठाकर्ता स्वात्मामां परमात्मप्रतिष्ठा कर्या पछी ज बाह्यप्रतिष्ठा करी शके, अने ते ज बाह्यप्रतिष्ठा अन्यने पूजाफलदात्री बने, अतएव अहीं हवे बाह्यप्रतिष्ठानो विचार कर्वो अत्यावश्यक गणाय.

“ बाह्यप्रतिष्ठानी उपयोगिता ”

बाह्य प्रतिष्ठानो मुख्य अर्थ एटलो ज के—पूर्वोक्त प्रकारे विधिशुद्ध अने उत्तम कारीगरनिर्मित जिनविघमां परमात्म-भावनो आरोप करवो अर्थात् परमात्मानी तेमां स्थापना करवी, अत्रे पाठके पहेला शंका करेल हत्ती के—मूर्ति पाषाणनी अने परमात्मा क्षीणकर्मा ज्योतिस्वरूप सिद्धस्थानस्थित एटले मंत्रादिविशिष्ट संस्कारद्वारा तेनो आरोप मूर्तिमां कोइ प्रकारे थह शके नहीं, तथा थाय तो सिद्धपणुं न घटे. अहीं आ शंकानुं निरसन आ प्रमाणे जाणबुं.

प्रथम तो शास्त्रमां जेवा अवयवो, आकार, प्रमाण तथा जिनमूर्तिनुं वर्णन कर्यु छे तेवा ज आकारमय जिनमूर्ति निर्माण करवी, एटले जेना दर्शनमात्रथी दृष्टाना हृदयमां एकाएक आ जिनमूर्ति छे अने जिनेश्वरना शरीरतुल्य आकारवान् आ प्रतिमा छे एचो सचोट भास थाय. त्यारबाद आ

जिनमूर्तिमां पूर्वे दशविल गुणवान् प्रतिष्ठा करतां स्वात्मामां
प्रतिभासमान् परमात्मानो उपचारथी आरोप करे, अर्थात्
पोतानो परमात्म संबंधी उंच आशय तेमां स्थापे, हृदयस्थ
परमात्म मूर्ति अने वाह्य पाषाणस्थ जिनआकारनी तुल्यता
करी विचार करे, भावना करे के—आवा आसन पर विराजित
परमात्माए सिद्धस्थान प्राप्त कर्यु, मूर्तिमां जे शान्तिरस,
निर्विकारदृष्टि, अपूर्व सौम्यता, अद्भुत वैराग्य, अपूर्व त्याग,
आश्चर्यकारी ध्यान, चमत्कारी तेज, दिव्य प्रसन्नता, अलौकिक
योग आदि भावोनी छांया दृष्टिगत थाय छे, तेनाथी
अनंतगुणविशिष्ट ज्योतिस्वरूप परमात्मामां ते ते भावोनो
र्योगीओ साक्षात्कार करे छे; आ मूर्ति तो मात्र ते ते गुणोनुं
ध्यान करवानुं पगथीयुं, केवल एक वाह्य साधन छे. प्रतिष्ठा-
कर्ता ज्यारे मंत्रादि संस्कारोथी आ भावनो ते मूर्तिमां
उपचार करे छे, एटले अन्य धर्मी मनुष्यने आ मूर्ति ध्याननुं
साधन, गुणभावना करवानुं स्थान, जिनत्वपणानो ख्याल
करावनार अने विविध पूजानुं फल आपनार वने छे, कारण
के प्रामाणिक गुणवान् अने विशिष्ट धर्मांजन ज्यारे पोतानो
अपूर्व सद्भाव तेमां स्थापन करे त्यारे अन्य सामान्य जनो
पूजा विगेरे कार्योमां अवश्य प्रदृष्टि करे छे.

छेवटे परिणामे ते ते लोको पूजानुं अद्भुत फल प्राप्त
करे छे. आ रीते प्रतिष्ठाकर्ता स्वात्मगत परमात्मभावनो वाह्य

जिनमूर्चिमां आरोप करी, जिनमूर्चि अने वीतरागदेव वन्नेमां अभेदभावना धारण करी जिनमूर्चि पासेथी हृदयस्थ परमात्मगुण भावनानी नितान्त दृढ़ता करे छे, एटले बाह्यप्रतिष्ठा पण प्रतिष्ठाकर्ता तेमज अन्यने पूजन आदि कार्योमां प्रेरक होवाथी ते प्रतिष्ठा पण आभ्यन्तरप्रतिष्ठानी माफक अत्यावश्यक योगियोए मानी छे. किन्तु आभ्यन्तरप्रतिष्ठा कर्या पछी ज बाह्य जिनमूर्चिमां परमात्मभावनो उपचारथी आरोप थाय छे, अने ते कल्पित आरोप होवाथी तेने शास्त्रकर्ता बाह्यप्रतिष्ठा कहे छे. आ रीते बाह्यप्रतिष्ठामां कर्तनो मुख्य देव विषयक आत्मिक भावनो ज आरोप करवाथी आ विषयमां पाठके प्रथम जै शंका उपस्थित करी हती तेनुं समाधान सशुक्तिक थह जाय छे एटले तत्संबंधमां विशेष वक्तव्य रहेतुं नथी.

अहीं बाह्यप्रतिष्ठा करवानुं मुख्य कारण ए के-
भक्त आत्मा त्यागभावनी पुष्टि माटे, संसार परनो मोह
त्यागवा माटे, विषयो अने उपाधियोनी तुच्छता-क्षणिकताने
भाववा माटे, अने परमोपकारी, अकारणवन्धु, संसारभय-
त्राता, जगज्जनवत्सल, त्रिभुवनोपकारी, दीनजनवन्धु,
कृष्णासिन्धु एवा परमात्माना चरणे स्वेष्ट पदार्थो
घरी पोतानी कृतज्ञता दर्शविवाने इच्छा करे तो आ
इच्छा परमात्मा संबंधी बाह्य रूप विना तस थाय नहीं.
बली कृतज्ञोए पोतानी कृतज्ञता जरुर दर्शविवी जोइए. यदि
नं दंश्विते तो ते भक्त उपकारभक्ती अने अधर्मी ज गणाय,

कही, पण अन्य प्रतिष्ठानो निषेध कर्यो तेनुं शुं कारण ।
आ शंकानुं निरसन ग्रंथकर्ता आ प्रभाषे जणावे छे.

वीजमिदं परमं—

यत्परमाया एव समरसापत्तेः ॥
स्थाप्येन तदपि मुख्या,
हन्तेषैवेति विज्ञेया ॥ ८-५ ॥

मूलार्थ—मुख्य देवना उद्देशयी स्वात्मामां निज-
भावनी प्रतिष्ठा करवी ते ज प्रतिष्ठा परम-उत्कृष्ट समरस-
मुख्य देवतुल्य भावग्राहितुं परम कारण एटले वीजभूत मानेल
छे, अतएव वहिर्वर्ती मूर्च्छिद्वाराए पण ते ज आत्मिक भावतुं
पोपण थाय छे अने तेमां उपचारथी निजभावनो ज आरोप
करीए छीए माटे परमार्थथी ए ज प्रतिष्ठा मुख्य जाणवी.

“ स्पष्टीकरण ”

स्वात्मा अने परमात्मा आत्मत्वभावरूपेण अने गुण-
रूपेण समान ज छे, केवल परमात्मा ए शुद्ध-निर्देष कांचन
तुल्य शुद्ध स्वरूप छे ज्यारे आत्मा मलीन-माटीमिथित
कांचन तुल्य अशुद्ध स्वरूप छे. हवे स्वात्मा परमात्मणुं
प्राप्त करवाने परमात्मभावनो विचार, तेनुं ध्यान, पूजन,
स्मरण करे तो ज परमात्मा थाय. आ ध्यान, विचार तथा
पूजन आदि परमात्माकारनुं- अवतरण विना न ज बने,

(३८९)

एटले मुख्यतः स्वहृदयमां परमात्मानो आभास करवो अने पछी ते आभासने मूर्च्छिमां उतारवो—आरोप करवो आ आरोपने महर्षिओए वे विमागमां विभक्त कर्यो छे. प्रथम तो स्वात्मामां परमात्मानुं बराबर ध्यान करबुं ते मुख्य अने बीजो वाह्यमूर्च्छिरूपे खडो करवो ते गौण. आने ज शास्त्रकर्ताए प्रतिष्ठा एवी संज्ञा अर्पी छे. परमात्मानुं ध्यान करी आत्मामां पूर्ण परम शान्तिरस प्राप्त करवो ते ज परमात्मपूजननुं अलौकिक फल मान्यु छे, एटले अंतरमां परमात्मचित्तवनद्वारा निजभावनी विशुद्धि थाय, निजात्मा परमात्म तुल्य छे एवो अवाधित वोध थाय अने त्यारपछी ज आत्मामां परम शान्तिरस विस्तरे. आ परम शान्तिरसप्राप्तिमां मुख्य कारण—प्रधानबीज अंतरमां स्थापित परमात्म संबंधी विचारो ज थाय छे, ते सिवाय अन्यथा प्रकारे शान्तिरसनो लाभ थतो नथी. तेमज निजभावनी विशुद्धि वाद स्वात्मामां परमात्मानो रूयाल थया पछी स्वात्मा अने परमात्मभावनो अमेद वोध थाय, अतः शास्त्रकर्ताए अहीं स्वात्मामां देवविषयक निजभावनो आरोप करवो तेनुं ज नाम प्रधान प्रतिष्ठा जणावी. आ सिवाय अन्य प्रतिष्ठाने अप्रधान कही, तेमज वाह्य जिनमूर्च्छिमां पण निजभावनो आरोप करी ते ज जिनमूर्च्छिद्वाराए परमात्म स्वरूपनो विचार करवाथी अंतरमां निजभावनी वृद्धि थाय अने शान्तिरसनी अलौकिक प्राप्ति थाय छे, आं हेतुथी पण देवविषयक निजभावनी संयोगेना करवी तेनुं

(३९०)

नाम प्रधान—मुख्य प्रतिष्ठा शास्त्रकर्ता कहे छे. अहीं मूलमां “हन्तेपैवेति” हन्त एटले निश्चयथी आ ज प्रतिष्ठा मुख्य छे, एम भारपूर्वक जणावी ध्वनित करं छे के—मुक्तगत आत्मानी अथवा अन्य देवजातिप्रविष्ट आत्मानी प्रतिष्ठा अहीं स्वीकृत नथी एटले पूर्वोक्त “प्रतिष्ठा कोनी करो छो ? ” ए शंका निरस्त थाय छे. वस्तुतः अमे अन्यनी प्रतिष्ठा स्वीकारता ज नथी.

ए ग्रमाणे समाधान कर्या पडी “अपथ्यं आत्मे” ए न्यायथी वादी फरी शंका करे छे के—देव संबंधी निज भावनी प्रतिष्ठा मानवी, ए अपेक्षाए मुक्तिगत आत्मानी प्रतिष्ठा शा माटे न मानवी ? कारण के निजभावनी अपेक्षाए मुक्तगत आत्मा साक्षात् परमात्मा अने साक्षात् आराध्यतत्त्व छे, अतएव तेनी प्रतिष्ठा मानवी ए ज वस्तुगत्या सुधारित कहेवाय. ए प्रकारनी वादी—शंकालुं समाधान आचार्यथी आ रीते अहीं दर्शवि छे.

मुक्त्यादौ तत्त्वेन,
प्रतिष्ठिताया न देवतायास्तु ॥
स्थाप्ये न च मुख्येयं,
तदधिष्ठानाद्यभावेन ॥ ८-६ ॥

मूलार्थ—वस्तुगत्या मोक्षमां स्थित सिद्ध परमात्मा

दूर होवाथी अहीं रहेल जिनमूर्चिमां तेनी स्थापना थह शके ज नहीं, तेमज आ स्थापना पण मुख्य-प्रधान योगीओए मानी नथी. निदान ए के-मूर्चिमां ते परमात्मा परमार्थथी आश्रित अथवा सांनिध्य थता नथी.

“ स्पष्टीकरण ”

प्रतिष्ठा एटले स्थापना ए अर्थ अनेक वार कही गया छीए, अतः स्थापना वस्तुतः तेनी ज कराय के जे स्थिति करे, स्वस्थान माने. जेओ स्थानने स्वस्थान मानता नथी, जेओ स्थान अंगीकार करी तेमां स्थिति कदापि करता ज नथी तेनी स्थापना ए तो “ माता मे वंध्या ” जेबुं वाक्य गणाय. अष्टकमक्षयना अंते परमात्माओ निर्मलरूपे सिद्धिमां विराजे छे, अहीं आववानुं कारण प्रथमथी ज जेओए भस्म-वत् कर्यु छे, एटले तेओ अहीं क्यांथी आवी शके ? कदापि तेओ आवी शके नहीं. आम वस्तुस्थिति होवाथी मोक्षगत सिद्धखरूप परमात्मा अत्रस्थ पापाणरूप जिनमूर्चि तेमां मंत्रादि अनेक असंख्य संस्कारो करवा छतां कदापि निवास-स्थिति करे ए नितान्त अघटित कहेवाय, एटले सिद्ध परमात्माने ममत्य, अहंत्य, आ मारुं निवासस्थान विगेरे भावो आविर्भूत थाय नहीं. अतएव मूर्चिमां तेजोनी स्थापना करी तेने प्रधान प्रतिष्ठा मानवी ए केवल हास्य-चेष्टा ज गणाय. वळी मूर्चिमां परमात्मानुं सानिध्यपणुं न थवाथी ते प्रतिष्ठाने शास्त्रकर्ताए मुख्य प्रतिष्ठान्त-

र्गत मानी पण नथी. आथी ज शास्त्रकर्ता कहे छे के—निज-भावनी स्थापना करवी ते ज पारमार्थिक प्रतिष्ठा जाणवी अने मोक्षस्थ आत्मानी प्रतिष्ठानो नियेध कर्यो छे तेमज संसारस्थ अवीतराग, असर्वज्ञ देवोमां अहंत्व-ममत्वना कारणथी 'आ मारुं स्थान' ए भावना अवश्य होय छे अने तेओनो वास पण मूर्तिमां सर्वदा थइ शके छे, पण ते संसारी देव होवाथी तेनी स्थापना मात्रथी कांइ परमात्मपूजनलुं फल अथवा ध्यान प्राप्त थाय नहीं, एवं आ स्थापना परमात्मानी स्थापना एवो पण निर्देश थइ शके नहीं. वक्ती अहीं परमात्मानी स्थापना अभिग्रेत छे माटे आ संसारी देवनी स्थापना पण अमुख्य स्थापना मानी छे. हवे परमात्मदेव विषयक निजभाव स्थापनाकर्त्तामां अवश्य छे तथा ते स्थापनाकर्ता अहीं ज विद्यमान छे अने मूर्ति पण अहीं ज दृश्यमान छे, एटले परमात्म संवर्धी पवित्रभाव प्रतिष्ठाकर्ता स्वहृदयमां आरोपी ते ज भाव बहिर्वर्ती पापाणमूर्तिमां पण उपचारथी मंत्रादि संस्कारो-द्वारा निश्चयेन करी शके, अतएव ए ज ग्रतिष्ठा अहीं मुख्य प्रतिष्ठा आचार्यदेवे कही.

ए ज वातनी अधिक पुष्टि माटे आचार्यथी फरीने जणावे छे.

इज्यादेन्न च तस्या,

उपकारः कश्चिद्दत्र मुख्य इति ॥

(३९३)

तदृतत्वकल्पनैषा,

बालक्रीडासमा भवति ॥ ८-७ ॥

मूलार्थ—मोक्षस्थ आत्मानो मूर्तिमां आरोप करी पछी तेनी पूजा, स्नान आदि द्वारा तेने प्रसन्न करवा माटे प्रयत्न करवो, तो आ प्रयत्नथी ते देवने काँइ मुख्य उपकार थयो एम अहीं मानवुं नहीं, कारण के—आ कल्पना ज अपारमार्थिक होवाथी आ प्रतिष्ठा बालक्रीडा तुल्य जाणवी.

“ स्पष्टीकरण ”

मूर्तिमां मोक्षस्थ आत्मानो आरोप करवो तेनुं नाम यथास्थित प्रतिष्ठा. आ मान्यता केटला अंशे विरोधी छे ते संवंधमां अमे ऊपर युक्तिथी विचार करी गया. वळी ए ज मान्यता विषयमां ग्रंथकर्ता विशेष विरोध दर्शावे छे. प्रथम तो मोक्षस्थ आत्मानो आरोप करवो ए ज वार्ता ग्रमाण अने युक्तिथी खंडित छे, छतां मानो के मोक्षस्थ आत्मानो मूर्तिमां आरोप करवानो नितान्त आग्रह ज होय तो ते मोक्षस्थ आत्मा आरोपित मूर्तिने कोइ स्नान, पूजा, अलंकार आदि चडावी एम माने के मैं परमात्माने प्रसंगे कर्या, मारी आ पूजा परमात्माने पहोंची तो शास्त्रकर्ता कहे छे के आ पूजाथी काँइ पण मुख्यतः परमात्माने सुख के उपकार थतो नथी. परमार्थ ए के—तेथी परमात्मा लेश पण सुशी थता नथी, किन्तु आवी पूजा, स्नान, अलंकार आदि चडावी

परमात्माने खुशी करवानी कल्पना करवी ए ज अतात्मिक-
मिथ्या कल्पना छे. शास्त्रकर्ता आ संबंधमां आगल वधीने
जणावे छे के—“ बालक्रीडासमा भवति ” जेम बालको
विविध प्रकारनी बालक्रीडाओ करी, रमतो करी, एक क्षणना
माटे ‘राजा, प्रधान, राणी, सिपाई, चोर आदि बनावो बनावी,
माटीमां बंगलाओ बगीचाओ बनावी, ढिंगला ढिंगली बनावी
आनंद माने छे, सुखनो अनुभव करे छे तेम मूर्चिमां मोक्षस्थ
आत्मानो आरोप करी तेनी पूजाथी परमात्माने संतोष्या
उद्यम करवो अने पोताने कृतकृत्य थया मानवुं ए नितान्त
मिथ्या छे. ते तो बालक्रीडा जेबुं ज गणाय. बालकोनी मान्यता
जेम अभिक छे तेम आ मान्यता पण अभिक ज छे. बाल-
कोनी रमतगमतमां वास्तविक सुख नथी किन्तु केवल
कलेश ज छे, तेम मोक्षस्थ आत्मानो आरोप करी ते मूर्चिने
पूजी परमात्माने संतोष्या एम भानवुं ए पण मिथ्या ज्ञान
नहीं तो बीजुं शुं ? अतएव मूर्चिमां निजभावनो आरोप करी
मूर्चिनी पूजा स्वकल्याणार्थे जेझो करे अने तेवी क्रियाथी
स्वात्माने कृतकृत्य माने ए ज परमार्थ पूजा, ए ज सत्यज्ञान,
ए ज परमात्म संतोषक उपाय कहेवाय. भावार्थ ए के—
मूर्चिपूजा परमात्माने संतुष्ट करवाने करवी नहीं, किन्तु आत्म-
कल्याण मानी, स्वकर्तव्य मानी, स्वधर्म मानी करवी ए ज
शास्त्रनिर्दिष्ट वास्तविक पूजा जाणवी.

वीतराग विषयिक आत्मिक प्रशस्त भावनो

(३९५)

आरोप करવो ते परमार्थ प्रतिष्ठा ए वार्ता दर्शावी, ए ज संवंधमां विशेष अनुसंधान ग्रंथकर्ता आगल जणावे छे.

भावरसेन्द्रात्तु ततो,
महोदयाजीवता स्वरूपस्य ॥
कालेन भवति परमाऽ—
प्रतिबद्धा सिद्धकाञ्चनता ॥८-८॥

मूलार्थ—मुख्य परमात्मानुं अवलंबनरूप भाव ते ज रसेन्द्र एटले पारो तेनाथी पुण्यानुवंधी पुण्यनो लाभ थाय, अने ते वडे कालक्रमे परम अस्त्वलित आत्मानुं सिद्ध सुवर्ण जेवुं रूप वने छे, एटले आत्मा सिद्धस्वरूपी थाय छे.

“ स्पष्टीकरण ”

धातुवादीयो अने सुवर्ण वनावनाराओ ताम्र आदि धातुथी सुवर्ण वनावे छे. आ लोको पोताना प्रयोगमां मुख्यतः पारानो उपयोग करे छे, कारण के आ लोको वनस्पतिना वलथी ताम्रधातुने पाराथी मार्या पछी, पारो अने धातु एक रूप थया पछी ज ताम्रधातुने सुवर्णरूप सिद्ध करे छे. एटले पारो ज परिणामे धातुना रूपने पलटावी नांखे छे, ए ज रीते स्वात्मा परमात्मा वनवा माटे आगल जणावी गया ते रीते परमात्मानुं सुंदर ध्यान करे, स्वहृदयमां परमात्मध्याननी स्थापना करे, आनुं नाम अहीं भाव

मान्यो छे. ए भावने जं ध्यानवेत्ताओ रसेन्द्रं कहे छे. परमार्थ ए के—ए भावरूप रसेन्द्र पारो आव्या पछी तेना प्रभावथी आत्मा सर्व सिद्धि पासी शके छे, ए ज वाती आ ग्रंथकर्ता अष्टक प्रकरणमां कहे छे “शुभानुबन्ध्यतः पुण्यं, कर्त्तव्यं सर्वथा नरैः । यत्प्रभावादपातिन्यो, जायन्ते सर्वं संपदः ॥ १ ॥ सदागमविशुद्धेन, क्रियते तच्च चेतसा । एतच्च ज्ञानवृद्धेभ्यो, जायते नान्यतः क्वचित् ॥ २ ॥” “अतः सर्वथा मनुष्योए शुभं बंधं करनार एवुं पुण्यो-पार्जनं करवुं जोइए, कारण के एना प्रभावथी ज अविनश्वर सर्वं संपत्तिओ प्राप्त थाय छे. आ पुण्योपार्जनं सदागमथी विशुद्धं एवा अंतःकरणथी ज करवुं, अने सदागमज्ञानंनो लाभ ज्ञानस्थविरो पासेथी थाय पण अन्य पासेथी थाय नहीं.” निदान ए के—उपरोक्त भावद्वाराए पुण्यानुबंधीपुण्यनो बंध थाय तेमज तेनी परंपरा चाले जेथी कालक्रमे आ पुण्यानु-बंधीपुण्यनो प्रवाह अनुक्रमे आत्मानी विशुद्धि करी आत्मानुं परम प्रकृष्ट अग्रतिस्खलित निरावाध सिद्धं कांचन तुल्य रूप प्रगट करे छे, एटले एकान्त निरावर्णी निष्कलंक-रूपने आविर्भूत करे छे, जेने परमात्मा एवुं अंमिधान लागुं थाय एवुं स्वरूप प्रकटं थाये छे. अहं अंतरनी विशुद्धिरूप भाव ते पारो अने जीवात्मा ते ताम्र तथा पुण्यानुबंधी-पुण्यं ते चनस्पतिनो रसे, एटले भावरूप पारो जीवात्मारूप तीम्रने पुण्यप्रवर्गहस्ती विधी परमात्मानां रूपमां फेरवी नांखे

(३९७)

छे. अतएव अहीं ग्रंथकर्ताए भावने रसेंद्रनी उपमा आपी, तेमज पुण्यानुवंधीपुण्यनो प्रवाह पण भविष्यमां केवल उच्च-उच्चतर संपत्तिओ अर्पे छे अने आत्माने सद्गति सिवाय अन्य स्थानमां स्थापतो नथी.

केवल पारो पण ताप्र आदि धातुने सुवर्ण बनावी शकतो नथी परंतु अग्निं त्यां खास जरूर पडे छे, एटले अहीं जीवात्मारूप ताप्र धातु शोधनार अग्नि कोण ? ए प्रश्नां समाधान आचार्यश्री जणावे छे.

वचनानलक्रियातः,

कर्मेन्धनदाहतो यतश्चैषा ॥

इतिकर्त्तव्यतयाऽतः,

सफलैषाप्यत्र भावविधौ ॥ ८-९ ॥

मूलार्थ—शास्त्रवचन-आज्ञारूप अग्नि तेनी क्रिया एटले प्रज्वलनपणुं अने तेनाथी कर्मरूप इंधन-काष्ठो तेनो जे दाह भस्मीभाव थवो अर्थात् अग्निमां लाकडा नांखवानी क्रिया करवी-आ प्रमाणे करवाथी आ विम्बप्रतिष्ठा सफल थाय छे, कारण के आ विधान भावपुष्टिमां हेतुभूत थाय छे.

“ स्पष्टीकरण ”

वचन एटले आगमज्ञान तेने अहीं अग्नि कह्वो छे. जेम अग्नि सर्व पदार्थोनो क्षणवारमां नाश करी नांखे

छे तेम शास्त्रज्ञान पाम्या पछी अने ते ग्रमाणे अनुशीलन करवाथी भव्य आत्मा अनादिना दुर्भेद्य कर्मोनो क्षणवारमां आवश्य नाश करी नांखे छे. अतएव शास्त्रमां कहुं छे के—“ अन्वाणि जं कम्मं खवेह, बहुयाहिं वासकोडीहिं । तं नाणी तिहिं गुच्चो, खवेह उस्सासमित्तेण ” ॥ १ ॥ “ अज्ञानी जे कर्मोने घणा क्रोडो वर्षे खपावे ते ज कर्मोने गुर्जेदिय अने गुप्तयोगी ज्ञानी एक श्वासोश्वास कालमां खपावे छे. ” श्री कृष्ण गीतामां अर्जुन प्रति कहे छे के—“ ज्ञानाग्निदग्ध-कर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ” तथा कर्मो अहीं इंधनरूपे मान्या छे एटले वचनरूप अग्निमां कर्मोरूपी इंधननो प्रक्षेप करवाथी तेनो ते नाश करे छे, माटे अहीं “ भावविधौ ” मुख्य देवता विषयक भावविधानमां आ बाब्य ग्रतिष्ठित मूर्च्छा खास पुष्टिकर्ता होवाथी अर्थात् भावशुद्धिकारक होवाथी ‘ सफलैषापि ’ आ मूर्च्छिनी प्रतिष्ठा पण नितान्त सफल ज छे. परमार्थ ए के—मुख्य देव संबंधी खात्मामां ग्रशस्त भावनी ग्रासि थया पछी तेमां स्वात्मा लीन बने छे, अने पछी शास्त्र-नुसारे सर्व चेष्टा स्वीकारी जीवात्मा शुद्ध कांचन तुल्य पर-मात्मभाव ग्रास करे छे. एटले अत्र स्थले भावरूप पारो, जीवात्मा रूप ताप्र धातु, वचनरूप अग्नि आ सर्वनो मेलाप थया पछी भावरूप पारो वचनरूप अग्निमां जीवात्माने तपावी कर्मोनो दाह करे छे, कर्मो भस्मीभूत थाय छे अने आत्मा निर्मल बने छे, परंतु प्रथमना सर्व संयोग ग्रास थाय तदपि

(३९९)

वचन-आगमरूप अग्नि-संयोग भावरूप पारो जीवात्माने
शोधी शके नहीं माटे अहीं वचनरूप अग्निनी निरान्त आ-
वड्यका अपेक्षित छे, तेमज भावनी पुष्टि वाह्य मूर्चिंद्वाराए
ज सावलंबन ध्यानकर्त्ताओने थाय छे परंतु ते त्रिना थाय
नहीं. अतः वाह्यप्रतिप्ठा शास्त्रकर्त्ताए सफल कही.

अरे ! वाह्य मूर्चिंगत निज भावरूप ग्रतिष्ठा कही छे
एहुं कर्त्ताए शाशी जाणइुं ? ए जिष्य हृदयगत प्रक्षनो उचर
आचार्यश्री अहीं करे छे.

एषा च लोकसिद्धा,
शिष्टजनापेक्षयाऽखिलैवेति ॥
प्रायो नानात्वं पुनरिह,
मन्त्रगतं बुधाः प्राहुः ॥ ८-१० ॥

मूलार्थ—आ ग्रतिष्ठा पुरुषपरंपरागत अने लोक
तथा लोकोन्नर सर्वत्र शिष्टजनोनी अपेक्षाए न्याकृत हे,
मात्र आ ग्रतिष्ठामां बुधा विग्रेप नन्च तो मंत्रोपनार
संवंधी आचार्यो जणावे छे.

“ स्पष्टीकरण ”

शास्त्रमां आ ग्रतिष्ठा आचार्यपरंपराशी चाली आवे
छे अने विशिष्ट भव्य आन्माओर्नी अपेक्षाए लोक लोको-
न्नर पदाथोंमां ए ज निजभाव न्यापनस्प प्रनिष्ठा

स्वीकार्यरूपे महर्षियोए दर्शनी हें, अर्थात् आगल जेनुं विस्तृत स्वरूप जणावी गया एज प्रतिष्ठा आचार्योए स्वीकारी हें, कही हें अने हितार्थी भव्योने आदेयरूप हें. तेमज लौकिक लोकोत्तर भावोमां आ प्रतिष्ठा मुख्य मानी हें, मात्र आचार्यों भिन्नता एटली न कहे हें के—निजभावनो जे मूर्तिमां आरोप थाय ते समये आ प्रतिष्ठा करी एवो भाव जनसमूहना हृदयमां विकसाववा मंत्रोच्चार करवो तेमां विविध भेदो हें, एटले भिन्न भिन्न मंत्रद्वारा विविध क्रियाओ करी ते भावनो आरोप थाय हें. आ कारणथी प्रतिष्ठा शास्त्रसिद्ध हें एम कर्तना हृदयमां अवश्य श्रद्धा प्रकटे अने तेमां प्रवृत्ति करे, ते प्रतिष्ठाद्वारा स्वकार्यसिद्धि जरुर करे हें. वस आ समाधानथी उपरोक्त शंका निरस्त थाय हें.

मंत्रादि क्रियामां भिन्नता हें एम उपर कही गया हवे अहीं मंत्रादि क्रियामां क्या प्रकारनी भिन्नता हें ते स्पष्ट करे हें.

आवाहनादि सर्वं,
वायुकुमारादिगोचरं चात्र ॥
सम्मार्जनादिसिद्ध्यै,
कर्तव्यं मंत्रपूर्वं तु ॥ ८-११ ॥

मूलार्थ—प्रतिष्ठा कार्य पूर्वे अन्य देवोने आमंत्रण,

तेओनी पूजा आदि सर्व कार्य, अने वायुकुमार, मेघकुमार आदि देवसंबंधी संमार्जन जलवृष्टि आदि दरेक कार्यो मंत्रोच्चार-मंत्रसंरणपूर्वक जे अवश्य करवा.

“ स्पष्टीकरण ”

जिनप्रतिमा शुभ मुहूर्तमां स्थापवा पहेला विनाशार्थे, धर्मकार्य समाप्त्यर्थे अने औचित्यता पालनार्थे अवश्य मंत्रादि संस्कारद्वारा दश दिग्पालो, लोकपालो, नवग्रहो आदि देवताओंनु आह्वान करखुं, तेओने मंत्रोच्चार साथे बलिवाकूल अर्पवा, तेओनी पूजा करवी अने ते देवसंबंधी जे जे कार्यो होय ते ते कार्य परत्वे संकल्पयी तेओनो विनियोग करवो. तेमज कल्याणक समये जेम वायुकुमार अने मेघकुमार नामक देवताओ आवी भूमिशोधन तथा सुगंधी जलवृष्टि करे छे तेम अहीं भाविकोए मंदिरनी आसपास भूमिशोधनरूप कार्य तेमज सुगंधमिश्रित जलवृष्टि अवश्य मंत्रोच्चार सह करवी. वली अन्य देवताओनी स्थापना पण मंत्रादि क्रियाद्वाराए करवी. अहीं सर्वत्र मंत्रोंनुं स्मरण तथा विविध क्रियाओ पूर्वाचार्यनी परंपराची उतरी आवेल रीतिए करखुं, एटले आ सर्व विधान प्रतिष्ठाकल्प ग्रंथमां तेमज प्रतिष्ठाविधिमां विस्तृतरूपे दशविल छे ते प्रमाणे अने ते विधिना ज्ञाता समीपे तेलुं समुचित ज्ञान कर्या पछी

ज करबुं, जेथी अविधि के अवज्ञानो संभव न रहे अने
शास्त्रज्ञानो लोप न थाय ए खास लक्ष्यमां राखबुं,

आठलो निर्देश कर्या पछी हचे जिनप्रतिमा केवी रीते
स्थापवी ए वात दर्शावे छे.

न्याससमये तु सम्यक्—

सिद्धानुस्मरणपूर्वकमसंगम् ॥

सिद्धौ तत्स्थापनमिव,

कर्त्तव्यं स्थापनं मनसा ॥ ८-१२ ॥

मूलार्थ—जिनप्रतिष्ठा काळे मंत्रस्थापन समयमां
मनःसंकल्पथी सम्यक्तया सिद्धभगवानना स्मरणपूर्वक अने
असंगष्टे तेमां ज लीन वनी मुक्तिमां जेम सिद्धोनी स्थिति
छे तेम सत्-चित्-आनंद रूपनी स्थापना मूर्तिमां नमस्कार-
मंत्र साथे करवी.

“ पष्टीकरण ”

मूर्तिमां ज्यारे मंत्रस्थापन करवो होय ते समये
एटले मूर्तिमां आ बीतराग देव छे एवी कल्पना स्थापवी
होय त्यारे, ज्यां सुधी विधिविधान सह अनेक जनसमूह
समक्ष मूर्तिमां मंत्रस्थापन सह आ मूर्तिमां स्वेष देव छे एवी
कल्पना न थाय त्यां सुधी अन्य सामान्य जन तेनी पूजा
आदि कार्योमां प्रवृत्त थाय नहीं, माटे प्रतिष्ठाकर्ताए ज्यारे

(४०३)

मंत्रारोप करवो होय ते समये प्रथम कही गया ते ग्रन्थाणे
शरुआतमां शास्त्रमां जे स्वरूप कहुँ छे ते रीते सम्यक्ष्यणे
मोक्षस्थ सिद्ध परमात्मानुं स्मरण करवुं, तेओना प्रत्येक गुणोनुं
अने ज्योतिरित्यनुं समुचित ध्यान करवुं, सिद्धना ध्यान
साथे स्वात्मा अभेदभावे परिणये तेम वर्तन करवुं. एटले
आगल जणावी गया ते रीते प्रतिष्ठाकर्त्ताना हृदयप्रदेशमां
सिद्धमूर्च्छिनुं प्रतिविम्ब प्रतिविम्बित थाय तेम करवुं अने पछी
मोक्षमां अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतअव्यावाधसुख ज्योतिरित्ये
विराजे छे ते ज स्थितीए अहीं मूर्च्छिमां प्रतिष्ठाकर्ता “णमो
अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं०” ए मंत्रोच्चारपूर्वक स्वहृदय-
स्थ परमात्मदेव विषयक स्वात्मभावनो आरोप अनेक सशुद्ध
विधि सह मनःकल्पनाथी करे. आ आरोप करती वसते
प्रतिष्ठाकर्ता मन-वचन अने काया ए त्रये योगथी केवल
सिद्ध परमात्मामां ज सोपयोगरूपे वर्णी अन्य कांड पण ख्याल
न राखी एकात्मभावे मूर्च्छिमां हुं केवलज्ञान, केवलदर्शन
आदि शक्तिविशिष्ट चिदस्वरूपनी स्थापना करुँछुं एवुं ध्यान
करे. आनुं नाम योगिझो अने प्रतिष्ठातच्छिं वाश मूर्च्छ-
प्रतिष्ठा निर्देशे छे.

आ प्रतिष्ठा शाभाटे कही ? अर्थात् आ प्रतिष्ठानुं शुं
फल थाय ? ए वातनो उल्लेख शास्त्रकर्ता जणावे छे.

बीजन्यासः सोऽयं,
मुक्तौ भावविनिवेशतः परमः ॥

सकलावच्चक्योग—

ग्रासिफलोऽभ्युदयसचिवश्च ॥८-१३॥

मूलार्थ—आ प्रतिष्ठा विधानथी मुक्तगत परमात्मामां स्वहृदयनी स्थापना थवाथी परम-उत्कृष्ट आ बीज-सम्यक्त्वनो न्यास थाय छे के जेनाथी भविष्यमां समग्र अवंचक-क्योगोनी ग्रासि अने उच्चरोत्तर आत्मिक ऋद्धिओनो संयोग थाय छे.

“ स्पष्टीकरण ”

प्रतिष्ठाकर्ता अने कारयिता वाह्य जिनभूर्तिमां भुख्य देव विषयक निजभावनी स्थापना करी शुंलाभ ग्रास करे छे ? ते अहीं ग्रंथकर्ता दर्शावे छे. एटले आ लोको ‘ बीजन्यासः ’ बीजनो न्यास अर्थात् बीजनी वावणी करे छे, तो जेम कृषिकार चोमासानी आदिमां भूमिमां बीजनुं वावेतर करे छे तेथी परिणामे ए वावेतर अनेकधा फलदायी वने छे तेम अहीं पण वाह्यप्रतिष्ठा कर-वाथी कर्ता अने कारयिता उभय स्वहृदयरूपी भूमिमां तेमज अन्य भव्यात्माना हृदयरूप भूमिमां पुण्यानुवंधीपुण्यरूप अथवा सम्यक्त्वरूप बीजनी स्थापना करे छे. परमार्थ ए के-प्रतिष्ठा करती वस्ते कर्ता तथा कारयिताना हृदयो परमात्माना ध्यानमां निमग्न वने छे. खास परमात्मानुं ध्यान कर्वुं ए शुभ पुण्यवंधनुं परम कारण छे. एथी उच्चरोत्तर पुण्य-

ग्रवाह चाल्या करे छे, अगर परमात्मानुं ध्यान ए सम्यक्त्वनुं अंग छे, तथा अन्य जनो आ प्रतिष्ठा निहाळी तेनी प्रशंसा करे छे, अनेक लोको तेनुं ध्यान, अनुमोदन अने पूजन करे छे, अतएव आ लोको पण शुभपुण्यनो वंध पामी पुण्य-कार्यनो प्रवाह बहेवडावे छे, स्वहृदयने निर्मल करी सम-कितनो लाभ करे छे, एटले अनेक आत्माओने आ प्रतिष्ठा शोभन फलदात्री थवाथी खास 'वीजन्यास' रूप बने छे. आठलाथी ज आ प्रतिष्ठानुं कार्य पूर्ण थतुं नथी, परंतु वीज जेम उत्तरकालमां अनेक फलो अर्पे छे तेम अहीं आ 'वीज-न्यास' पण आत्मिक अभ्युदय-उच्चतिक्रममां सहायक थवा साथे सद्योगावंचक, फलावंचक अने क्रियावंचक ए त्रण योगरूप फलग्रासि करावे छे. निदान ए के-पुण्यानुबंधीपुण्यनो वंध थया पछी अथवा समकित प्राप्त थया पछी विशुद्ध आत्मा उत्तरोत्तर चडती कळद्धिओनो अनुभव करे छे, उत्तम उत्तम स्थानमां अने विशिष्ट गतियोमां के ज्यां संपत्ति, आनंद, निर्मयता अने गुणग्रासि तथा धर्मग्रासि थाय त्यां जन्म धारण करे छे ने परिणामे आत्मिक उच्चतिक्रममां आगल वधे छे; कारण के-समकित लाभ थया पछी शास्त्रकर्ता कहे छे के—“ समद्विष्टि जीवो विमाणवज्ज्ञं न वंधए आउं ” सम्यग्दृष्टि आत्मा वैमानिक देव सिवाय अन्य आशुष्यनो वंध न करे. आथी आ 'वीजन्यास' अभ्यु-दय-उच्चतिसहायक कहुं तेमज समग्र योगोनी अवंचकता-

(४०६)

रूप फलदायी मान्युं हे. अहीं शास्त्रोमां सद्योगावचक, फलावचक, क्रियावचक एम त्रण योगो कहा हे. आ त्रणे योगोनुं स्वरूप योगदृष्टिसमुच्चयमां आ प्रभाणे दर्शन्युं हे. “सद्भिः कर्त्त्याणसंपन्नैर्दर्शनादपि पावनैः । तथा-दर्शनतो योग, आवावचक उच्यते ॥ १ ॥ तेषामेव प्रणामादि-क्रियानियम इत्यलं । क्रियाऽवचकयोगः स्या-न्महापापक्षयोदयः ॥ २ ॥ फलावचकयोगस्तु, सद्भ्य एव नियोगतः । सानुबन्धफलावासि-धर्मसिद्धौ सतां मता ॥ ३ ॥” आ त्रणे योगोनुं विस्तृत स्वरूप योगदृष्टिसमुच्चय ग्रंथमां ग्रंथकर्ताए वहु सारी रीते दर्शन्युं हे, माटे पाठकोए त्यांथी जोइ लेवुं.

बीज वाच्या पछी कर्पको यदि तेनुं रक्षण-संवर्द्धन न करे, आसपास उगेलुं घास दूर करी ते बीजनी संमाळ न करे तो वावेलुं बीज जल, वायु आदि अनुकूल साधनो छतां पण विणसी जाय हे तेम अत्रे पण सम्यक्त्व तथा पुण्यानुवंशी-पुण्यरूप बीज वाच्या पछी तेना रक्षण अने संवर्द्धनना अभावे विणशी जाय माटे आचार्यश्री आ वावेल बीजलुं संवर्द्धन केम करवुं तेनो उपाय दर्शवि हे.

लवमात्रमयनियमाद्—
उचितोचितभावद्विकरणेन ॥

क्षान्त्यादियुत्तैर्मन्त्र्यादि— संगतैवृहणीय इति ॥ ८—१४ ॥

मूलार्थ—प्रतिष्ठासमयगत आ आत्मिकभाव एक सामान्य मात्र होय छे, तो पण ते भावने उचित-समुचित भाववृद्धिना उपायोथी तथा क्षमा आदि गुण संपादन करीने तेमज मैत्री, करुणा आदि भावनाओथी उत्तरोत्तर जरुर बधारवो.

“ स्पष्टीकरण ”

अनादिथी अग्रास अने दुर्लभतर परमात्म विषयक भावना अगर ध्यान, प्रतिष्ठाना प्रभावथी कर्ता—कारणिता तथा अन्य जनोने ग्रास थाय छे. आ भाव परमात्मा साथे एकत्वपूर्ण, आत्माना सद्विचारो विग्रेरे प्रतिष्ठा सम्बे तो अत्यंत अल्प होय छे, एटले अन्य अन्य पौद्गलिक संबंधी विचारो—भावोनी अपेक्षाए वहु थोडो होय छे, परंतु स्वात्माने परमात्मपूर्ण ग्रास करवा पूर्वोक्त मावनुं यथोचित रूपे ग्रथम तो रक्षण करवुं आवश्यक छे, अने पछी ते भावने बधारवा सारुं आसपासना ते भावनुं खंडन करनारा साथनो—कारणो दूर करी दिवसालुदिवस ते भाव प्रफुल्लित थाय तेवा उचित-प्रशस्त संयोगो—कारणो एकत्र करी ते भावने बधारवा दत्तचित्त थवुं. अर्थात्-नित्य परमात्म स्वरूपलुं ध्यान, पूजा, स्मरण अने परमात्म संबंधी आज्ञानुं पालन

(४०८)

अवश्य करतुं. क्षणिक विषयसुखना साधनो दूर करी आत्मा संबंधी मुख्य धर्मनो खास विचार करघो, साथे साथे संसारनी असारता, विषयोनी कहुता, धननी चंचलता अने कुहुंवनी स्वार्थलोलुपता पण भाववी. आथी प्रतिष्ठा समयमां प्राप्त एक सामान्य भाव पण पाछलथी विस्तृतरूपे थइ अति म्होटा प्रमाणमां थइ जाय छे. अहीं शास्त्रकर्ता आ भावने वधार-वाना साधनो स्वयं उत्तरार्धथी दशवि छे. “ क्षान्त्यादि-युतैः ” प्रतिदिन क्षमा, मृदुता, आर्जव, संतोष आदि आत्माना परमधर्मोनी भावना करी तेनुं स्वरूप विचारी उपरोक्त भावने वधारवो, एटले आ रीते जलसिंचन करवाथी ते भावनी वृद्धि थाय छे. परमार्थ ए के-जेम जलसिंचन विना अथवा दाह पडवाथी बीज वधे नहीं पण विणशी जाय तेम अहीं पण उत्तम परमात्म संबंधी अल्प प्रशस्तभाव अगर ध्यानरूप बीज जलसिंचन विना अथवा तो अनादिथी आत्माना खूणामां घर करीने वेठेला क्रोध, मान, माया, लोभ आदि शत्रुओ—अग्रिज्वालाओ प्रदीप थवाथी ते भावरूप बीजांकुर भस्मीभूत थइ जाय; माटे विवेकीए ते भावनी वृद्धि करवा अर्थे, आ अग्रिज्वालाओने बृजाववा आविर्भाव न पासे ते निमित्ते श्रीमान् विनयविजयजी महाराज कहे छे तेम—“ क्रोधं क्षान्त्या माईवेनाभिमानम्, हन्या भाया मार्जवेनोर्जव-लेन। लोभं वारां राश्चिरौद्रं निरुद्ध्याः, संतोषेण प्रांशुना सेतुनेव ” ॥ “ क्षमाथी क्रोध, नग्रताथी अभिमान, उज्ज्वल

(४०९)

एवी सरलताथी माया अने जेम सेतुबंधथी लल रुंधाय तेम संतोषरूपी माटीथी लोभरूप रौद्र जलसमूहनो रोध करवो. ” अहीं क्रोधादि ज्वालाओने बूझावनार, उदयने रोकनार क्षमा आदि भावनो अहर्निश विचार करवो अत्यावश्यक योगियोए कहो छे, कारण के एम करवाथी ज परमात्म संवंधी भावनी नितान्त धृद्धि अने आत्मिक गुणनो विकास थाय छे. आपणा घरनी मिलकत अन्य कोइ द्वावी दे तो तेना सामे सख्त उपायो लेवाथी—ज्ञानमवाथी ज ते मिलकत आपणा हाथमां आवे, परंतु तेवा समये सहनशीलता राखवाथी अगर कायरता करवाथी मिलकत पाढी आवे नहीं किन्तु थोडी-घणी होय ते पण आपणी निर्वलता देखी अन्य शब्दुओ पडावी जाय. क्षमा आदि विचारसुं स्वरूप तत्त्वार्थ-भाष्यमां उभाखातिवाचकजी आ प्रमाणे दर्शावे छे.

“ क्रोधादि शांतिनो उपाय ”

“ क्रोधनिमित्तस्यात्मनि भावाभावचिन्तनात् ”
कोइ पण मनुष्य आपणा पर ज्यारे क्रोधाविष्ट थाय त्यारे विचारसुं के—आ मनुष्य मारा सामे क्रोध शा माटे करे छे ! मैं तेनुं कांइ पण नुकशान करी तेना साथे कदायि विरोध कर्यो छे ? अथवा प्रतिकूल वर्तन मैं आचर्यु छे ? आ रीते विचार करी यदि जो मैं अपराध कर्यो छे, विरुद्ध वर्तन कर्यु छे, नुकशान कर्यु छे तो तेनो जे क्रोध छे ते व्याजवी ने योग्य छे; अने मारे ते अवश्य सहन करवुं जोहए कारण के—आ गुन्हानी शिक्षा

छे. गुन्हानी शिक्षा सामे रोप करवो ए तो बालचेष्टा गणाय. यदि विचार करता एवं जणाय के-स्वप्ने पण अपराध, नुकशान के अन्यथा वर्तन कर्यु नधी छतां आ माणस क्रोध करे छे तो ते अज्ञानी छे, अज्ञानधी प्रलाप करे छे, अज्ञानी सामे प्रलाप करवाथी हुं पण अज्ञानी ज ठर्ह, आधी पण मारे क्रोध करवो अघटित ज कहेवाय. ए ज परमार्थनो अनुवाद पूर्वाचार्यों एक सुभाषितथी उपदेशे छे. “ आकुष्टेन मतिमना, तत्त्वार्थगवेषणे मतिः कार्या । यदि सत्यं कः कोपः, स्यादवृत्तं किं तु कोपेन ” ॥१॥ आटलो विचार करवाथी पण जो क्रोध निष्फल थाय नहीं तो “ क्रोधदोषचिन्तनाच्च ” क्रोधनुं फल विचारुं. क्रोध करवाथी प्रथम तो पोतालुं शरीर तपी जाय, कंठ सुकाय, वेचेनी थाय, मान भूली जवाय, अनाज पर अरुचि थाय, बुद्धि अष्ट थाय, स्वकर्तव्य अने विवेक विसरी जवाय, प्रेमनो नाश थाय, इजत चाली जाय, लोकोमां क्रोधीपणानी ख्याति थाय अने छेवटे पुण्यफलनो पण नाश थाय. आ हेतुथी पण क्रोध करवो अघटित ज छे. आम विचार करवा छतां क्रोध न रोकाय तो “ बालस्वभावचिन्तनाच्च ” बालस्वभावनो विचार करवो. अज्ञानीनी ज ए टेव होय छे के-परोक्षमां तथा प्रत्यक्षमां निष्कारण कोप करवो, तेमज ताडन, मरण अने धर्मअष्ट लोकोने करवा; परंतु विवेकीए विचारखुं जोइए के ते अज्ञानी

विचारा परोक्षमां ज कोप करे छे पण प्रत्यक्षमां आवता नथी
 ए ज महान् लाभ थयो. यदि प्रत्यक्षमां कोप करे तो ते कोप
 करी संतोष माने छे परंतु मने मारता नथी ए ज तेओनो
 उपकार थयो. कदाचित् मारे तो तेओ कांइ मारा प्राणनो
 नाश करता नथी किन्तु मारीने दृस थाय छे. कथंचित्
 प्राणनो पण तेओ वियोग करे तो पण मने धर्मभ्रष्ट करता
 नथी, मारो धर्म कायम रहेवा दे छे ए ज तेओनो म्होटो उप-
 कार मारा पर थयो. आम विचारी उदयगत कोप निष्फल
 करवो, ए ज भाव महर्षिओ जणावे छे. “ अकोशाहणण-
 मारणधम्मभंसाणवालसुलहाणं । लाभं मज्जइ-
 धीरो जहुत्तराणं अलाभंमि ” ॥ १ ॥ अन्तमां कोप
 निष्फल करवा माटे आ विचार करवो “ स्वकृतकर्मफला-
 भ्यागमाच्च ” ज्यारे क्रोधथी धसी आवी कोइ आपणा
 प्राणनो पण नाश करे त्यारे विचारबुं के आ सर्व मारा कृत-
 कर्मबुं ज फल छे. पूर्व जन्ममां आ लोको साथे तेवा प्रकारनो
 लेणदेणनो संबंध कर्यो हशे, में तेओने हेरान कर्या हशे,
 मार्या हशे, प्राणवियुक्त कर्या हशे एटले तेओ अत्यारे मारा
 पासेथी तेनो बदलो वाळे छे. कोइबुं पण देबुं कर्या पछी ए
 ज्यारे मागे त्यारे विनासंकोचे प्रसन्नहृदये पालुं अर्पबुं जोइए
 तेमां कोप करवो ए तो व्यवहारथी पण विरुद्ध ज गणाय.
 अहीं पण देबुं चूकावाय छे तो पछी सामो कोप शा माटे
 करवो ? आम विचारी छेवटे कोपने दबावी देवो, उदय न
 थाय तेम करबुं.

क्रोध अने मानने आपसमां अति निकट संबंध छे अर्थात् ज्यां मान होय त्यां कोप जहर पोतानो प्रभाव दग्धिवे छे, एटले कोप अने मान सहचारी छे, माटे ज ते बन्नेने सर्वज्ञ द्वेषना घर कहा छे. द्वेषमांथी ते उद्भवे छे. आ मानने दूर करवा नमृता, मृदुतानो अम्यास विवेकीए अवश्य करवो. परमार्थ ए के—सर्वदा विनीतभावे—नम्रभावथी वर्त्तवृं अने गर्व न करवो ए मृदुतानुं चिह्न कर्तुं छे. आम वर्तवाथी माननो आविर्भाव न थाय. जनताने जाति, कुल, स्प, अैश्वर्य, बुद्धि, श्रुत, लाभ, पराक्रम आ आठ कारणोथी गर्वभाव, अकडपणुं, उद्धताइ, उच्छ्रुत्वलपणुं, कहकाह आवे छे. अन्य जनोनी अपेक्षाए पोतानी श्रेष्ठ जाति होय, श्रेष्ठ कुल होय, उत्तम सुंदर स्प होय, विग्रेप अैश्वर्य—प्रमुद्दताइ—अधिकार होय, विशिष्ट बुद्धि होय, विग्रेप श्रुतवोध होय, विशेष प्राप्ति थाय, अतिवल होय, आ सर्व मदना कारणो जाणवा. आ कारण संयोगथी परनी निंदा करे, स्वात्मानी प्रशंसा करे अने आम करवाथी अतिहलका कर्मनो बंध करी आत्मा विवेक विमरी जाय, स्वकर्तव्यथी अष्ट थाय, म्होटा—न्हानापणानुं भान न राखे तेम ज जे जे पदार्थ संबंधी मद कराय ते ते पदार्थो जन्मांतरमां अधमस्पै प्राप्त थाय आम विचारी माननो त्याग करवो, उद्यग्राप्त होय तो द्वावी देवो अने भविध्यमां उद्य थवा देवो नहीं.

हृदयनी मायाग्रंथीने दूर करी सरलता—निष्कपटपणुं धारण

करबुं तेनुं नाम मृदुता. लेश पण माया उत्तम पदार्थ माटे करीए
तो पण महिनाथजीनी माफक अकल्याणकर्ता थाय छे, तो
पछी विशिष्ट अने विशिष्टतर सांसारिक अनुत्तम पदार्थो माटे जे
माया सेवीए तेनुं तो केबुंए अनिष्ट फल ग्रास थाय ? मायी-
जननो कोइ विश्वास करे नहीं, कारण के मायीजन सर्वदा
सर्व कार्योमां प्रपञ्चने ज आगल करे छे. आशी मायीने बुध-
जनो सर्प तुल्य माने छे, तेमज ज्यां सुधी हृदयमां लेश पण
पण सारी के खोटी माया होय त्यांसुधी हितकारी प्रवृत्तिनुं
सुंदर फल पामे नहीं माटे माया त्याग करी सर्व कार्योमां
सरलता धारण करवी जोइए.

जगत्मां ‘ लोभमूलानि पापानि ’ सर्व पापनुं मूल
अने अनर्थपरंपरानुं खास कारण लोभ ज छे. हृदयना मेलोनी
जड घालनार पण लोभ कहो छे, लोभावश आत्मा कदापि
शान्ति अनुभवतो नथी, लोभी प्रतिष्ठा सन्मान अने आवरुने
गणतो नथी, लोभी प्रेमसुखनो अनुभव अने कुहंचनो प्रेमपात्री
वनी शकतो नथी, तेमज आ लोक अने परलोकना सुख
अर्थे लोभी धर्म पण सेवी शकतो नथी, वळी लोभी उपार्जित
लक्ष्मीनुं सुख भोग्यपदार्थ तथा शान्तनिद्रानो पण अनुभव
करी शकतो नथी. आशी लोभनो त्याग करी संतोष धारण
करवो जोइए. हेतु ए के—‘ संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं
शान्तचेतसां । कुतस्तद्वन्द्वन्द्वधाना-मितश्चेतश्च धा-
वतां ” ॥१॥ “ संतोषरूप अमृतथी तृप्त एवा शान्तहृदयी

जनोने जे सुख होय ते सुख धनमां लुब्ध अने ज्यांत्यां भटकनार आत्माओने क्यांथी होय ? ” एकान्त आत्मिक सुख अने स्वकल्याणनी सिद्धि लोभनो परित्याग करी संतोष धारवाथी ज थाय छे. लोभ एटलो वूरामां वूरो छे के चतुर्दश पूर्वधरो पण उपशमश्रेणि पर आरूढ थया पछी त्यांथी लोभना उद्यथी गोथुं खाइ निगोदमां प्रवेश करे छे. आम विचारी अन्तमां समजुए लोभनो अवश्य त्याग करवो उचित छे, अर्थात् लोभनो नाश करवा संतोपरूप खड्ग धारण करवुं.

आ रीते क्रोध, मान, माया, लोभना प्रतिविरोधी क्षमा, मृदुता, आर्जवता अने संतोष संबंधी उपरोक्त भावना हृदयमां धारण करी, प्रथम कही गयेल प्रतिष्ठासमयमां प्राप्त थयेल अल्प शुभ भावनी वृद्धि करवी अर्थात् आ प्रमाणे जलनुं सिंचन करी आ भावरूप वीजने वृद्धिंगत करवुं. वली शास्त्रकर्ता फरी आ वीजवृद्धिनो उपाय “ मैत्र्यादिसंगतैः ” ए पदथी विशेष जणावे छे. मैत्री, करुणा, प्रमोद, माध्यस्थय ए चारे भावनाओ प्रतिक्षणे विचारवी. आ चार भावनाओ सम्यक्क्वने पुष्ट करे छे. आलुं विस्तृत स्वरूप अमे आगल जणावी गया छीए, ते स्वरूपने ध्यानमां उतारी तेनुं स्वरूप विचारवुं, आ प्रमाणे आ चार भावना अने क्षमा आदि चार भावोलुं स्वरूप नित्य विचारवाथी, तेनुं ध्यान करवाथी अवश्य अंतरात्मा विशुद्धतर थाय छे, उपरोक्त अलम्य भावनी वृद्धि पण थाय; माटे अहीं ग्रंथकर्ताए

(४१५)

जणाव्युं के—क्षमा आदिथी अने मैत्र्यादि भावनाथी आ भाव-रूप बीज “ संवर्द्धनीयः ” वृद्धिगत करवुं.

आ रीते भावरूप बीजवृद्धिनो उपाय दर्शकी फरी
ते ज बीजवृद्धिनो अन्य उपाय ग्रंथकर्ता जणावे छे

निरपायः सिद्धार्थः,
स्वात्मस्थो मन्त्रराडसंगश्च ॥
आनन्दो ब्रह्मरसश्चिन्त्य—
स्तत्त्वज्ञमुष्टिरियम् ॥ ८—१५ ॥

मूलार्थ—अपाय वगरनो, जेनाथी सर्व अर्थनी सिद्धि थाय
एवो, स्वात्मामां रहेनार, सर्व मंत्रोमां मुख्य मंत्रभूत, उपाधि
रहित, आनन्दस्वरूप अने ब्रह्म, सत्य, तप अने ज्ञान एनो
रसरूप तेमज सर्वज्ञ शासनमां तत्त्वज्ञाननी खास मुष्टिरूप आ
प्रतिष्ठासमयगत भावनो वारंवार विचार करवो.

“ स्पष्टीकरण ”

जेवी रीते प्रतिष्ठासमयमां लभ्य उत्तम भावनुं सं-
क्षण—संवर्धन माटे आपणे आगल विचार करी गया तेम
अहीं शास्त्रकर्ता फरी ते ज भावनो वृद्धि माटे आ भावनी
महत्ता अने तेनुं फल विचारवानुं जणावे छे, अर्थात्
पदार्थ परनो मोह, तेनुं स्वरूप, तेनी महत्त्वता अने तेना फलो

विचारवाथी वधे छे. अहीं आ श्लोकमां प्रत्येक पदो प्रतिष्ठा-समयलभ्य भावना विशेषतया ग्रंथकर्ताएँ धर्या छे एटले ए भाव केवा प्रकारनो छे एम दर्शाव्युँ छे. श्लोकान्तरगत प्रत्येक विशेषणो सार्थ अने समन्वित होवाथी अतिगंभीर बुद्धिए विचारवा योग्य छे. प्रथम तो शास्त्रकर्ता कहे छे के—‘निरपायः’ अपाय एटले विज्ञो—पापो—दोषो तेनाथी अतीत निरनिराळो आ भाव छे. हेतु ए के—आ भावनी ग्रासि थया पछी आत्माने अनर्थकारी प्रत्यवायो नडता नथी; किन्तु अनर्थपरंपरानो नाश ज थाय छे. आम छतां ‘सिद्धार्थः’ आ भावनी ग्रासि वाद् सर्व अर्थोनी आवाद् सिद्धि-निष्पत्ति थाय छे. एवं आ भाव ‘स्वात्मस्थः’ स्वात्मवृत्ति ज छे अर्थात् ते वाह पदार्थवृत्ति नथी; कारण के—वाहपदार्थवृत्ति भाव पौद्वलिक कहेवाय अने ते पापकारी होवाथी एकान्त हेयरूप छे ज्यारे स्वात्म संवंधी भाव विशुद्धतर अने शुभ फलदायी होवाथी अंगीकार्यरूप कहो छे. तथा मंत्रो जेम विशिष्ट फलकारी अने आराध्य होय छे तेम आ भाव पण खास आत्मिक शक्तिओनो विकासकारी अने अनंतशक्ति प्रकटावनार होवाथी ‘मंत्रराद्’ मंत्रराज जाणवो. फरीने ए ज भाव मायालेपथी निलेप होवाथी असंगरूप पण छे, अने आत्मानो परमशुद्ध अग्रतिपाति अने शाश्वत आनंददाता होवाथी आनंदरूप पण जाणवो. अन्तमां शास्त्रकर्ता दूँकमां जणावे छे के—‘ब्रह्मरसः’ सत्-चित्-आनंद ए त्रिगुणरूप

(४१७)

जे ब्रह्म तेनो ज उपरोक्त भाव ते रसभूत पदार्थे अर्शात् सारतत्त्वे छे, एटले आ भावनो संपूर्ण विकास थया पछी अवश्य ब्रह्मस्वरूपनो आविभाव थाय, अने सर्वज्ञमतमां आ भाव ग्रास करबो ए ज तत्त्वज्ञमुष्टि छे, परमार्थ ए के-सर्वज्ञना शासननो फलितार्थे छे.

ये श्रीते प्रतिष्ठानी विधि अने तत्संबंधमां खास वक्तव्य कहा पछी अन्तमां आ संबंधमां अवशेष वक्तव्य कही गंथकर्ता आ प्रकरणनी समाप्ति स्वच्छे छे.

अष्टौ दिवसान् यावत्,
पूजाऽविच्छेदतोऽस्य कर्त्तव्या ॥
दानं च यथाविभवं,
दातव्यं सर्वसत्त्वेभ्यः ॥ ८-१६ ॥

मूलार्थ—आ प्रतिष्ठित विम्बनी आठ दिवस सुधी निरंतर अनेक प्रकारनी पूजा अवश्य करती अने विभवाहुसारे सर्व प्राणीयोने दान पण जरुर आपडुं.

“ स्पष्टीकरण ”

आगल कहा प्रमाणे विधिसह जिनविम्बनी प्रतिष्ठा कर्या पछी अवश्यमेव आठ दिवस पर्यंत अष्टप्रकारी,

सत्तरप्रकारी अथवा एकवीश्वप्रकारी पुण्य, धूप, दीपक, नैवेद्य आदि पदार्थोंवडे पूजा करवी. अहीं मूलमां ‘अष्टौ दिवसान्’ ए वाक्य धर्यु होवाथी तेनो परमार्थ, ए के— अष्टान्हिका महोत्सवरूप पूजा करवी अने याचकोने पोतानी शक्त्यनुसार दान पण आपबुं, अथवा सर्व जीवनुं संरक्षण थाय तेम अभयदान आपबुं, एटले जीवोनी हिंसा बंध कराववी.

षोडशक्रम्यविवरणस्य

पूर्वार्धः सम्पूर्णः

આ પુસ્તકના પહેલાથી ગ્રાહક બની મદ્દ આપનાર મહાશયોની નામાવલી.

ગ્રંથની સર્વ્યા	ગ્રાહક નામ	ગ્રામ
૧૦૧ શા. ગ્રેનમલજી વેદ		મદ્દાત
૧૦૧ શા. કાનમલજી ભેસુગસજી		"
૫૧ શા. હજારીમલજી રૂપર્ચંદજી		"
૫૧ ઢા. ઢા. કેપની		"
૨૫ શા. સાકરર્ચંદ તિલોકર્ચંદ		"
૨૧ શા. કેશરીમલજી મગનમલજી		"
૩૧ શા. સાગરમલજી સુજાનમલજી ગોલેચ્છા		"
૨૫ શા. રૂપર્ચંદજી છોગમલજી ગોલેચ્છા		"
૨૫ શા. ગુલરાજજી ફોઝરાજજી કાનુંગે		"
૨૫ શા. કેશરીચંદજી કંબરલાલજી		"
૨૧ શા. ધાલર્ચંદજી મુરલીધરજી માલુ		"
૨૧ શા. શેરમલજી માણેકલાલજી શ્રીશ્રીમાલ		"
૨૧ શા. મુહુર્ચંદજી હંસરાજજી		"
૧૭ જે. એમ્ઝ. શેઠ		"

१५ धी. काठियावाड सायकलं कंपनी	"
१५ धी. पोश्युलर सायकलं कंपनी	"
११ शा. सुरजमलजी श्यामलालजी	"
११ शा. हिंदुजी रामाजी	"
११ शा. हीराजी बनेचंदजी	"
११ शा. चावला तेजराज दलाल	"
१० शा. नागजी पुरयोत्तम	"
१० शा. माणेकलाल त्रीकमलाल	"
७ शा. धूलचंदजी गेवरचंद श्रीश्रीमाल	"
७ शा. सी. जे. शेठ	"
७ शा. हरखचंद रूपचंद	"
५ शा. सरजमलजी कोठेसा रायपेठ	"
५ शा. वृद्धिचंदजी कोठेसा विलिवाकम्	"
५ शा. नथमलसोलंकी पुनमली कंटोनमेंट	"
५ शा. ताराचंद खेमराज चितादरिपेठ	"
५ शा. माणेकलाल वेताला	"
५ शा. कलीरामजी जुगराजजी	"
५ शा. छगनलाल लखभीचंदजी	"
५ शा. तिकलजी मोतीजी	"
५ शा. रूपचंद छवीलदास	"
५ शा. देवराजभाइ कच्छी	"
५ शा. साकरचंद गुल्वाजी	"

५ शा. अंबालाल भूरमलजी	"
५ शा. रतनचंदजी चूनीलालजी	"
५ शा. जेठमलजी गेंनमलजी	"
५ शा. मुलतानमलजी मिसरिमलजी	"
५ शा. बनाजी शंकरलालजी	"
५ शा. भश्वतमलजी रिखमदासजी	"
५ शा. फुसाजी कस्तूरचंदजी	"
५ शा. भूताजी पुनमचंदजी	"
५ शा. मूलचंदजी शंकरलालजी	"
५ शा. सवदानमल खीमचंदजी	"
५ शा. भूरमलजी भश्वतमलजी	"
५ शा. सोगालाल कसनाजी	"
५ शा. लुंधाजी भगवानजी	"
१० शा. भगाजी सोनमलजी	"
४ शा. नेमिचंदजी झावक	"
४ शा. मंगलचंदजी अमरचंदजी	"
४ शा. सूरजमलजी भलेचंदजी	"
३ शा. चूनीलाल जेसंगभाइ	"
३ शा. खीमचंद जेसंगलाल	"
३ शा. जोधाजी मनीराम	"
३ शा. फोजमलजी मूलचंदजी	"
३ शा. गुलावचंद बादरमल	"

३	शा. हर्दुजी देवीचंदजी	"
३	शा. हजारीमल जीवराज	"
३	शा. सूरजमलजी अमरचंदजी	"
२	शा. परतापमलजी सागरमलजी	"
२	शा. सुजाणमलजी सोभागमलजी	"
२	शा. सरीदानजी आशकरणजी	"
२	शा. लालचंद चांदमलजी कोठारी	"
२	शा. लक्ष्मीलालजी माणेकलाल	"
२	शा. हायाजी नथमलजी	"
२	शा. कानाजी जुहारमलजी	"
२	शा. मूलचंद देवीचंदजी	"
२	शा. लक्ष्मीलालजी मिसरिलालजी वेद	"
२	शा. रामसुख लागुचंदजी लुणीया	"
२	शा. भानाजी ताराचंद	"
२	शा. मलोकचंद कस्तूरचंद	"
१	शा. सलराजजी	"
१	शा. गणेशमलजी	"
१	शा. चूनीलालजी छाजेड	"
१	शा. केसरिमलजी शेशमलजी	"
१	शा. गंभीरमलजी फूलचंदजी	"
१	शा. नथमलजी अनराजबी	"
१	शा. भोमराजबी पनरोटीवाला	"

(४२३)

१ शा. मोहनलाल माणेकलाल	शावक	
१ शा. पृथ्वीराजजी धोवीपेंठ		"
१ शा. जेठमलजी कोटडीया		"
१ शा. सुखलाल कंवरलाल		"
१ शा. मेगराजजी केसरीचंद कोटडीया		"
१ शा. मोतीचंदजी शेठीया		"
१ शा. वस्तमलजी कानमलजी		"
१ शा. अनराजजी वोरा		"
१ शा. समरथमल मिश्रीमल संकलेचा		"
१ शा. रावतमल अमूलकचंद		"
५ शा. जवारमल रावतमलजी		"
५ शा. मोतीलाल वीरचंदजी लुणीया		"
२ शा. जवानमलजी जीवराजजी		"
२ शा. किसनचंद चांदमलजी		"
२ शा. रेकचंदजी लक्ष्मीलालजी		"
२ शा. सुगनमलजी नेमिचंदजी छळाणी		"
१ शा. जेठमलजी आशकरणजी		"
५१ शा. लुंबाजी साकलचंद		बीजापूर
११ शा. शिनाजी अमीचंद		"
११ शा. नवलमल लालचंद		"
७ शा. वीरचंद कपूरचंद		"
५ शा. वनाजी साकलचंद		"

(४२४)

५ शा. गुलाबचंद	रायचंद	"
५ शा. गणपतचंद	नानचंद	"
५ शा. बनाजी जेसाजी		बागलकोट
५ शा. हीराचंद	केरिंगजी	अगरखेड
५ शा. फतेमलजी	तेजमलजी कोठारी	बेलगामकेप
३ शा. मृलाजी मंछाजी		वीजापूर
२ शा. गुलबाजी	लालचंद	"
२ शा. चीमनाजी	मकनाजी	"
२ शा. सोमचंद	दलीचंद	"
२ शा. नरसीदास	कानजी	"
२ शा. असीचंद	दलीचंद	"
२ शा. मानमल	जीवणजी नाहार	"
१ शा. रायचंद	छगनलाल	"
१ शा. प्रेमचंद	खुशालजी	"
१ शा. उकाजी	चुनीलाल	"
१ शा. रायचंद	खुशालजी	"
१ शा. त्रिमोहनदास	केसवजी	"
१ शा. वस्तिमल	हस्तिमल	"
१ शा. मणीलाल	मीयाचंद	"
१ शा. भूताजी	देवाजी	"
१ शा. बनेचंद	रतनाजी	"
१ शा. जवेरचंद	दलीचंद	"

१ शा. गोविंदजी कस्तूरचंद नाहार	”
१ शा. गुलाबचंद नानचंद	”
१ शा. पुनमचंद हीराचंद पटणी	आरग
२५ शा. हीराजी श्रेयमलजी	तेनाली
२० शा. रतनाजी चंदनमलजी	”
२० शा. जहराजजी जशराज	”
१५ शा. ताराजी मिश्रीमलजी	”
१५ शा. छोगमलजी लछीराम	”
१० शा. लालचंद खुशालचंद	”
१० शा. पेमाजी साकलचंदजी	”
१० शा. शिवराजजी धरमचंदजी	”
१० शा. पेराजमल मूलचंद	”
१० शा. जेरूपजी छोगमल	”
८ शा. राजाजी रुग्नाथजी	”
७ शा. खुबाजी केसरिमलजी	”
५ शा. पेमाजी जीवराज	”
५ शा. गुलबाजी चुनीलाल	”
५ शा. भगवानजी गुलाबचंद	”
५ शा. सागरजी केसरिमलजी	”
५ शा. चेनाजी खुबचंद	”
५ शा. भोमाजी भभूतमलजी	”
३ शा. मूलचंद बनाजी	”

३ शा.	गणेशमल	रत्नचंद	"
२ शा.	लछीराम	जोधराज	"
३ शा.	रामाजी	गोमाजी	"
२ शा.	स्वरतमल	नवाजी	"
४ शा.	गोराजी	हस्तिमल	"
१७ शा.	ताराचंदजी	छोटमलजी	दिजबाडा
१७ शा.	प्रतापमलजी	अमूलखंदजी	"
१७ शा.	छोगमल	चिनाजी	"
१७ शा.	सांकलचंद	झुनीलाल	"
३ शा.	वालचंद	उमाजी	"
१० शा.	मेघाजी	हस्तिमलजी	भंगलगिरि
१०१ शा.	चंदाजी	खुदाजी	गंदर
७ शा.	छोगमलजी	जेठमल	"
५ शा.	जेताजी	हीराजी	"
५ शा.	नरसिंहजी	गोमराज	"
७ शा.	चेनाजी	भभूतमलजी	"
५ शा.	रामाजी	कस्तूरचंदजी	"
३ शा.	कनाजी	देवीचंदजी	"
५ शा.	बछराज	हजारीमलजी	"
५ शा.	नथाजी	जेठमलजी	"
५ शा.	चमनाजी	शेषमलजी	"
५ शा.	डायाजी	जेरूपजी	"

१ शा. अचलाजी धेनाजी	"
२ शा. लालाजी अकेचंदजी	"
३ शा. जेताजी पेगजी	"
४ शा. दनाजी नथमलजी	"
५ शा. धेनाजी गजमलजी	"
६ शा. चालचंद हीगचंदजी	"
७ शा. जेव्हपजी छांगमलजी	"
८ शा. धेनाजी शुलचंदजी	"
९ शा. छांगमल शृद्धिचंदजी	शुड्डीचाडा
१० शा. मंडालाल तागचंदजी	" "
११ शा. चन्दनमल गांडीदासजी	"
१२ शा. प्रागचंद कपूरजी	"
१३ शा. प्रेमचंदजी मालजी	"
१४ शा. हृष्णचंद केरिंगजी	"
१५ शा. गुलापचंदजी फोजमलजी	"
१६ शा. चुलीलाल केगरिमलजी	"
१७ शा. भरमल कमरजी	"
१८ शा. धीरचंद समरथमल	"
१९ शा. ढलीचंद कपूरचंद	"
२० शा. गढुमल छांगालाल	"
२१ शा. अकेचंद खुमाजी	"
२२ शा. देवीचंद वशाजी	"

(४२८)

- १ शा. रायचंद रत्नचंद
- १ शा. मिश्रीमलजी जसाजी
- १ शा. ओटमल गुलबाजी
- १ शा. फूलचंद भानीराम
- १ शा. गुलबाजी छोगमल
- १ शा. गुलबाजी देवीचंद
- १ शा. नथमल मोतीजी



